मह! संशिग्रव्रती मुनि लोग पञ्चप्राण, मन, बद्धि और दशों इन्द्रियोंसे बिमुक्त हैं; युक्ति-बिरोधी संसारवर्त्तक काम, क्रोध लोभ, भय, स्वप्न, इन पांचो योग दोषोंसे रहित और शब्द स्पर्श आदि पञ्च इन्द्रिय बिषय तथा सत, रज और तम, इन तीनों गुणोंसे रहित होके पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करते। हे परन्तप! वैसेही हम राज्य परित्याग करके कब सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन करके दुःख मोचन करेंगे।

भीष्म बोले, हे महाराज! दुःख अनन्त नहीं है, दुःखोंको नाशक मोक्ष अवश्य है; इस संसारमें सब विषयोंकाही परिच्छेद है, पूर्व्वजन्म भी प्रसिद्ध है, जगत्में कुछ भी अचल नहीं है; इसलिये राज्य, ऐश्वर्य्य आदिका अवश्य ही नाश होगा। हे राजन्! राज्यऐश्वर्य्य प्रभृतिको मोक्षका प्रतिबन्ध मत समझो, तुम लोग धर्म्मज्ञ हो। इसलिये ऐश्वर्य्यादिमें आसक्त रहने पर भी शम दम आदि साधनोंके जरिये कालक्रमसे मोक्ष लाभ करोगे। हे नरनाथ! यह जीव सदा सुख दुःखका ईश्वर नहीं है, क्यों कि उस सुख दुःखसे उत्पन्न हुए राग-द्वेषमय अज्ञानसेही जीव स्वयं आवृत हुआ करता है। जैसे अञ्जनमय वायु मनःशिला सम्बन्धीय लाल और पीले वर्णके रजमें प्रवेश करके उसके समान रूप धारण करके सब दिशाओंको रंजित करते हुई लोगोंके दृष्टिगोचर हुआ करता है, वैसेही अज्ञानसे छिपे हुए अर्थात् अविद्या उपाधियुक्त जीव स्वयं बिबर्ण होके भी अर्थात् रागादिहीनता निबन्धन दोषस्पर्शी न होके भी देह सम्बन्धके कारण देह धर्म्म गौरत्व, कारणत्व, खञ्जत्व, सुखित्व और दुःखित्व आदि कर्म्मफलोंके जरिये रञ्जित है, इसहीसे बर्णवान् होकर देह समूहमें भ्रमण किया करता है। जब जीव अज्ञानसे उत्पन्न हुए अन्धकारको ज्ञानसे दूर करता है, उस समय सत्स्वरूप एकमात्र ब्रह्म प्रकाशित होता है।

मुनि लोग उस परब्रह्मको अयत्न साध्य अर्थात् कर्म्मसे प्राप्त होनेकी उपाय रहने पर उसमें अनित्यत्व संघटित होता है; क्यों कि जो कर्म्मज है, वही उत्पाद्य, आप्य, संस्कार्य्य और बिकार्य्य हुआ करता है। जिसमें विद्वानोंका अनुभव ही प्रमाण है, उस ही परब्रह्मकी उपासना करनी देवताओंकी भांति तुम्हें अवश्य योग्य है; इसही लिये महर्षि लोग ब्रह्मोपासनासे विरत नहीं होते। उद्योगी पुरुषोंको अवश्य ही ब्रह्मप्राप्ति हुआ करती है, इससे तुम भी उद्योगी बनो। हे राजन्! पहिले समयमें वृत्रासुरने देवताओंसे पराजित होनेसे राज्यहीन और ऐश्वर्य्यभ्रष्ट होकर अकेलेही शत्रुव्यूहमें स्थितहो नैष्ठिकी बुद्धि अवलम्बन करके शोक रहित अन्तःकरणसे इस विषयमें जिस प्रकार चेष्टा की थी, और जैसा कहा था, उसे तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। हे भारत! पहिले समयमें शुक्राचार्य्यने ऐश्वर्य्यभ्रष्ट होनेपर वृत्रासुरसे यह वचन कहा था कि, हे दानव! तुम इस समय पराजित हुए हो, तौभी तुम्हारे अन्तःकरणमें कुछ दुःख नहीं है, इसका क्या कारण है?

वृत्रासुर बोला, मैं अबाधित सत्य वचन और ध्यान मननकी आलोचनासे जीवोंकी सांसारिक गति और मुक्तिके विषयको निःसंशयरूपसे जान कर शोक वा हर्षमें नहीं डूबता। जीव पुण्य वा पापके धर्म्म लक्षण कालके जरिये प्रेरित होते हैं कोई कोई अवश होके नरकमें डूबते हैं; कोई कोई स्वर्गमें गमन किया करते हैं; परन्तु मनीषी लोग ऐसा कहा करते हैं, कि वे समस्त जीवही परितुष्ट रहते हैं। वे काल प्रेरित जीव नरक वा स्वर्गमें परिमित समय बिताकर फिर संसारमें जन्म लेते हैं,। काम पाशमें बन्धे हुए जीवसमूह सहस्रों तिर्य्यग् योनि लाभ और नरकमें गमन करके अवश होकर बाहिर होते हैं। मैं अतीन्द्रिय ज्ञानयुक्त

होकर जीवोंकी इस ही प्रकार इस संसारमें गतागतिके विषयको जानता हूं, और जिसका जैसा कर्म्म है, उसी फल लाभ भी उसहीके अनुरूप हुआ करता है; इस शास्त्र निदर्शनको भी मानता हूं। जीव पहिले किये हुए प्रिय अप्रिय, सुख और दुःखके आचरणसे कोई तिर्य्यग् योनि पाते हैं, कोई नरकमें गमन करते हैं, कोई मनुष्य जीवन प्राप्त किया करते हैं, कोई देव शरीर धारण करते हैं, सब लोक ही कालकृत नियममें निबद्ध होकर पूर्व्वोक्त गतियोंको प्राप्त हुआ करते हैं, जीव-समूह जन्म और मृत्युके मार्गमें सदा घूम रहे हैं। शुक्रने इसही प्रकार काल संख्याके अनुसार गणित सृष्टि और स्थिति विषयके कहनेवाले उस वृत्रकी असुर योनिमें जन्म लेने पर भी उसे इस प्रकार ज्ञानवान समझके आश्चर्य्य किया और उसके बुद्धिकी परीक्षा करनेके लिये बोले, हे तात! तुम बुद्धिमान् हो, इसलिये किस निमित्त यह सब अनर्थक वचन कह रहे हो।

वृत्रासुर बोला, पहले मैंने जयलुब्ध होकर जो महत् तपस्या की थी वह आप तथा दूसरे मनीषी पुरुषोंको प्रत्यक्ष हुई थी। मैं निज वीर्य्यबलसे अनेक गन्ध और रसके आश्रयभूत सबको विमर्दन करते हुए तीनों लोकोंको आक्रमण करके वर्द्धित हुआ था। मैं ज्वाल-मालासे परिपूरित आकाशचारी और सदा निर्भय रहके सब भूतोंसेही अजेय था। हे भग-वन्! तपस्यासे ऐश्वर्य्य लाभ हुआ था और निज कर्म्मसे वह नष्ट हुआ है, इसलिये मैं धैर्य्य अवलम्बन करके उसके लिये शोक नहीं करता। पहले जब मैंने महानुभव इन्द्रके सङ्ग युद्ध करनेकी अभिलाषकी, उस समय उनकी सहायताके लिये आये हुए ऐश्वर्य्योंसे युक्त, सब जीवोंके लय स्थान, सर्व्वान्तर्य्यामी हरिको देखा। उस भूतोंके मेल करनेवाले पूर्ण पुरुष जो कि तीनों परिच्छेदोंसे रहित, अनन्त, शुद्ध, सर्व्वव्यापी, सनातन, मूंछके समान पीले केश और पिङ्गल वर्ण श्मश्रुयुक्त है, तथा जो सब भूतोंका पितामह शुद्ध ब्रह्म हैं, प्रसङ्ग क्रमसे उस परब्रह्मके दर्शनस्वरूप तपस्याका शेष फल इस समय भी कुछ विद्यमान है। हे भगवन्! उस ही तपोबलको अवलम्बन करके मैं कर्म्म-फल पूछनेकी इच्छा करता हूं। महत् ऐश्व-र्य्यस्वरूप परब्रह्म किस वर्णमें प्रतिष्ठित है और उस सर्वोत्तम ऐश्वर्य्यकी किस प्रकार निवृत्ति होती है। किस कारणसे जीव जीवन धारण करते हैं और किस लिये कर्म्मकी चेष्टा किया करते हैं। जीव किस प्रकार परम फल पाके ब्रह्मत्व लाभ करता है; आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये। हे पुरुषप्रवर नरनाथ! वृत्रासुरके ऐसा पूछने पर उस समय शुक्राचा-र्य्यने जो उत्तर दिया था, मैं उसे कहता हूं तुम सहोदर भाइयोंके सहित एकाग्रचित्त होकर सुनो।

२७८ अध्याय समाप्त।

शुक्र बोले, हे तात दानव-सत्तम! आका-शके सहित पृथ्वीतल जिसकी भुजाके बीच निवास करता है, उस सर्व्व ऐश्वर्य्य युक्त सर्व्व शक्तिमान भगवान्‌को नमस्कार करता हूं। जिसका शिर अनन्त मोक्षस्थान है, उस सर्व्व-व्यापी देवका परम माहात्म्य तुम्हारे समीप कहता हूं। वृत्रासुर और शुक्र इस ही प्रकार वार्त्तालाप कर रहे थे, उस ही समय विष्णुकी कृपासे धर्म्मात्मा महामुनि सनत्कुमार उन लोगोंके सन्देहको दूर करनेके लिये वहां आके उपस्थित हुए। हे राजन्! मुनिवर पहुंचते ही असुरेन्द्र और शुक्रसे पूजित होकर उत्तम आसनपर बैठे। महाप्राज्ञ मुनिके बैठनेपर शुक्र उनसे बोले, आप इस दानवेन्द्रके समीप भगवान् विष्णुका परममाहात्म्य कहिये।

अनन्तर सनत्कुमार ऐसा वचन सुनके बुद्धिमान् दानवेन्द्रके निकट विष्णुके माहात्म्य संयुक्त महार्थ वाक्य कहने लगे। हे दैत्यराज! विष्णुका यह सब परम माहात्म्यका विषय सुनो। हे शत्रुतापन! समस्त जगत् विष्णुके अवलम्बसे स्थित है। हे महाबाहो! ये विष्णु ही स्थावर जङ्गम सब जीवोंको उत्पन्न करते हैं, येही कालक्रमसे जीवोंको आकर्षण करते हैं, और कालक्रमसे फिर सृष्टि किया करते हैं; सब कोई इन्हींमें लीन होते और इन्हींसे उत्पन्न हुआ करते हैं। ज्ञानवान् मनुष्य तपस्या वा यज्ञसे इन्हें प्राप्त होनेमें समर्थ नहीं हैं, और इन्द्रियोंको संयम करनेसे भी इन्हें प्राप्त नहीं किया जाता, जो यज्ञादि कर्म्मोंसे उन्हें जाननेकी इच्छा करते हैं, अथवा शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु और समाहित होकर आत्मासे ही आत्माको देखते हैं। वे निष्ठावान् मनुष्य आभ्यन्तर और वाह्य कर्म्मयुक्त बुद्धिके सहारे चित्त-शुद्धि करते हुए देहाभिमान छोड़के आत्मलोक लाभ करके मोक्षफल उपभोग किया करते हैं। जैसे सोनार अपने महत् प्रयत्नके जरिये बार बार अग्निमें डालके सुवर्ण आदि शोधन करता है, तैसेही जीव सैकड़ों जन्ममें पूर्व्वोक्त कर्म्मोंसे चित्तशोधन किया करता है; कोई एक ही जन्ममें अत्यन्त महत् प्रयत्नके सहित पूर्व्वोक्त कर्म्मोंके अनुष्ठानसे चित्तशुद्धि लाभ करता है। जैसे कोई कोई सहजमेंही निज शरीरकी अल्प मलिनता शुद्ध करते हैं, पुत्र कलत्र आदिमें अनुरागका उच्छेद वैसा नहीं है इसमें बहुत ही यत्नकी आवश्यकता है। जैसे थोड़े फूलोंसे वासित तिल वा सरसों निज गन्धको परित्याग नहीं करते, सूक्ष्म वस्तुका दर्शन भी वैसाही है, तिल और सरसों बहुतसे फूलोंसे बार बार सुवासित होनेपर निज गन्ध त्यागके जैसे पुष्पगन्धसे मिलित होते हैं, तैसेही सैकड़ों जन्ममें सत्वादि गुणोंसे युक्त पुत्र कलत्र आदि कुटुम्बके संसर्ग जनित दोष योगाभ्यासके यत्न और बुद्धिसे निवर्त्तित हुआ करते हैं। हे दानव! कर्म्मवशसे अनुरक्त अथवा विरक्त जीव जिस प्रकारसे विशेष कर्म्मको प्राप्त होते हैं उसे सुनो। जीव जिस प्रकार कर्म्मकी चेष्टा करता और जिसमें स्थित रहता है, वह मैं तुम्हारे समीप विस्तार पूर्व्वक कहता हूं; इस समय तुम चित्त एकाग्र करके सुनो। जिसका आदि अन्त नहीं है, जो सब भूतोंमें समभावसे निवास करता है, वही जीवोंका पाप हरता है, इसीसे उसे 'हरि' कहते हैं, वही उपाधि रहित स्थावर जङ्गम सब जीवोंकी सृष्टि किया करता है, वही सब भूतोंमें अज्ञात और जीव-रूपसे स्थित रहता है, और एकादश इन्द्रिय स्वरूप होकर इन्द्रियोंके जरिये समस्त जगत्का ज्ञान किया करता है। हे दैत्यराज! पृथ्वी-मण्डल उसके दोनों चरण हैं, द्युलोक उसका शिर, दशोंदिशा उसकी भुजा हैं, और आकाशको उसका श्रोत्र (कान) जानना चाहिये। सूर्य्य उसके तेजसे प्रकाशमय हुआ है, उसकी बुद्धि चन्द्रमामें स्थिर होरही है। उसकी बुद्धि सदा ज्ञानगत अर्थात् वृत्तिरूप ज्ञान स्वरूपी हुई है, जल ही उसकी जिह्वा है। हे दानव-सत्तम! सब ग्रह उसके दोनों भौंके निकटवर्त्ती होरहे हैं, नक्षत्र मण्डल उसके नेत्र हुए हैं। हे दानव! भूमितल उसके दोनों चरणोंमें वर्त्तमान है, सत, रज, और तम इन तीनों गुणोंको नारायण स्वरूप जानो। हे तात! वही सब आश्रमों और जप आदि कर्म्मोंका फल है, धीर लोग ऐसा ही ज्ञान किया करते हैं। वह अव्यय परम पुरुष ही निष्कर्म्म सन्न्यासका फल मोक्ष स्वरूप है। सब मन्त्र जिसके रोएं और प्रणव जिसका वाक्य है, अनेक वर्ण और सब आश्रम जिसका आश्रय है जिसे अनन्त सुख है तथा जो हृदयमें स्थित धर्म्म स्वरूप है, वह परब्रह्म ही आत्मदर्शनरूपी परम धर्म्म और कृच्छ्र-चान्द्रा-

यज्ञ आदि तपस्याका फल स्वरूप है, वही कार्य्य और कारणस्वरूप है। वह परमात्माही मन्त्र ब्राह्मण और प्रवर्त्तना वाक्यसे युक्त है; होता, उद्गाता, प्रस्तोता प्रतिहर्त्ता आदि षोड़स ऋत्विकोंके जरिये सम्पादनीय क्रतु स्वरूप है। वही ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अश्विनीकुमार, मित्रा-वरुण, यम और कुबेर स्वरूप है। उक्त ऋत्विक् गण पृथक् दर्शन होनेपर भी अर्थात् इन्द्रसे महेन्द्र विभिन्न और वैश्वानरसे अग्नि स्वतन्त्र है, इत्यादि रूपसे कर्म्मकी विभिन्नताके कारण पृथक् दर्शन करनेपर भी उस एक मात्र महान् आत्माके सहित पूर्व्वोक्त प्रजापति आदि देव-ताओंकी एकता अवलोकन किया करते हैं, इस समस्त जगत्‌को उस ही एक मात्र देवके अधीन जानो। हे दैत्यराज! धीर पुरुष कहते हैं, कि उसके नाना भूतोंमें निवास करनेपर भी यह जीव उसे एक ही देखता है, अनन्तर जीव ही विज्ञानवशसे ब्रह्मरूपसे प्रकाशित होता है। हे दैत्येन्द्र! जगत्‌के लय और उदयको कल्प कहते हैं, कोई कोई जीव उस सहस्र कोटि कल्प परि-माण पर्य्यन्त स्थित रहते हैं, कोई स्थावर हुआ करते हैं कोई जङ्गम होके विचरते हैं; प्रजासृ-ष्टिका परिमाण वच्यमाण विधिसे सहस्र वापी सोखनेकी भांति अनन्त है। पचासकोस चौड़े और पचास कोस लम्बाईके परिमाण तथा गहराईसे दुरवगाह सहस्रों वापियोंके प्रत्येक योजनके परि-माणसे वर्द्धित होती रहनेपर यदिप्रतिदिन केवल एकबार केशाग्रके जरिये उसमेंसे एक बूंद जल उठाया जावे और इस ही प्रकारके नियमसे एक एक वापीके जल सोखनेके क्रमसे कोई सहस्र दीर्घिकाके नष्ट होनेकी सम्भावना हो, तो ज्ञानके विना संसारका उच्छेद होसके। एककी मुक्तिसे एककी सृष्टिनाश होनेपर भी अनेक जीव वर्त्तमान रहते हैं। इससे किसी प्रकारसे भी संसारके नष्ट होनेकी सम्भावना नहीं है। रज, सत और तमोगुण रक्तता, स्वच्छता और मलिनताके साम्यवशसे लाल, श्वेत और काले हुआ करते हैं। उक्त तीनों गुणोंके भाग भेदसे जीवका सफेद, लाल, काला, पीला, धूम और कृष्ण, ये छः प्रकारके वर्ण होते हैं, तीनों गुण परस्पर वियुक्त होनेपर स्थित नहीं रहते उसके बीच जिसमें तमोगुणकी अधिकता, सतोगुणकी न्यूनता और रजोगुणकी समता रहती है, उसका कृष्णवर्ण होता है; सत और रजोगुणकी विपरीतता अर्थात् सतो-गुणकी समता तथा रजोगुणकी न्यूनता होनेपर धूम्र वर्ण हुआ करता है, इस ही प्रकार रजो-गुणकी अधिकता और सत्व तथा तमोगुणकी न्यूनता वा समतासे नीलवर्ण हुआ करता है। सत्व और तमोगुणकी विपरीतता अर्थात् सतो-गुणकी समता और तमोगुणकी न्यूनतासे लोकोंके सह्यतर लालवर्ण उत्पन्न होता है, सतोगुणकी अधिकता और रज तथा तमोगुणकी न्यूनता वा समता होनेपर सब लोक सुखकर पीत वर्ण हुआ करता है। सत्वकी अधिकता रजोगुणकी समता और तमोगुणकी न्यूनता होनेसे अत्यन्त सुखकर श्वेत वर्ण हुआ करता है।

हे दानवेन्द्र! स्थावर आदि सृष्टि क्रममें कृष्णवर्णसे कौमारसृष्टि पर्य्यन्त क्रमसे जो शुक्ल वर्ण होता है, वही राग-द्वेषहीनता निबन्धनसे निर्म्मल है, इससे शोकहीन और प्रवृत्ति नाशक यमरहित वह वर्ण ही सिद्धिके उपायोगी हुआ करता है। हे दैत्य! जीव सहस्रों बार जन्म ग्रहण करके अन्तमें सिद्धिलाभ करता है। हे असुरेन्द्र! सुरराज पुरन्दरने उत्तम शास्त्रज्ञान लाभ करके आत्मानुभवात्मिका जो शुभ गतिका विषय कहा था, अर्थात् "इस ब्रह्मका मैंने दर्शन किया" इत्यादि जो वचन प्रकाशित की थी, वही ब्रह्मज्ञान लाभकी प्रमाण स्वरूप है। सत्वादि गुणोंके तारतम्यके अनुसार प्रजा-समूहकी वर्ण-विहित गति हुआ करती है, प्रजाके वर्ण भी कालकृत अर्थात् पहले कहे

हुए चतुर्वर्गात्मक जीव कर्त्तृक विहित हैं, जीवोंके पूर्व जन्मके संस्कारसे जिस प्रकार सत्वादिकी उत्पत्ति होती है, वैसी ही गति हुआ करती है। हे दैत्यराज! सोपानारोहन क्रमसे इस लोकमें चौदह लाख बार जीवको उर्द्धगति होती है, और उसहीके अनुसार स्थिति तथा अधोगति समझनी चाहिये; स्थावत्व-प्रापक कृष्णवर्णको निकृष्ट गति होती है, क्यों कि वे जनिष्यमाण स्थावर पदार्थ नरकप्रद कर्म्ममें संयुक्त हुआ करते हैं, इसहीसे वे नरकमें निमग्न होते हैं, प्राचीन पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि अनेक कल्पतक उनकी दुर्गति लोगोंके सहित स्थित हुआ करती है। इस ही प्रकार जीव स्थावर शरीरसे समय बिताते हुए अन्तमें तिर्य्यग् योनि लाभ किया करता है। जीव उस तिर्य्यग् योनिको लाभ कर शीत वाता-दिसे पीड़ित होकर युगक्षयमें सब प्रकारसे मृत्यु-भय दर्शन करते हुए पूर्व्व पुण्योदयके विवेकसे व्याप्तचित्त होकर उक्त शरीरमें स्थिति करता है। कृष्ण और हरित वर्ण केवल भोगभूमि है, इसलिये इसमें भोगके जरिये जिसके पाप नष्ट होते हैं, दैवात् उसके पूर्व्व पुण्यके उदय होने-पर जीवका चित्त विवेकसे संवृत हुआ करता है। जब जीव सतोगुणयुक्त होता है, उस समय निज बुद्धिसे तमोगुणकी प्रवृत्तियोंको दूर करते हुए कल्याणसाधन कर्म्ममें यत्नवान् हुआ करता है, तब सतोगुणकी उत्कर्षता होनेसे कामादिके अभिमानी देवभाव लाभ करता है, और सतो-गुणके अपकर्ष होनेसे तिर्य्यग् योनिसे फिर तिर्य्यग् योनिको प्राप्त होता अथवा मनुष्य जन्म ग्रहण करता है। तब जीव मनुष्य लोकमें कल्प परिमित समय बिताके विधि निषेधरूपी निग-ड़निवहके जरिये क्लेशित होकर तपस्याका उपचय करते हुए सैकड़ों कल्प बीतनेपर देव-भाव लाभ किया करता है। हे दैत्यराज! जीव देवत्व लाभ करके भी सहस्रों कल्पतक विचरते हुए निवास करता है; देव लोकमें भी जीव विषय रहित होके पूर्व्व पूर्व्वकल्पोंके किये हुए पुण्य पापोंका फल भोग किया करता है।

अनन्तर दश हजार जन्मके बीतनेपर मनुष्य भोगप्रद कर्म्म और अन्यान्य जन्मोंसे मुक्ति लाभ करता है इसलिये स्वर्गको भी क्षयशील सम-झना चाहिये। जीव देवलोकमें सदा विहार किया करता है, अनन्तर वहांसे च्युत होकर मनुष्य जीवन पाता है; देवता लोग मनुष्यत्व और मनुष्य भी देवत्व लाभ किया करते हैं। ऊपर कहे हुए कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, चित्त, मन और बुद्धि नामक आठों ज्ञानेन्द्रिय सैकड़ों कल्पतक मनुष्य शरीरमें निवास करती हुई अन्तमें देवत्वको प्राप्त होती है। अनन्तर वही जीव कालक्रमसे संकल्पकृत लयोदय प्रवाहसे भ्रष्ट होकर सबसे अपकृष्ट वर्ण अर्थात् तलभागकी भांति सबसे नीच स्थावर शरी-रमें निवास करता है। हे असुर प्रवीर! यह जीव जिस प्रकार विमुक्त होता है, उसे मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं। एकके अनेकधा भावको व्यूह कहते हैं, मुमुक्षु जीव उन सत्त-रह देवव्यूहोंको अवलम्बन करके लाल, पीला और अन्तमें सफेद वर्ण होकर क्रमसे अर्चनीय अष्टलोकोंमें विचरता है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, मन और बुद्धि रूपसे सप्तधा भूत बुद्धिको उस ही उसी इन्द्रिय वृत्तिभेदसे सौ हजार व्यूह हुआ करता है, तिसके बीच शम दम आदि सात्विक भावोंसे युक्त देव व्यूह अव-लम्बन करके पहले जो रक्तवर्ण होता है, वही शम दमादिके अभिमानी देवतास्वरूप है, इससे वह अत्यन्तही शमदमादिसे युक्त हुआ करता है।

अनन्तर पीत वर्ण देवशरीर होकर अन्तमें श्वेतवर्ण कौमारमूर्त्ति हुआ करती है, यह मूर्त्ति बालककी भांति रागद्वेषसे रहित होती है। अनन्तर सगुणात्म स्वरूप सब लोक प्राप्त होते हैं, क्रमसे धूम आदि मार्गप्राप्तिपूर्व्वक अर्च्चि

नीय चन्द्रलोकसे भी पूजनीय अर्च्चिरादि मार्ग-प्राप्य ब्रह्मलोक लाभ होता है। अनन्तर योग-फलभूत ज्ञानसे मिलने योग्य सब पूज्य लोक प्राप्त होते हैं। हे महानुभव दैत्यराज! पूर्ण प्रकाशयुक्त आत्मज्ञ पुरुष उक्त अष्टलोक और अविद्या काम कर्म्म आदि भेदसे विभिन्न जो एक सौ साठ लोक हैं, उन सबको मनसे ही विशेष रूपसे रुद्ध कर रखते हैं, अर्थात् मूढ़दृष्टिसे सब लोकोंके भिन्नरूपसे दीखनेपर भी ज्ञानियोंके मनमें वे एक रूपसे ही मालूम हुआ करते हैं; जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिसंज्ञक तीनों लोक यदि संक्षेपसे मनहीके जरिये रुद्ध हों, तो शुक्रवर्णकी वही परम गति है, अर्थात् ऐसी अवस्थामें वेद प्रतिपाद्य, मङ्गलमय इतररहित ब्रह्मको जाना जाता है। जीव एक मात्र भोगके स्थान शरीरको धारण करके सौ कल्पके परिमाणतक इस देहमें निवास किया करता है, योग ऐश्वर्य्यसे उपस्थापित दिव्य भोगोंको परित्याग करनेमें असमर्थ योगी योगबलके तारतम्यके अनुसार महः, जन, तपः और सत्यसंज्ञक ऐश्वर्य्यके तारतम्ययुक्त क्रममुक्ति स्थानोंमें निवास किया करते हैं। जो शुद्ध ब्रह्मके दर्शनके जरिये जीवन मुक्त होनेमें समर्थ नहीं हैं और जिनके रागादि दोष नष्ट हुए हैं, वैसे पुरुष योगसिद्ध होके भी ब्रह्म और आत्मामें ऐक्यज्ञानके अभाव निवन्धनसे क्रममुक्तिभाजन हुआ करते हैं; और जो पुरुष पूर्णरीतिसे योगानुष्ठान करनेमें समर्थ नहीं है, वह परोक्ष रूपसे निर्द्दिष्ट स्वर्गलोकमें सतागुणको प्रबलतासे पूर्व्वोक्त श्रोत आदि पञ्चक और मन तथा बुद्धिके उत्कर्ष साधक पुरुष एक सौ कल्प पर्य्यन्त तथा जबतक पूर्व्वकृत कर्म्मचय नहीं होते, तबतक निवास करता है। शुद्ध कर्म्मवाले साधु योगी यदि योग सिद्धिके पहिले विरक्त हो, तो भूलोक अथवा स्वर्गलोकमें गमन करते हैं अनन्तर वहांसे लौटकर मनुष्यजन्म पाके कुल शील और विद्याबुद्धिसे युक्त होकर सब लोगोंमें पूजनीय होते हैं। अन्तमें वही अपूर्ण योगी मनुष्य जन्मसे निकलके पूर्व्व अभ्यासके सहारे क्रमसे उत्तरोत्तर योगभूमिकामें आरोहण करते हैं, वह समाधि और समाधि भङ्गके समयमें प्रभावयुक्त होके सातबार सब लोकोंमें पर्य्यटन किया करते हैं, अर्थात् प्रथम भूमिमें आरूढ़ योगी यदि मृत्युको प्राप्त हो, तो वह स्वर्गलाभ करके वहांसे च्युत होनेपर सार्व्वभौम्य पदवी लाभके जरिये उनका भूलोक विजय हुआ करता है। इस ही प्रकार उत्तरोत्तर योगकला वृद्धिके अनुसार क्रमसे सब लोक जय किया जाता है; अन्तमें ब्रह्मलोक लाभ करके भी जीव फिर संसारमें आगमन किया करता है, और यदि ध्येयवस्तुके सङ्ग आत्माकी अभेद प्रतीति उत्पन्न हो, तो प्रलयकालमें ब्रह्माके सहित जीवकी मुक्ति हुआ करती है, अर्थात् कृतात्मा मनुष्य प्रजापतिके प्रलयकालमें उनके सहित परमपदमें प्रवेश करते हैं।

पश्चात्तरमें योगी पुरुष भूर्लोक भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्य लोक अथवा मन और बुद्धिके सहित पञ्चज्ञानेन्द्रिय, इन सातोंको ज्ञानसे बाधित करके जीव लोकमें शोक मोहसे रहित होकर निवास करते हैं। वे लोग पृथ्वी आदि सातों लोक अथवा बुद्धि आदि सातों इन्द्रियोंको दुःख स्वरूप निश्चय करके शरीर त्यागनेपर अपरिणामी अनन्त अर्थात् परिच्छेद रहित शुद्ध ब्रह्मपद लाभ करते हैं। कोई कोई उस पदको महादेवका कैलास कहते हैं, कोई उसे विष्णुका बैकुण्ठ बतलाते हैं, कोई कोई सम्प्रदायवाले उसे ब्रह्माका ब्रह्मलोक कहा करते हैं, कोई कोई भक्तजन उसे अनन्त देवके धामरूपसे वर्णन करते हैं, सांख्य मतवाले मनीषी पुरुष उसे जीवोंकी परम निवृत्ति स्थान कहा करते हैं, और उपनिषत् अर्थात् वेदान्त, दर्शनवाले

पण्डित लोग उसे द्योतमान् चिन्मात्र सर्व्वव्यापी परब्रह्मके धामस्वरूप रूपसे निर्णय किया करते हैं। संहारके समयमें जो लोग ज्ञानरूपी अग्निसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरको सब भांतिसे जलाये हैं, वेही सब प्रजा सदा परब्रह्मको प्राप्त होती हैं और चेष्टात्मक इन्द्रियें तथा ब्रह्मस्वरूपसे अर्व्वाचीन प्रकृति आदि भी परिदग्ध शरीर होकर संहारकाल अर्थात् जीवके मोक्ष समयमें परब्रह्ममें लीन हुआ करती हैं। प्रलयकालके आसन्न होनेपर जो लोग देवत्व लाभ करते हैं, उनके सब कर्म्मफल भोग न किये जानेसे पूर्व्व कल्पके अर्ज्जित उनके सब कर्म्मफल प्रत्यासन्न हुआ करते हैं; क्यों कि प्रति कल्पमें ही पूर्व्व पूर्व्वकल्पोंकी सदृशता विद्यमान रहती है, और प्रलयकालमें जिसके कर्म्मफलोंके भोग निःशेषित होते हैं, उनका स्वर्गवास समाप्त होनेसे फिर मनुष्यत्व प्राप्त हुआ करता है; क्यों कि तत्वज्ञानके अतिरिक्त सौ कल्पमें भी किये हुए कर्म्मोंका नाश नहीं होता।

जो लोग क्रमसे सिद्ध लोकसे प्रच्युत होने की सामर्थ धारण करते हैं, दूसरे जीव लोग उनके समान बलवाले होकर क्रमसे उनकी गतिको प्राप्त होते हैं, अर्थात् उन्हींकी भांति पाप-पुण्यके फलोंको भोग किया करते हैं। एक कल्पमें ही जब बार बार ऊर्द्ध गति और अधोगति हुआ करती है, तब संसार भीरु पुरुषोंको तत्वज्ञानका आसरा अवश्य करना चाहिये।

ब्रह्मवित् पुरुष जबतक प्रारब्ध कर्म्मोंको परित्याग न करके उसे भोग करते हैं तबतक उनके अङ्गमें ब्रह्मस्वरूपसे प्रजासमूह और परा तथा अपरा विद्या विद्यमान रहती है। अनन्तर वह योगसंशोधित चित्त होनेपर अर्थात् धारणा, ध्यान, समाधि स्वरूप संयमका अनुष्ठान करनेसे इस आकाश आदि पञ्च महाभूतोंको पञ्च इन्द्रियोंकी भांति जानते हैं; ब्रह्मवित् पुरुषके सम्बन्धमें विशुद्ध कैवल्य पर्य्यन्त समस्त जगत दूरवर्त्ती नहीं है। जो लोग शुद्धचित्तसे श्रवण मनन और ध्यानाभ्याससे शुद्ध चिन्मात्र वस्तुको जाननेकी इच्छा करते हैं, वे द्वैतजालको दूर करके उस शुद्ध परम गतिको प्राप्त होते हैं, शेषमें ब्रह्म साक्षात्कार होनेपर अक्षय मोक्षपद लाभ करते हैं। उस समय अविद्या आदि व्यवधानोंसे जो शाश्वत परब्रह्म दूसरोंको अत्यन्त आप्य है, उसे वे गलेमें पड़े हुए कण्ठभूषणकी भांति सहजमें ही प्राप्त होते हैं। हे महाबलवान् दैत्यराज! यह मैंने तुम्हारे निकट नारायणका प्रभाव वर्णन किया।

वृत्रासुर बोला, हे भगवन्! आपने जो कहा, कि उसमें जगत मनरूपसे स्थित है, तब अब मुझे कुछ भी विषाद नहीं है और आपके कहे हुए वाक्यार्थको मैंने विशेष रूपसे आलोचना की है। हे महानुभाव! मैं आपके वचनको सुनके इस समय दूरदृष्टरहित और शोक मोहसे हीन हुआ। हे महर्षि! यह महातेजस्वी अन्तरहित विष्णुके चक्रकी भांति अनन्त-वीर्य्य आकर्षित हुआ, वही उसका सनातन स्थान है, जिससे समस्त सृष्टि हुआ करती है, वह महानुभाव विष्णु ही पुरुषोत्तम है, उसमें ही यह सब जगत् प्रतिष्ठित होरहा है।

भीष्म बोले, हे कुन्तीपुत्र! दैत्यराज वृत्रने ऐसा कहके प्राणत्याग किया, उसने निज आत्माको परमात्मामें संयुक्त करके परम स्थान प्राप्त किया था। उस समय युधिष्ठिर श्रीकृष्णकी ओर अङ्गुली दिखाके बोले, हे पितामह! पहिले समयमें सनत्कुमार मुनिने वृत्रासुरके निकट जिसकी महिमा कही थी, ये भगवान् जनार्द्दन वही देवता हैं।

भीष्म बोले, मूल अधिष्ठानकी भांति निर्व्विकार भावसे स्थित षड़बिध ऐश्वर्य्यवान् चिदात्मा निज तेजपुञ्जसे अधिष्ठित रहके सत्य संकल्प आदि गुणयुक्त मानसमें अनेक प्रकार कार्य्य कारण स्वरूप वृक्ष बीज प्रभृति उत्पन्न करता

है। यह निश्चय जानो, कि उस मूलाधिष्ठानमें स्थित चिन्मय पुरुषके आठवें अंशसे वे मूर्त्तिमान माधव उत्पन्न हुए हैं, यह बुद्धिमान् केशव मूलाधिष्ठानके आठवें अंशसे उत्पन्न होकर उस अष्टम अंशके सहारे ही तीनों लोकोंकी सृष्टि किया करते हैं, जो इनके परवर्त्ती होकर समष्टि-कार्य्य स्वरूपसे प्रतिपन्न होते हैं, वे हम लोगोंके शरीरकी अपेक्षा नित्य होके भी कल्पान्त कालमें लयको प्राप्त होते हैं, और जो अनन्त ब्रह्माण्डके लय उदयका बीजभूत है, वही अन्तर्य्यामी भगवान् प्रलयकालमें जलके बीच शयन किया करता है, अर्थात् जल रूपसे निरूपित रस स्वरूप एकमात्र अखण्ड परब्रह्ममें लीन होता है। विधाता शुद्धचित्त अर्थात् अज्ञानरूपी अन्धकारसे निर्मुक्त होनेसे उस शाश्वत समष्टिरूप परब्रह्ममें लयको प्राप्त हुआ करता है, इसलिये चतुर्मुख आदि चेतनमात्रका ही एकमात्र परब्रह्म ही लय स्थान है। अन्तरहित परमात्माने कार्य्य कारण भूत सब पदार्थोंको निज सत्तास्फूर्त्ति प्रदान करके पूर्ण कर रखा है; वह सनातन अर्थात् सदा एक रूप होनेपर भी माया उपाधियुक्त इस दृश्यमान् श्रीकृष्णरूपसे सब लोगोंमें विचर रहा है। वह देव ऐसा होके भी हम लोगोंकी भांति उपाधि कर्म्मके जरिये निरुद्ध नहीं है; इसीसे वह अनिरुद्ध अर्थात् अहंकार स्वरूप होकर जगत्की सृष्टि करता है, और वही महात्मा सब वस्तुओंका आधार कहा जाता है। बीजमें वृक्ष और फलमें बीजोंके स्थित रहनेकी भांति यह विचित्र जगत् उस ही परमात्मामें निवास करता है।

युधिष्ठिर बोले, हे परमार्थज्ञ पितामह! बोध होता है, वृत्रासुरने आत्माकी गति अवलोकन की थी, उसने उस ही आत्मगतिको देख कर शुभ-निबन्धनसे सुखी होकर कभी शोक प्रकाश नहीं किया। हे पापरहित पितामह! शुक्लवर्ण और शुद्ध वंशमें उत्पन्न साध्य संज्ञक देवयोनि तिर्य्यग् योनिरूपी निरयसे निर्मुक्त होकर फिर दूसरी बार उसमें आवर्त्तित नहीं होती। हे पृथ्वीनाथ! पीतवर्ण अथवा रक्तवर्णमें वर्त्तमान मनुष्य तामस कर्म्मोंसे परिपूरित होकर तिर्य्यग् योनि लाभ किया करते हैं। हम लोग पीतवर्णसे च्युत होकर केवल रजप्रधान रक्त वर्णमें निवास करते हुए कभी सुखी कभी दुःखी और कभी बिना सुखके ही समय बिताकर नीलवर्ण मनुष्य योनि अथवा उससे भी निकृष्ट कृष्णवर्णकी तिर्य्यग् योनिके बीच कैसी गति पावेंगे, उसे नहीं कह सकते।

भीष्म बोले, हे पाण्डुनन्दन! तुम लोग शुद्ध वंशमें उत्पन्न हुए हो और तुम सबने ही तीव्र व्रत धारण किया है, इसलिये इसके अनन्तर तुम लोग देव लोकोंमें विहार करके फिर मनुष्य जन्म पाओगे। प्रजासमूहके प्रलयकालमें तुम लोग देव लोकमें फिर अनायास ही सुख भोग करोगे, अन्तमें सिद्धोंके बीच तुम्हारी गिनती होगा; तुम लोगोंको भय नहीं है, इससे सब शङ्का त्यागके प्रसन्न रहो।

२७९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! अत्यन्त तेजस्वी वृत्रासुरकी धर्म्मिष्ठतासे आश्चर्य्य होता है। उसका जैसा अनन्य-साधारण विज्ञान था, भगवान्के विषयमें भक्ति भी वैसीही थी। हे तात! असीम महिमासे युक्त भगवान्की तत्त्व अत्यन्त दुर्व्विज्ञेय है, उसे वह तत्त्व किस प्रकार मालूम हुई थी। आपने जो तत्त्व विषयके अस्खलित वचन कहे, उसमें मेरी श्रद्धा होरही है, परन्तु वृत्रासुर वैष्णव था, वह कभी वधार्ह नहीं होसकता; तौभी आपकी वचन अनुसार उसका वध सुना जाता है, इस अन्यतर कोटि निश्चयिक विज्ञानके अभावसे फिर मुझे प्रश्न करनेकी इच्छा हुई है। हे पुरुषप्रवर! वृत्रासुर

धर्म्मिष्टविष्णुभक्त और वेदान्त वाक्यके अर्थ विचार विषयमें तलग्न था; तब किस प्रकार वह इन्द्रके जरिये मारा गया? मुझे यही सन्देह होरहा है, इसलिये प्रश्न करता हूं आप मेरे निकट यह विषय वर्णन करिये। हे भरत प्रवर पितामह! वृत्रासुर जिस प्रकार इन्द्रसे द्वारा तथा जिस भांतिसे उन दोनोंका युद्ध हुआ था, आप उसे विस्तार पूर्व्वक वर्णन करिये; इस विषयको सुननेकी मुझे बहुतही अभिलाषा है।

भीष्म बोले, पहिले समयमें देवराजने देवताओंके सहित रथपर चढ़के गमन करते हुए पुरमें द्वारपर स्थित पर्व्वतके समान वृत्र दैत्यको देखा। हे शत्रु दमन! उस समय वृत्र अहुँमें पांचसौ योजन ऊंचा, और बिस्तारमें तीनसौ योजन आयतरूप धारण किया था; वृत्रका त्रैलोक्य-दुर्ज्जय वैसा रूप देखके देवता लोग अत्यन्त भयभीत हुए और किसी भांति शान्ति लाभ न कर सके। हे राजन्! उस विपर्य्याय रूपको देखकर भयसे उस समय इन्द्रका सहसा उरुस्तम्भ हुआ। अनन्तर देव असुरोंका वह युद्ध उपस्थित होनेपर महान् सिंहनाद और युद्धके बाजोंके शब्द होने लगे। हे कुरुकुल धुरन्धर! देवेन्द्रको उपस्थित देखके वृत्रासुरके अन्तःकरणमें सम्भ्रम भय वा चिन्ता नहीं हुई, अनन्तर सुरराज शक्र और महानुभाव वृत्रासुरका त्रिलोक भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ। तलवार, पट्टिश, शूल, शक्ति, तोमर, मुद्गर अनेक तरहकी शिला, महा शब्दयुक्त धनुष अनेक प्रकारके दिव्य अस्त्र, अग्नि और उल्का समूहसे देवासुर सेनाके जरिये सब जगत् व्याकुल होने लगा। हे भरतप्रवर महाराज! प्रजापति आदि सब देवताओं और महानुभाव ऋषियोंने युद्ध देखनेके लिये आगमन किया। सिद्ध और गन्धर्व्व लोग अप्सराओंके सहित विमानोंमें चढ़के उस स्थानमें इकट्ठे हुए। अनन्तर धार्म्मिक प्रवर वृत्रासुरने पत्थरकी वर्षासे शीघ्र ही आकाशतलको परिपूरित करते हुए देवेन्द्रको छिपा दिया, तब देवता लोग क्रुद्ध होकर सब प्रकारसे बाणोंकी वर्षा करके युद्धमें वृत्रासुरकी पत्थरवर्षाको निवारण करने लगे। हे कुरुवर! महा मायावी महाबली वृत्रासुरने माया युद्धसे देवेन्द्रको सब भांतिसे मोहित किया। जब इन्द्र वृत्रके जरिये अत्यन्त पीड़ित हुए, तब उन्हें मोह उत्पन्न हुआ, उस समय महर्षि वशिष्ठने रथन्तर साम उच्चारण करके उन्हें चैतन्य किया।

वशिष्ठ बोले, हे दैत्य दानव निसूदन देवराज! तुम सब देवताओंमें श्रेष्ठ और तीनों लोकोंके बलसे युक्त हो, इसलिये किसलिये विषाद कर रहे हो; ये जगत्पति ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और भगवान् सोमदेव तथा सब महर्षि लोग विद्यमान् हैं। हे सुराधिप शक्र! इसलिये तुम्हें साधारण पुरुषोंकी भांति मुग्ध न होना चाहिये; युद्धमें साधु बुद्धि अवलम्बन करके शत्रुओंका संहार करो। हे सुरपति! ये सब लोकोंके नमस्कृत भगवान त्रिलोचन तुम्हें देखते हैं, इसलिये तुम मोह परित्याग करो। हे शक्र! ये सब वृहस्पति आदि ब्रह्मर्षि लोग जयके निमित्त दिव्य स्तवसे तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं।

भीष्म बोले, महानुभाव वशिष्ठ मुनिने जब इस प्रकार इन्द्रको चैतन्य किया, तब प्रबल पराक्रमी सुरराजका पराक्रम अत्यन्त बर्द्धित हुआ, अनन्तर भगवान पाकशासनने बुद्धि स्थिर करके महत् योगयुक्त होकर वृत्रासुरको माया दूर की। अङ्गिराके पुत्र श्रीमान् सुराचार्य्य और पूर्व्वोक्त महर्षियोंने वृत्रासुरका विक्रम देखकर सब लोकोंकी हितकामनासे महादेवके निकट जाके उसके नाशके निमित्त प्रार्थना की। अनन्तर जगत्पति महादेवका तेज घोर ज्वररूप धारण करके उसही समय दैत्यपति वृत्रके शरीरमें प्रविष्ठ हुआ; और लोकरक्षामें तत्पर

सब लोकपूजित भगवान् विष्णुने देवराजके वज्रमें प्रवेश किया। अनन्तर बुद्धि शक्तिसे युक्त वृहस्पति, महातेजस्वी वशिष्ठ और वे सब महर्षि लोग लोकपूजित वरदाता इन्द्रके निकट जाके एकाग्रचित्तसे यह वचन बोले कि, हे देवेश! तुम सब वृत्रासुरका वध करो।

महेश्वर बोले, हे शक्र! यह सुर स्वयं प्रबल है और महत् बलसमूहसे परिपूरित हुआ है यह पुरुष विश्वव्यापी और सर्व्वगामी तथा अनेक प्रकार मायाजाल फैला सकता है, इस ही कारण विख्यात् है। हे सुरेश्वर! इसलिये तुम योग अवलम्बन करके इस त्रिलोकदुर्ल्लय दानवश्रेष्ठका वध करो, अवज्ञा मत करो। हे देवराज! इस वृत्रासुरने बलके निमित्त साठ हजार वर्ष पर्य्यन्त तपस्या की थी; ब्रह्माने भी इसे योगियोंके बीच महत्व, महामायात्व और श्रेष्ठ तेजस्विता लाभके निमित्त वर प्रदान किया था। हे इन्द्र! यह मेरा तेज शीघ्र तुम्हारे शरीरमें प्रवेश करता है, तुम इस ही तेजसे तेजस्वी होकर वज्रसे इस दानवका नाश करो।

देवराज बोले, हे सुरश्रेष्ठ भगवन्! आपकी कृपासे मैं आपके सम्मुखमें ही इस दुरासद दानवको वज्रसे मारूंगा।

भीष्म बोले, महासुर वृत्रासुरके शरीरमें शैवज्वर प्रविष्ट होनेपर देवता और ऋषियोंमें महान् हर्षध्वनि उत्पन्न हुई। अनन्तर सहस्रों शंख, नगाड़े पखावज और डिण्डिम बाजे बजने लगे। सब असुरोंकी इकबारगी स्मृति लुप्त होगई, क्षणभरके बीच प्रबल माया नष्ट हुई। देवता और ऋषि लोग इन्द्रके शरीरमें शिवतेजको प्रविष्ट हुआ जानके प्रशंसा वाक्यसे उनका उत्साह बढ़ाने लगे। युद्धके समयमें जब महानुभाव महेन्द्र रथमें चढ़के ऋषियोंसे स्तुतियुक्त हुए, उस समय उनका रूप अत्यन्त भयानक होगया।

२८० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे महाराज! जब वृत्रासुर सब तरहसे ज्वरके वशमें हुआ तब उस समय उसके शरीरसे जो सब लक्षण प्रकाशित हुए थे, उसे सुनो। उसका मुख अत्यन्त प्रज्वलित होनेसे विवर्ण होगया उसका शरीर अत्यन्त ही कांपने लगा, श्वास बढ़ने लगा, तीव्ररूपसे रोएं खड़े होगये और लम्बी सांस चलनी आरम्भ हुई। उसके मुखसे अग्निस्वरूप अत्यन्त दारुण महाघोर रूपवाली सियारी निकली, हे भारत! वही उसकी स्मृति शक्ति थी। प्रज्वलित और प्रकाशमान लुक्कोंने उसके दोनों पार्श्वोंको घेर लिया। गृद्ध, कङ्क और बगुले वृत्रासुरके ऊपर इकट्ठे होकर चक्रकी भांति भ्रमण करते हुए दारुण शब्द करने लगे। अनन्तर देवताओंसे आप्यायित आहवके बीच सुरराजने उस रथपर चढ़के हाथमें वज्र लेकर वृत्रासुरकी ओर देखा, हे राजेन्द्र! उस समय तीव्रज्वरसे संयुक्त होकर वह महासुर अमानुष शब्द करके जमुहाई लेने लगा। जब वृत्र जमुहाई ले रहा था, उस ही समय इन्द्रने उसके ऊपर वज्र चलाया, वह कालाग्नि समान अत्यन्त महत् तेजसे युक्त वज्रने शीघ्र ही महाकाय वृत्रासुरको मारके गिरा दिया।

हे भारत! अनन्तर वृत्रासुरको मरा हुआ देखके चारों ओरसे फिर देवताओंकी हर्षध्वनि उत्पन्न हुई। दानवारि देवराजने विष्णुयुक्त वज्रसे वृत्रासुरको मारके महायशस्वी होकर सुरपुरमें प्रवेश किया। हे कुरुनन्दन! अनन्तर वृत्रासुरके शरीरसे लोक भयावन रौद्ररूपिणी ब्रह्महत्या निकली। हे धर्म्मज्ञ भरतसत्तम! उसके सब दांत अत्यन्त कराल थे, उसका रूप भयङ्कर और विकृत था, रङ्ग काला और पीला था, उसके केश बिखरे और घोररूपी दोनों नेत्र थे। हे राजेन्द्र! कृत्याकी भांति कपालमालिनी वल्कल वस्त्र धारण करनेवाली रुधिरसे भीगी हुई, वैसी भयङ्कर रूपवाली वह स्त्री निकलते

ही इन्द्रको खोजने लगी। हे कुरुनन्दन! कुछ कालके अनन्तर वृत्रासुरके मारनेवाले इन्द्र सब लोकोंके हितकी कामनासे स्वर्गकी ओर जारहे थे, उस समय उस ब्रह्महत्याने महातेजस्वी शक्रको निकला हुआ देखकर उन्हें ग्रहण किया और उस ही समयसे उनके शरीरमें लग गई। जब देवराजको ब्रह्महत्याका भय उत्पन्न हुआ, तब उन्होंने कमलकी मृणालके बीच छिपकर अनेक वर्षतक वास किया था। हे कौरव! ब्रह्महत्याने भी उनका पीछा कर यत्नपूर्वक उन्हें ग्रहण किया, तब वह अत्यन्त निस्तेज होगये। देवेन्द्रने उससे छुटकारा पानेके लिये बहुत यत्न किया, परन्तु किसी प्रकार भी उस ब्रह्महत्यासे न छूट सके। हे भरतकुल शिरोमणि! अनन्तर सुरराजने उस ब्रह्महत्यासे आक्रान्त होकर पितामहके निकट जाके सिर झुकाके उन्हें प्रणाम किया। हे भरतसत्तम! ब्रह्मा उस समय सुरराजको ब्रह्महत्यासे आक्रान्त जानके चिन्ता करने लगे। हे महाबाहु युधिष्ठिर! उस समय पितामहने ब्रह्महत्याको मधुर वचनसे धीरज देकर कहा, हे भाविनि! तुम इस देवराजको छोड़के हमारा प्रियकार्य्य साधन करो। कहो मैं तुम्हारी कौनसी कामना सिद्ध करूं, इस समय तुम क्या अभिलाष करती हो?

ब्रह्महत्या बोली, हे देव! आप त्रिलोकपूजित और तीनों लोकोंके कर्त्ता हैं, जब आप प्रसन्न हुए हैं, तब मैं अपनी सब कामनाओंको पूर्ण हुई ही समझती हूं। अब मैं कहां वास करूंगी, आप इस विषयमें कोई उपाय निश्चय करिये; आपने लोकरक्षाके लिये यह महती मर्य्यादा स्थापित की है। हे सर्व्व-लोकेश्वर सर्व्वलोक नियामक धर्मज्ञ! आप जब प्रसन्न हुए हैं तब मैं अवश्य ही सुरराजके शरीरसे अन्तर्द्धान हूंगी; इससे अब मेरे वास करनेके लिये स्थान खोजिये।

भीष्म बोले, प्रजापतिने उस समय ब्रह्महत्यासे कहा, कि "वैसाही होगा।" फिर उन्होंने यत्नके सहित उसे इन्द्रके शरीरसे पृथक् किया। अनन्तर महानुभाव स्वयम्भू ने अग्निको स्मरण किया, अग्निने स्मरण करते ही उनके समीप आके कहा, हे भगवन्! मैं आपके निकट उपस्थित हूं, हे अनिन्दित! हे देव! अब मुझे जो कुछ करना हो, उसके लिये आप आज्ञा करिये।

ब्रह्मा बोले, आज मैं इन्द्रके छुटकारेके निमित्त इस ब्रह्महत्याकी कई भागमें बिभक्त करूंगा, इसलिये तुम इसके चौथे भागका एक अंश ग्रहण करो।

अग्निदेव बोले, हे लोकपूजित प्रभु ब्रह्मन्! इससे मैं किस प्रकार मुक्त हूंगा, उसका आप बिचार करिये; मैं इसे ही यथार्थ रूपसे जाननेकी इच्छा करता हूं।

ब्रह्मा बोले, हे हव्यवाह अग्नि! जो मनुष्य मोहवशसे तुम्हें जलती हुई देखके भी बीजाञ्जलि और सोम रससे तर्पित न करेगा, यह ब्रह्महत्या शीघ्र ही उसे अवलम्बन करके उसमें ही निवास करेगी, इसलिये तुम अपना मानसिक शोक दूर करो।

भीष्म बोले, हव्य कव्य भोक्ता भगवान अग्निने ऐसा सुनके पितामहका वह बचन अङ्गीकार करके उस ही समय ब्रह्महत्यासे आक्रान्त हुए। हे महाराज! तिसके अनन्तर पितामह वृक्ष औषधि और तृणोंको आह्वान करके इस विषयको कहना आरम्भ किया। हे राजन्! वृक्ष, ओषधि और तृणसमूह उपर कहे हुए ब्रह्महत्याके विषयको सुनके अग्निकी भांति दुःखित होके ब्रह्मासे यह बचन बोले, हे लोक पितामह! हम ब्रह्महत्यासे कितने समयमें मुक्त होंगे; हम लोग तो देवके जरिये पहलेसेही अभिहत होरहे हैं, इसलिये फिर हम लोगोंको निहत करना आपको उचित नहीं है। हे

देव! हम सर्दी, वर्षा, वायुके वेग, अग्नि और छिद भेदको सदा सहा करती हैं। हे त्रिलोकीश्वर! अब आपकी आज्ञासे इस ब्रह्महत्याको ग्रहण करेंगी; परन्तु आप हम लोगोंको इससे छूटनेकी उपाय विचारिये।

ब्रह्मा बोले, पर्व्वकालमें जो मनुष्य मोहके वशमें होकर तुम लोगोंको छेदन करेगा वा काटेगा, यह ब्रह्महत्या उसहीको अनुगत होगी।

भीष्म बोले, अनन्तर वृक्ष औषधि और तृण समूह ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके उनको सब तरहसे पूजा करके शीघ्र ही निज निज स्थानपर चले गये। हे भारत! तिसके अनन्तर लोक पितामह अप्सराओंको आह्वान करके उन्हें मधुर वचनसे धीरज देके बोले, यह वराङ्गना ब्रह्महत्या रे इन्द्रके शरीरसे निकली है, इस लिये मैं कहता हूं, कि तुम लोग इसका अंश ग्रहण करो।

अप्सरा बोलीं, हे देवेश पितामह! आपकी आज्ञाके अनुसार हम इसे ग्रहण करनेमें सम्मत हुई हैं, परन्तु इससे जिस प्रकार हमारी निष्कृति हो, आप वही उपाय करिये।

ब्रह्मा बोले, जो पुरुष रजस्वला स्त्रीसे मैथुन करेगा यह ब्रह्महत्या उस ही समय उसे आक्रमण करेगी, इसलिये तुम लोग अपनी मानसिक चिन्ता त्याग दो।

भीष्म बोले, हे भरतप्रवर! अप्सराओंने "ऐसा ही होवे" यह वचन कहके प्रसन्नचित्त होकर निज निज स्थानमें जाकर क्रीड़ा करने लगीं। फिर महातपस्वी त्रिलोककर्त्ता प्रजापतिने जलको स्मरण किया, स्मरण करते ही वह आके उपस्थित हुआ। हे राजन्! वह अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माके निकट जाके उन्हें प्रणाम करके यह वचन बोला। हे देव अरिन्दम! आपके शासनके अनुसार हम आपके निकट आये हैं, हे प्रभु लोकेश! हमें क्या करना होगा, उसके लिये आज्ञा करिये।

ब्रह्मा बोले, यह महाभयावनी ब्रह्महत्या वृत्रासुरसे प्रकट होके इन्द्रके शरीरमें प्रविष्ट हुई थी, इस समय तुम इसका अंश ग्रहण करो।

जल बोला, हे प्रभु लोकेश! आपने मुझसे जो कहा वही होगा, परन्तु समयके अनुसार मैं जिस प्रकार इससे छूटूं आपको वैसा ही उपाय सोचना उचित है। हे देवेश! आप ही सब जगत्‌के एक मात्र अवलम्ब हैं, आपको छोड़के दूसरे किसको प्रसन्न करें, जो हमें क्लेशसे उबारेगा।

ब्रह्मा बोले, जो मनुष्य मोहके वशमें होकर अल्प विचार करके तुम्हारे ऊपर मूत्र, श्लेष्म और विष्ठा परित्याग करेगा, यह ब्रह्महत्या शीघ्र ही उसे अवलम्बन करेगी और उसमें ही वास करती रहेगी, इस ही प्रकार तुम्हारी इससे निष्कृति होगी, यह मैंने तुम्हारे समीप यथार्थ कहा है।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! अनन्तर ब्रह्महत्या इन्द्रको परित्याग करके ऊपर कहे हुए स्थानोंमें गई। हे प्रजानाथ! इस ही प्रकार ब्रह्महत्या इन्द्रके शरीरमें प्रविष्ट हुई थी, उन्होंने पितामहकी कृपासे उससे छूटकर अन्तमें उनकी आज्ञासे अश्वमेध यज्ञ किया। हे महाराज! मैंने सुना है, कि देवराज ब्रह्महत्यासे आक्रान्त होनेपर शीघ्रमें अश्वमेध यज्ञ करके पवित्र हुए थे। हे पृथ्वीनाथ! देवराजने सहस्रारि शत्रुओंको संहार करके श्रीसे युक्त होकर आनन्दित हुए थे। हे पृथापुत्र! वृत्रासुरके रुधिरसे जो शिखण्ड नाम कुक्कुट उत्पन्न हुए थे, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और विशेष करके दीक्षित तपस्वियोंके अभक्ष्य हैं। हे कुरुनन्दन! तुम भी सब समयमें इन सब द्विजातियोंके प्रिय कार्य्य को सिद्ध करो, येही पृथ्वीमण्डलपर देवतारूपसे विख्यात हैं। हे कुरुकुल धुरन्धर! इस ही प्रकार अत्यन्त तेजस्वी सुरपतिने सूक्ष्मबुद्धिके सहारे उपाय रचके महासुर

वृत्रको मारा था। हे कुन्तीनन्दन! तुम भी शत्रुनाशन देवराज आखण्डलकी भांति अखण्ड पृथ्वीमण्डलपर अपराजित रहोगे। जो प्रति पर्व्वमें इस दिव्य देवेन्द्र कथाको विप्रोंके बीच कहेंगे, उन्हें कभी पापस्पर्श न कर सकेगा। हे तात! तुम्हारे निकट यह सुरपति और वृत्रासुरका अत्यन्त अद्भुत महत् कर्म्म वर्णन किया अब क्या सुननेकी अभिलाषा करते हो?

२८१ अध्याय समाप्त।

वृत्र बध समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्व्वशास्त्र विशारद महा प्राज्ञ पितामह! वृत्रबध निबन्धनसे इस विषयमें मुझे यह पूछनेकी इच्छा है, कि आपने जो कहा है, कि वृत्रासुर ज्वरसे मोहित होकर इन्द्रके जरिये बज्रसे मरा। हे महाप्राज्ञ! वह ज्वर किस प्रकार और कहांसे उत्पन्न हुआ था। उस ज्वरको उत्पत्तिके विषयको मैं यथार्थ रूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे भारत! इस लोक विख्यात् ज्वरकी उत्पत्तिका जैसा विषय है, उसे विस्तारके सहित कहता हूं सुनो। हे महाराज! पहिले समयमें सुमेरु पर्व्वतपर त्रिलोकपूजित, सब रत्नोंसे बिभूषित और सवित्रमण्डलाधिष्ठित ज्योतिष्क नाम एक शृङ्ग था। हे भारत! सब लोकोंके बीच वह शृङ्ग ही अप्रमेय और अधर्षणीय था, देवोंके देव सुवर्ण भूषित पर्य्यङ्ककी भांति उस शैलतलमें बैठकर बिराजते थे। शैलराजपुत्री सदा उनके पार्श्ववर्त्तिनी रहके शोभा पारही थीं; और महानुभाव देववृन्द, अत्यन्त तेजस्वी वसुगण, भिषग्वर महात्मा दोनों अश्विनीकुमार यक्षोंके राजा कैलासवासी गुह्यकोंसे घिरे हुए श्रीमान् कुबेर और महामुनि शुक्र उस महात्माकी उपासना कर रहे थे। सनत्कुमार आदि महर्षि अङ्गिरा आदि देवऋषि, विश्वावसु नाम गन्धर्व्व, महर्षि नारद और पर्व्वत तथा बहुतसी अप्सरा वहांपर उपस्थित हुई। उस समय विविध सुगन्धियुक्त सुखस्पर्श पवित्र और कल्याणकर वायु बहने लगा वृक्ष सब ऋतुके पुष्पोंसे युक्त होकर फूलोंसे सुशोभित हुए। हे भारत! विद्याधर, सिद्ध और तपस्वी लोग देवोंके देव पशुपतिकी सब प्रकारसे उपासना करने लगे। हे महाराज! अनेक रूपवाले भूतवृन्द, महा रौद्र राक्षसगण-महाबलवान पिशाच और महादेवके अनेक रूप तथा नाना शस्त्रोंको धारण करके प्रसन्न चित्तवाले सब सेवक वहांपर अग्निके समान रूप धरके स्थित थे। भगवान् नन्दी निज तेजसे प्रकाशित होकर प्रज्वलित शूल लेकर महादेवकी आज्ञानुसार वहां खड़े थे। हे कुरुनन्दन! सब तीर्थोंके जलसे उत्पन्न हुई सरिद्वरा गङ्गा मूर्त्तिमान् होकर उस देवको उपासना कर रही थीं। वह महातेजस्वी भगवान् महादेव इस ही प्रकार देवर्षि और देवताओंसे सब प्रकार पूजित होकर वहां निवास करते थे, कुछ समयके अनन्तर दक्ष नामक प्रजापतिने पूर्व्वोक्त बिधानके अनुसार यज्ञ करना आरम्भ किया। इन्द्रादि सब देवता उस समय सम्मत होके उनके यज्ञमें जानेके अभिलाषी हुए। ऐसा सुना जाता है, कि देवताओंने उन महादेवकी अनुमतिके अनुसार अर्क और गङ्गा द्वारसे गमन किया था। उस समय साध्वी शैलराजपुत्री देवताओंको जाते हुए देखकर निजपति देवोंके देव पशुपतिसे यह बचन बोली, हे तत्वज्ञ भगवन्! ये इन्द्र आदि देवता कहां जा रहे हैं। उसे आप यथार्थ रीतिसे कहिये; मुझे अत्यन्त सन्देह होरहा है।

महादेव बोले, हे महाभागे! दक्ष नाम प्रजापतिने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया है, देवता लोग उस ही यज्ञमें गये हैं।

शर्व्वाणी बोली, आपने किस लिये उस

यज्ञमें गमन नहीं किया और किस प्रतिषेधके अनुसार आपका वहां जाना नहीं होता है ।

महादेव बोले, हे महाभागि ! पहले समयमें देवताओंने जो अनुष्ठान किया था, उस किसी यज्ञमें ही मेरा भाग कल्पित नहीं हुआ हे वरवर्णिनि ! पूर्व्व-अनुष्ठानपद्धतिके क्रमसे देवता लोग धर्म्मके अनुसार मुझे यज्ञभाग प्रदान नहीं करते ।

भवानी बोली, हे भगवन् ! आप गुणोंसे सब भूतोंके बीच अत्यन्त प्रभावसे युक्त हैं ; तेज, यश और श्रीसम्पत्तिसे सबसे ही अजय और अधृष्य हैं, हे अनघ महाभाग ! इसलिये आपके यज्ञभाग प्रतिषेधसे मुझे बहुत ही दुःख उत्पन्न हुआ है और सब शरीर शिथिल होरहा है ।

भीष्म बोले, हे राजन् ! देवीने देवोंके देव पशुपतिसे ऐसा कहके दह्यमान अन्तःकरणसे मौनावलम्बन किया । अनन्तर भगवान् देवीके हृदयके चिकिर्षित विषयको जानके नन्दीको "तुम निवास करो" इस ही प्रकार आज्ञा करी अन्तमें वह सर्व्वयोगीश्वर महातेजस्वी पिनाकधारी महादेव योगबल अवलम्बन करके भयङ्कर अनुचरोंके सहारे सहसा उस यज्ञको विध्वंश करनेके लिये उद्यत हुए । हे राजन् ! भूतोंके बीच किसी किसीने अत्यन्त दारुण शब्द करना आरम्भ किया, कोई विकट रूपसे हंसने लगे, किसीने उस यज्ञस्थलमें रुधिर प्रवाहके जरिये हव्यवाहको पूरित कर दिया । कोई कोई विकृतानन प्रमथगण यज्ञके यूपोंको उखाड़के घूमने लगे किसी किसीने मुखके जरिये परिचारकोंको ग्रास कर लिया । हे राजन् ! अनन्तर उस यज्ञने सब प्रकारसे वध्यमान होकर हरिनका रूप धरके आकाशकी ओर गमन किया । निग्रहानिग्रहमें समर्थ शूलपाणिने उस यज्ञको मृगरूप धरके जाते हुए जानके धनुष वाण ग्रहण करके उसका पीछा किया । तिसके अनन्तर क्रोधके कारण उस अत्यन्त तेजस्वी महादेवके ललाटसे महाघोर पसीनेकी बूंद प्रकट हुई वह पसीनेकी बूंद पृथ्वीपर गिरते ही उस समय कालानल सदृश अत्यन्त महान् अग्नि प्रकट हुई । हे पुरुषप्रवर ! तब उस अग्निसे एक भयङ्कर पुरुष उत्पन्न हुआ । वह अत्यन्त ह्रस्व शरीरवाला था, उसके दोनों नेत्र लाल, श्मश्रु, पिङ्गलवर्ण, केश ऊपरको बढ़े हुए थे और बाज तथा उलूकको भांति उसका सब शरीर रोमयुक्त था । वह लाल वस्त्र काला वर्णवाला प्रबलपराक्रमी कराल पुरुष यज्ञको इस प्रकार जलाने लगा, जैसे अग्नि तृणसमूहको भस्म करती है । उस पुरुषने सब भांतिसे देवताओं और ऋषियोंकी ओर दौड़के उपद्रव मचाना आरम्भ किया, देवता लोग उससे डरके दशों दिशामें भाग गये । हे भरतश्रेष्ठ महाराज ! उस समय उस पुरुषके भ्रमण करनेसे पृथिवी अत्यन्त ही विचलित हुई और सारा जगत् हाहाकार करने लगा,—उसे देखके प्रजापति पितामह महादेवके निकट उपस्थित हुए ।

ब्रह्मा बोले, हे प्रभु सर्व्व देवेश्वर ! सब देवता तुम्हें यज्ञका भाग प्रदान करेंगे, इसलिये तुम क्रोध परित्याग करो । हे परन्तप ! हे महादेव ! ये सब देवता और ऋषि लोग तुम्हारे क्रोधसे किसी प्रकार शान्ति लाभ करनेमें समर्थ नहीं हैं । हे देवश्रेष्ठ ! हे धर्म्मज्ञ ! जो पुरुष तुम्हारे स्वेदबिन्दुसे उत्पन्न हुआ है, वह लोकके बीच ज्वर नामसे विख्यात होगा । हे प्रभु ! तुम्हारे एक भूतके तेजको धारण करनेमें सारी पृथ्वी भी समर्थ नहीं है, इसलिये इसे कई प्रकारसे विभक्त करो महादेवने प्रजापतिका वचन सुन और अपना यज्ञ भाग प्रकल्पित हुआ जानके अमित तेजस्वी सब ऐश्वर्य्यसे पूर्ण शिवने ब्रह्मासे कहा कि "ऐसा ही होगा ।" तब पिनाकधारी महादेव प्रजापतिके दिये हुए यथा उचित यज्ञभागको पाकर परम प्रीतिके सहित उत्साह युक्त हुए और वह सर्व्वधर्म्मज्ञ

सदाशिव सब प्राणियोंकी शान्तिके निमित्त प्रागुक्त ज्वरको अनेक प्रकारसे विभक्त करने लगे। हे तात! उन्होंने जिस जीवमें जिस प्रकार उस ज्वरको स्थापित किया उसे सुनो। हे धर्मज्ञ! हाथियोंमें शिरस्ताप, पर्व्वतोंमें शिलाजीत, जलमें सिवार, सांपोंमें कंचुलि, और-भेयोंमें खुर रोग पृथिवीमें ऊसरपन, पशुओंमें दृष्टि अवरोध, घोड़ोंमें गल छिद्रके मासखण्ड, मोरोंमें शिखोद्भेद और कोकिलोंमें नेत्र रोग, ये सबको उक्त महानुभावने ज्वर रूपसे वर्णन किया है और मैंने ऐसा सुना है, कि मेष जातीय पशुमात्रमें पित्तभेद ज्वर रूपसे निर्णीत हुआ है। हे धर्मज्ञ भारत! यह ज्वर मनुष्योंके जन्म मरण और जन्म मरणके मध्यकालमें सदा मनुष्य शरीरमें प्रवेश करता है। महादेवका तेज स्वरूप यह अत्यन्त दारुण सर्व्वनियन्ता ज्वर सब प्राणियोंका नमस्य और माननीय है। धार्मिक प्रवर वृत्रासुर इस ही ज्वरसे आक्रान्त होके जमुहाई लेने लगा, तब देवराजने उसके ऊपर वज्र चलाया था। हे भारत! इन्द्रका चलाया हुआ वह वज्र वृत्रासुरके शरीरमें प्रविष्ट होके उसे विदार किया था। महायोगी महासुर वृत्रने वज्रसे मरकर अत्यन्त तेजसे विष्णुके परम धाममें गमन किया, उस समय उसकी विष्णुभक्तिसे यह सब जगत् व्याप्त हुआ था, इसलिये वृत्रासुरने युद्धमें मरके विष्णुका स्थान प्राप्त किया। हे पुत्र! यह मैंने तुम्हारे निकट वृत्र संक्रान्त महत् ज्वरका विषय विस्तारके सहित कहा है, अब दूसरा कौनसा विषय वर्णन करूं; जो लोग निर्भय चित्त और सावधान होकर इस ज्वरकी उत्पत्तिका विषय सदा पाठ करते हैं, वे रोग रहित, अत्यन्त सुखी और आनन्दित होकर सब अभिलषित विषयोंको पाते हैं।

२८२ अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! वैवस्वत मन्वन्तरमें प्रचेताके पुत्र प्रजापति दक्षका अश्वमेध यज्ञ किस प्रकार विनष्ट हुआ था। देवीको कोपित जानके सर्व्वमय महादेव क्रुद्ध हुए थे; फिर दक्षने उनकी कृपासे पुनर्व्वार किस प्रकारसे उस यज्ञको पूर्ण किया था। मैं इसे ही जाननेकी इच्छा करता हूं, इसलिये आप यथार्थ रीतिसे उसे वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पहिले समयमें हिमालय पर्व्वतपर गन्धर्व्व अप्सराओंसे युक्त अनेक वृक्ष लताओंसे परिपूरित गंगाद्वारमें दक्ष प्रजापतिने यज्ञ किया। उस यज्ञमें भूलोक, स्वर्गलोक और आकाशचारी सब लोग ऋषियोंके सहित धर्म्मात्मा प्रजापति दक्षके निकट हाथ जोड़के उपस्थित हुए थे। देवता, दानव, गन्धर्व्व, पिशाच, सर्प राक्षस और हाहा हूहू नाम गन्धर्व्व, तथा तुम्बुरु, नारद, विश्वावसु, विश्वसेन आदि गन्धर्व्व, समस्त अप्सरा, आदित्यगण, वसु, रुद्र, साध्य और मरुद्गण आदि सब देवता इन्द्रके सहित वहांपर आये थे। ऊष्मपा, सोमपा, धूमपा और आज्यपा आदि ऋषि और पितर तथा ब्रह्माके सहित वहां इकट्ठे हुए थे। ये सब तथा दूसरे बहुतर प्राणी जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज, ये चारों प्रकारके जीव आमन्त्रित होके वहां उपस्थित हुए थे। निमन्त्रित देवतावृन्द निज निज स्त्रियोंके सहित विमानोंमें निवास करते हुए प्रज्वलित अग्निकी भांति विराजते थे। दधीचि उन लोगोंको देखकर क्रुद्ध होके बोले, जिस यज्ञमें भगवान् रुद्रदेव पूजित न हों, वह यज्ञ अथवा धर्म्म नहीं है; समयकी कैसी उलटी गति है, सबका ही सर्व्वनाश उपस्थित हुआ है, इस महायज्ञमें महाघोर प्राणिनाश होनेवाला है, मोह वशसे कोई उसे देखने वा जाननेमें समर्थ नहीं होता है। महायोगी दधीचि इतना कहके ध्यानयुक्त नेत्रसे देखने लगे।

उन्होंने भगवान् महादेव तथा वरदायी देवीका दर्शन किया और देखा कि महात्मा नारद देवीके निकट वर्त्तमान हैं। योगीश्वर महर्षिने योगबलसे यह सब देखकर परम सन्तुष्ट होके विचारा, कि इस यज्ञमें जब भगवान् शङ्कर नहीं निमन्त्रित हुए, तब देवताओंने मिलके एकमत किया है, इससे इसके निकटसे कुछ दूरपर मुझे निवास करना उचित बोध होता है। दधीचि मनही मन ऐसा निश्चय करके वहांसे पृथक् होकर बोले, कि पहले मैंने कभी मिथ्या वचन नहीं कहा और कदाचित कहूंगा भी नहीं; देवता और ऋषियोंके बीच सत्य वचन ही कहता हूं,—अपूज्योंकी पूजा करने और पूज्य पुरुषकी पूजा न करनेसे मनुष्य नरहत्याके समान पापभाजन होता है। देखो जगत्पति विश्वस्रष्टा यज्ञभोक्ता सर्व्वेश्वर पशुपति इस अध्वरमें आरहे हैं।

दक्ष बोले, हाथमें त्रिशूल लिये जटाजूटधारी जो ग्यारह रुद्रगण विद्यमान हैं, वे मुझे अविदित नहीं हैं, परन्तु मैं महादेवको विशेषरूपसे मालूम न कर सका।

दधीचि बोले, जब महादेव इस यज्ञमें निमन्त्रित नहीं हुए, तब मुझे बोध होता है, सब देवताओंने आपसमें सलाह करके एकता की है; जो हो दक्षका यह वृहत् यज्ञ किसी प्रकार भी सिद्ध न होगा।

दक्ष बोले, मैंने इस सुवर्णपात्रमें विधि और मन्त्रपूत समस्त हवि स्थापित करके यज्ञपति अप्रतिम विष्णुके उद्देश्यसे समर्पण किया। ये सर्व्वव्यापी यज्ञपति विभु, यज्ञभाग ग्रहण करनेके अधिकारी हैं, इसलिये उनके उद्देश्यसे आहुति देनी विहित है।

देवी बोली, मैं किस प्रकार दान, नियम वा तपस्या करूं, जिससे कि मेरे पति अचिन्त्य शक्ति भगवान् इस समय आधा वा तीसरा भाग पावेंगे।

नित्य सन्तुष्ट भगवान निज पत्नीको क्षुब्धचित्तसे ऐसा कहते हुए सुनकर बोले, हे कृशोदराङ्गि देवि! क्या तुम मेरी महिमा भूल गई हो; तुम्हारा ऐसा वचन क्या युक्तिसङ्गत हुआ है। हे विशालनयनी! मैं जानता हूं, कि ध्यानहीन असत् पुरुष ही मुझे नहीं जानते, इन्द्रके सहित सब देवता और तीनों लोक तुमसे युक्त मोहके जरिये सब प्रकारसे विमूढ़ हुए हैं। प्रस्तोता साधु लोग अध्वरमें मेरी स्तुति किया करते हैं; साम गान करनेवाले ब्राह्मण रथन्तर सामरूपी मेरी महिमा गाया करते हैं; ब्रह्मविद् ब्राह्मण लोग मेरा यजन किया करते हैं और यजुर्व्वेदी अध्वर्य्युगण मेरे उद्देश्यसे यज्ञभाग प्रदान करनेमें तत्पर हुआ करते हैं।

देवी बोली, अत्यन्त साधारण पुरुष भी स्त्रियोंके निकट निःसन्देह आपकी प्रशंसा और गर्व्व किया करते हैं।

भगवान बोले, हे तनुमध्यमे वरारोहे वरवर्णिनि देवेशि! मैं अपनी प्रशंसा नहीं करता हूं, इस समय जिसे उत्पन्न करता हूं उसे देखो भगवानने प्राणसे भी अधिक प्यारी निज पत्नी उमासे ऐसा कहके निज वक्त्रसे ज्वालमाला संयुक्त शरीरवाले अनेक प्रकार भुजरूपी शस्त्रधारी महाघोर प्रहर्षण एक अद्भुत भूत उत्पन्न किया। वह भूत उत्पन्न होतेही भगवानके समीप हाथ जोड़के बोला, कि "क्या आज्ञा है।" महादेवने उसे दक्षके यज्ञको विध्वंस करनेकी आज्ञा दी।

अनन्तर महादेवके वक्त्रसे उत्पन्न हुआ सिंहके समान उस वीरने अकेलेही देवीका क्रोध शान्त करनेके लिये दक्षके यज्ञको खेलकी भांति विध्वंस किया। महाभीमा महाकाली माहेश्वरी मन्युवशसे महादेवकी आज्ञा लेकर उनके चरणमें प्रणाम करके आत्मकर्म्म साक्षित्व साधन विषयमें उसके सहित अनुगामिनी हुई, पराक्रममें अपने समान बल और रूपसे युक्त

उन भगवान महेश्वरने ही क्रोध स्वरूप धारण किया । अनन्त बल वीर्य्यसे युक्त अमित पौरुषके आधार महादेव देवीके मन्यु-मार्ज्जनके निमित्त वीरभद्र नामसे विख्यात हुए । उन्होंने निज रोमकूपोंसे रौम्य नामक गणेश्वरोंको उत्पन्न किया । अनन्तर वे सब रुद्रके समान वीर्य्यवान और पराक्रमशाली रौद्रगण दक्ष यज्ञको विध्वंस करनेके लिये शीघ्रही वहांसे बाहर हुए । सौ हजार भीमरूप महाकाय गणोंने किलकिला शब्दसे आकाशमण्डलको परिपूरित किया । यज्ञस्थलमें उनके उस भयङ्कर शब्दसे देवता लोग भयभीत हुए पर्व्वत टूटने लगे और पृथ्वी कांपने लगी ; वायु घूमते हुए चलने लगा और समुद्रका जल उथलने लगा; अग्नि निस्तेज हुई और सूर्य्य प्रभाहीन होगया ; ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमण्डल प्रकाशरहित होगये ; देव, ऋषि और मनुष्य अप्रकाशित होकर स्थित हुए । इसी प्रकार सब जगत अन्धकारसे छिप गया, महादेवके अनिमन्त्रणसे अवमानित होकर रुद्रगण सबको जलाने तथा उनके ऊपर प्रहार करनेमें प्रवृत्त हुए । किसी किसीने घोर प्रचण्ड मूर्त्तिधारण करके यज्ञ यूपोंको उखाड़ा, कोई यज्ञस्थलके सब लोगोंका मर्द्दन करने लगे । वायुके समान वेगशाली मनोजव गणोंने दौड़के यज्ञपात्रों और दिव्य आभरणोंको चूर्ण कर दिया । उक्त यज्ञपात्र और सब आभरण टूटनेपर आकाशमण्डलमें स्थित तारा समूहकी भांति दिखाई देने लगे । दिव्य अन्न, पीने और खानेकी वस्तुओंकी पर्व्वतके समान राशि तथा घृत, दूधरूपी कीचड़ और दही मट्ठेरूपी जल तथा खांड़ शक्कर रूपी वालूसे युक्त प्रकाशमान षड्रसोंकी गुड़कुल्या मनोरम दिव्य खीरकी नदियें बहती हुई दिखाई देने लगीं । रुद्रकोपसे कालाग्निके समान महाकाय गण अनेक प्रकार मांस, बहुतसी खाने पीने और दिव्य लेह्य तथा चूष्य वस्तुओंको अनेक प्रकारके रूपसे भोजन करने लगे, किसी किसीने प्रायुक्त भक्ष्य वस्तुओंको लुप्त किया किसीने उठाके फेंक दिया । विविध रूपवाले गणोंने देवताओंकी सेनामें सब तरहसे विभीषिका प्रदर्शित करके उसे विक्षुब्ध कर दिया और सुरयोषितोंको गिराके क्रीड़ा करने लगे । रुद्रकर्म्मा वीरभद्रने रुद्र क्रोधके वशमें होकर यत्नपूर्व्वक देवताओंसे रक्षित सब यज्ञको शीघ्र ही भस्म कर दिया और यज्ञका सिर काटके प्रसन्न होकर सर्व्वभूत भयङ्कर भैरव नाद करने लगे । अनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओं, और प्रजापति दक्षने हाथ जोड़के कहा, "आप कौन हैं ; यही वर्णन करिये ।"

वीरभद्र बोले, मैं रुद्रदेव नहीं हूं, ये भी देवी नहीं हैं, और हम लोग यहांपर भोजन करनेके लिये नहीं आये हैं । देवीको क्रुद्ध हुई जानके सर्व्वात्मा महादेवने क्रोध किया है । मैं विप्रेन्द्रगणोंको देखने वा कौतूहलसे यहां नहीं आया हूं, तुम यह निश्चय जानो, कि मैं तुम्हारे यज्ञको विध्वंस करनेके निमित्त आया हूं । मैं रुद्रकोपसे उत्पन्न होके वीरभद्र नामसे विख्यात हूं, और ये भी देवीके क्रोधसे प्रकट होके भद्रकाली नामसे विख्यात् हुई हैं । हम दोनो महादेवसे प्रेरित होकर इस यज्ञ स्थलमें उपस्थित हुए हैं । हे विप्रेन्द्र ! इसलिये अब तुम देवोंके देव उमापतिकी शरणमें जाओ, महादेवका क्रोध भी उत्तम है, और दूसरेसे वर प्राप्त होना भी कार्य्यकारी नहीं है ।

धार्म्मिक प्रवर प्रजापति दक्ष वीरभद्रका वचन सुनके महादेवको प्रणाम करके स्तुतिवाक्यसे उन्हें प्रसन्न करनेमें प्रवृत्त हुए ।

दक्ष बोले, "मैं दक्ष प्रजापति हूं, इस समय नित्य, निश्चल, अव्यय, समस्त जगत्‌के ईश्वर, महानुभाव महादेव ईशानका शरणागत होता हूं ।" जिस यज्ञमें इकट्ठी की हुई यज्ञीय वस्तुओंके जरिये सब देवता और तपस्वी ऋषिवृन्द बुलाये गये हैं, उसमें विश्वकर्म्मा महेश्वर विश-

चित नहीं हुए ; इसीसे महादेवीने क्रोधित होकर इस यज्ञ स्थलमें निज गणोंको भेजा है यज्ञस्थलके जलने ब्राह्मणोंके भागने और भयङ्कर अग्नि तारासमूहमें प्रविष्ट होनेपर तथा परिचारकोंके शूलसे भिन्न हृदय होके चिल्लाते रहनेपर गणोंने निखात यूपोंको उखाड़के उसहीसे सेवकोंको मारते हुए इधर उधर भगाना आरम्भ किया, मांसलोभी गिद्ध सब ओर उड़ने लगे, उनके पंखकी वायुसे सब लोक कांप उठे, सैकड़ों सियार भयावनी बोली बोल रहे थे, यक्ष, गन्धर्व्व, पिशाच, सर्प और राक्षसोंसे यज्ञभूमि भर गई, शत्रुविजयी अनेक नेत्रवाले देवोंके ईश्वर महादेव यत्नपूर्व्वक वक्षसे प्राण और अपान वायुको निरोध करके सब तरफ देखते हुए सहसा अग्निकुण्डसे प्रकट भये। महादेव उस समय सम्वर्त्तक समान सहस्र सूर्य्य का तेज धारण करके हंसकर दक्षसे बोले, कहो तुम्हारा कौनसा कार्य्य सिद्ध करूं ? अनन्तर देवगुरुने यज्ञाध्याय श्रवण कराया, तब प्रजापति दक्ष भयभीत, शङ्कित तथा डरवश होकर दुःखित शरीरसे आखोंमें आंसू भरके हाथ जोड़कर कहने लगे।—दक्ष बोले, हे भगवान ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हों, अथवा यदि मैं आपका प्रियपात्र समझा जाऊं, अथवा मुझपर कृपा करके यदि आप वरदान करें, तो मैंने बहुत समयतक अनेक प्रयत्नोंसे जो जो सब यज्ञकी सामग्री सञ्चय की थी, जो आपकी आज्ञाके अनुसार खायी, पीयी, जलाई, नष्ट विध्वंस और चूर की गई, मेरे यज्ञकी साधन वे सब वस्तु जिसमें व्यर्थ न हों, मैं यही वर मांगता हूं।

धर्म्माध्यक्ष देव विरूपाक्ष त्रिलोचन प्रमाथ रविनेत्र भगवान दक्षसे "वही होगा" ऐसा वचन कहा अनन्तर दक्ष महादेवसे वर पाकर दोनों जानु पृथ्वीपर रखके एक सौ आठ नामके सहारे वृषभध्वजकी स्तुति करने लगे।

२८३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पापरहित पितामह ! प्रजापति दक्षने जिन सब नामोंके जरिये महादेवकी स्तुति की थी आप वह सब वर्णन करिये, मुझे उन नामोंके सुननेकी अत्यन्त श्रद्धा होरही है।

भीष्म बोले, हे भारत ! अद्भुतकर्म्म करनेवाले महादेवके अप्रकाश्य और प्रकाश्य नामोंको सुनो।

दक्ष बोले, हे जगन्निर्माण क्रीड़ा परायण देवारि बल सूदन देवेश ! तुम इन्द्रियों और बुद्धिके बलको विशेष रूपसे स्तब्ध किया करते हो, तुम इन्द्रादि देवताओं और बाण प्रभृति दानवोंसे पूजित हो, तुम सहस्राक्ष अर्थात् सर्व्वज्ञ हो और हम लोगोंसे विलक्षण व्यवहित विषयोंको जानते हो, इसीसे विरूपाक्ष हो ; तुम सोम सूर्य्य और अग्नि रूपी तीन नेत्र धारण करते हो, इस ही लिये त्रिलोचन कहाते हो ; तुम यक्षाधिपति कुवेरके ऊपर प्रीति किया करते हो इससे तुम्हें नमस्कार है। हे देव ! सब दिशाविभाग ही तुम्हारे कर चरणके समीप विद्यमान है, सब दिशामें ही तुम्हारे नेत्र, सिर और मुख प्रकाशित होरहे हैं ; सर्व्वत्र तुम्हारे श्रोत्र (कान) फैले हुए हैं, तुम लोकके बीच सब वस्तुओंमें परिपूरित होकर निवास कर रहे हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है। तुम शंकुकर्ण, महाकर्ण, कुम्भकर्ण, अर्णवालय, गजेन्द्रकर्ण, गोकर्ण और पाणिकर्ण, इन सात प्रकारके निजगणोंसे अभिन्न हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है। तुम शतोदर, शतावर्त्त और शतजिह्वरूपी विश्वरूप हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है। तीनों सन्ध्या, गायत्री हो, जपमें रत मुनि लोग तुम्हारी ही महिमा गाया करते हैं, सूर्य्यकी उपासनामें तत्पर मनुष्य तुम्हें ही सवितृमण्डलाधिष्ठित जानके उपासना करते हैं। मुनि लोग तुम्हें ही शतक्रतु समझते और तुम्हें ही

सर्व्व उपाधिगम्यअन्तर्गत आकाशकी भांति प्रसन्न बोध किया करते हैं।

हे समुद्र और आकाशतुल्य महामूर्त्ते! तुममें भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य्य, चन्द्रमा और यजमानस्वरूप अष्टमूर्त्तिके बीच गोशालमें गौओंकी भांति सब देवता ही निवास करते हैं। तुम्हारे इस शरीरमें चन्द्रमा, अग्नि, आदित्य, वरुण विष्णु, ब्रह्मा और बृहस्पतिको देखता हूं। तुम्हीं सब ऐश्वर्य्यसे युक्त होकर सत् और असत पदार्थोंके कारण स्वरूप हो, तुम ही उत्पत्ति और प्रलयके कारण हो। तुम्हीं वरदाता, भव, सर्व्व और रुद्रदेव हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम अन्धक दानवके मारनेवाले पशुपति हो, इससे तुम्हें सदा नमस्कार है। तुम त्रिजटा, त्रिशीर्ष, त्रिशूलपाणि हो; तुम शास्त्र, आचार्य्य और ध्यानरूप तीन नेत्र धारण करते हो, इस ही कारण त्र्यम्बक और चन्द्रमा, सूर्य्य तथा अग्निरूपी तीनों नेत्र प्रकट किये हो, इसीसे त्रिनेत्र कहाते हो, त्रिपुर दानवका वध करनेसे तुम्हारा त्रिपुरघ्न नाम हुआ है, इससे तुम्हें नमस्कार है। सबके संहार करनेमें समर्थ होनेसे तुम्हारा चण्डनाम हुआ है, तुम अपनेमें जगतको धारण करनेमें समर्थ हो, इसीसे कुम्भ नामसे विख्यात हुए हो, तुम ब्रह्माण्ड स्वरूप हो और ब्रह्माण्डको धारण कर रहे हो; तुम सबके शासनकर्त्ता होनेसे दण्डी नामसे अभिहित हुआ करते हो, तुम सीधे और टेढ़े हो; तुम दण्डधर और परिव्राजक हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम ऊर्द्ध्वदंष्ट्र और ऊर्द्ध्वकेश हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम विशुद्ध हो और जगत् रूपसे विस्तृत हो; तुम विलोहित धूम्रवर्ण और नीलग्रीव हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम विरूप हो तथा तुम्हारे प्रतिरूपमें कोई भी नहीं है और तुम शिवस्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम सूर्य्यमण्डल स्वरूप हो और सूर्य्यमण्डलके मध्यवर्त्ती परमेश्वर तथा सूर्य्यके समान पताकायुक्त हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम प्रमथनाथ, वृषस्कन्ध, धनुर्द्धारी, शत्रुदमन, दण्डधारी और पर्णचीर पटधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम हिरण्यगर्भ, हिरण्यकवच, हिरण्यके जरिये कृतचूड़ और हिरण्यपति हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम स्तुत, स्तुत्य और स्तूयमान हो, तुम्हीं सर्व्वस्वरूप, सर्व्वभक्ष और सब भूतोंकी अन्तरात्मा हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम होता और मन्त्रस्वरूप हो, तुम ही शुक्लवर्ण ध्वज पताकाशाली हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम समस्त जगत्‌की नाभिस्थानीय हो, कार्य्य कारण प्रपञ्चरूप और सब आवरणोंके आवरक हो इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम कृशनास, कृशाङ्ग कृश और संहृष्ट हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम किलकिला शब्द विशेष स्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम शयमान, शयित, उत्थित, अवस्थित तथा धावमान हो, तुम मुण्ड और जटी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम मुखवाद्य करते हुए नर्त्तकशील, नदीमें उत्पन्न पद्म पुष्प उपहारमें लुब्ध और गीतवादित्रशाली हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम सबसे अवस्थामें ज्येष्ठ और गुणोंमें सबसे अधिक होनेसे श्रेष्ठ हो, तुम बलके अभिमानी देवेन्द्रके प्रमथनकारी हो; तुम कालके नियन्ता और सब कार्य्योंमें समर्थ हो; तुम महाप्रलय और अवान्तर प्रलयस्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है भयङ्कर दुन्दुभी नक्कारे आदि बाजेकी भांति तुम्हारी वाणी है, तुम अनशन आदि व्रत करते हो, तुम प्रचण्डरूप दशबाहु हो, इससे तुम्हें सदा नमस्कार है। तुम कपालपाणि और चिताभस्म प्रिय हो इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम निर्भय और भयङ्कर हो, तथा शम दम आदि व्रतोंके जरिये तुम्हें जाना जा सकता है, इस ही लिये तुमने

भीमजलधर नाम धारण किया है, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम विकृत वक्र, खड्गजिह्व दंष्ट्री हो, तुम पक्वान्न वा आम मांसके लोभी हो और तुम्बी-निर्म्मित वीणाप्रिय हो, इससे तुम्हें प्रणाम है।

तुम वृष्टिकर्त्ता, धर्म्महित, धर्म्म, वृद्धिकारी और धर्म्म हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम वायु आदि रूपसे नित्य गमनशील नियन्ता और सब प्राणियोंके संहारकर्त्ता हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम सबसे वरिष्ठ श्रेष्ठ और वरदाता हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम उत्तम माला, वस्त्र और सुगन्ध धारण किया करते हो, तुम लोगोंके अभिलषित वरसे भी अधिक वरदान करते हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम अनुरक्त और विरक्त हो, तुम ही ध्यानकर्त्ता तथा अक्षिमाली हो, तुम छाया रूप और आतप हो, और तुम कारण रूपसे सर्व्वत्र अनस्युत तथा कार्य्य रूपसे व्यावृत हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं अघोर तथा घोररूपी हो तुम सब भयङ्कर पदार्थोंसे भी भयङ्कर हो, तुम शिव, शान्त और शान्ततम हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम एकपाद और बहुनेत्र तथा एकशीर्ष हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम क्षुद्र, क्षुद्रलुब्ध और संविभागप्रिय हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम स्वर्णकार, लोहकार और भस्त्रादि कर्म्मकर्त्ता विश्वकर्म्मा, शिताङ्ग और नित्य शान्त हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम शत्रुओंको त्रासन करनेके लिये भयङ्कर घण्टा धारण किया करते हो और तुम स्वयं घण्टानाद स्वरूप तथा नादके अभावमें भी तुम नादावशिष्ठ अर्थात् अनाहत ध्यान-विशिष्ट हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम योगबलसे एकही बार सहस्र घण्टा निनाद करनेमें समर्थ हो, तुम घण्टामालाप्रिय हो, तुम्हारा प्राणवायुमें ही घण्टाकी भांति शब्दका हेतु है, इसलिये तुम प्राणघण्ट हो; तुम अतिशय प्रबल गन्ध और कलकल महाध्वनि स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है।

तुम क्रोधमयी हुङ्कारके शान्तिस्वरूप हो, पृथ्वी आदि लोकोंसे अतीत परम शान्त ब्रह्म-स्वरूप हो; तुम ही तुरीय शान्त परब्रह्म हो; तुम क्रोधवर्ज्जित हुङ्कारप्रिय हो; तुम शान्त वा परम शान्त हो, पहाड़ और सब वृक्ष तुम्हारे स्थान हैं, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम हृदय जिह्वा वक्षस्थल आदि अवदानगत मांस भक्षणमें शृगाल सदृश लुब्ध हो; तुम यज्ञभाग-स्वरूपसे पाप मोचक हो तुम्हें ही अवलम्बन करके सब लोग पापसे छूटते है, तुम ही यज्ञ और यजमान स्वरूप हो, तुम ब्राह्मण तथा अग्निके मुखमें आहुति प्राप्त होनेसे परितृप्त हुआ करते हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम ऋत्विकादिरूपसे यज्ञ निर्व्वाहकर्त्ता जितेन्द्रिय, सतोमय और रजोमय हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम तट, तटिनी और तटिनीपति समुद्र स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है! तुम अन्न-दाता, अन्नपति और अन्नभोक्ता हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम सहस्र शिर और सहस्र चरण हो इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम सहस्र शूल उद्यत करके निवास करते हो और तुम सहस्र नेत्र हो; तुम बालार्कके सदृश वर्ण धारण करते और बालकका रूप धारण किया करते हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम बालक और अनुचर गणोंके रक्षा कर्त्ता, बाल क्रीड़नकी स्वरूप हो; तुम वृद्ध लुब्ध, क्षुब्ध और क्षोभण स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम तरङ्गाङ्कित केश वा मुञ्जसदृश केश धारण करते हो, इससे तुम्हें प्रणाम है, तुम षट्कर्म्म परितुष्ट और यजन अध्ययन वा दान, इन तीनों कर्म्मोंमें तत्पर हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम वर्ण और आश्रमोंके पृथक् पृथक् कर्म्म समुदायोंके विधिपूर्व्वक निवर्त्तक हो; तुम घुष्य, घोष और कलकल ध्वनिस्वरूप हो, इससे तुम्हें

प्रणाम है। तुम श्वेत और पिङ्गल नेत्र, कृष्ण-वर्ण और लाल नेत्रवाले हो, तुम जितश्वास आयुधस्वरूप विदारणरूप और कृश हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष विषयमें तुम्हारी ही कथा कही जाती है; तुम निरीश्वरवादी सांख्य और ईश्वरवादी पातञ्जल हो; तुम वेदान्त विचार तथा निदिध्यासन योगके प्रवर्त्तक हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम कभी विरथ होकर पर्य्यटन करते हो, जल, अग्नि, वायु और आकाश, इन चारोंमें ही तुम्हारे रथकी अव्याहत गति हुआ करती है। तुम काले मृगछालका वस्त्र धारण करते हो और सांपका यज्ञोपवीत पहना करते हो इससे तुम्हें प्रणाम है।

हे ईशान! हे वज्रसदृश कठोर शरीरवाले! हे पिङ्गलकेश! तुम्हें नमस्कार है। तुम त्रिलोचन अम्बिकानाथ हो, तुम ही कार्य्य और कारण स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम काम स्वरूप कामदाता, कामहन्ता और तृप्तातृप्त विचारी हो; तुम सर्व्वस्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। हे महाबाहु महासत्व, महाबल, महाद्युति महामेघरूपी महाकाल! तुम्हें प्रणाम है। तुम स्थूल, जीर्णाङ्ग, जटिल और वल्कल वस्त्रधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम प्रकाशमान सूर्य्य और अग्निकी भांति जटावि-शिष्ट हो, वल्कल और मृगछालका वस्त्र धारण करते हो। हे सहस्र सूर्य्य समान तपमें रत रहनेवाले! तुम्हें प्रणाम है। लोक व्यामोहक सैकड़ों तरङ्गसे युक्त गङ्गाजलसे तुम्हारा शिर आर्द्र हुआ है, तुम चन्द्रमाको बार बार आव-र्त्तित करते हो, सब युगल और बादलोंको बार बार आवर्त्तन किया करते हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम अन्न स्वरूप, अन्नपालक, अन्नदाता, अन्नभोक्ता, अन्नस्रष्टा, अन्नपक्ता, पक्वभुक्, पवन और अग्नि हो; तुम ही जरा-युज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज हो। हे देव देवेश! तुमही चार प्रकारके भूतग्राम हो। तुम स्थावर जङ्गमात्मक जगत्के स्रष्टा और प्रतिहर्त्ता हो। हे ब्रह्मविदर! ब्रह्मज्ञ लोग तुम्हें ही ब्रह्म कहा करते है; तुम मनकी परम योनि हो, आकाश वायु और अग्निके अवलम्बन हो, ब्रह्मवादी पुरुष तुम्हें ही ऋक् साम और ओंकार स्वरूपसे वर्णन करते हैं।

हे सुरश्रेष्ठ! साम गान करनेवाले ब्रह्म-वादी लोग तुम्हें ही हायि हायि, हुवाहायि हुवा-हायि, आदि सामगान पूरक स्तोभ वाक्य कहा करते है। यजुर्मय ऋग्वेदमय और आहुतिमय वेद हो और उपनिषदोंमें कही हुई सब स्तुति तुम्हारा ही वर्णन किया करती हैं, तुम ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण हो; तुम्हीं बादलसमूह बिजली और सजल वा निर्ज्जल घन गर्ज्जन स्वरूप हो, तुम ही सम्व-त्सर, ऋतु, मास, मासार्द्ध, युग, निमेष और काष्ठास्वरूप हो; तुम ही ग्रह और नक्षत्र स्वरूप हो, तुम वृक्षोंके गुद्दा, और पहाड़ोंके शिखर, मृगसमूहके बीच बाघ, पक्षियोंमें तार्क्ष्य और भोगियोंके बीच अनन्त हो। तुम सब समुद्रके बीच क्षारोद यन्त्रोंके बीच सत्य हो। तुम ही सब शास्त्रोंके बीच वज्र और व्रतोंमें सत्य हो। तुम ही द्वेष, इच्छा, राग, मोह, क्षमा, अक्षमा, व्यवसाय, धृति, लाभ, काम, क्रोध, जय और पराजय स्वरूप हो। तुम गदा, बाण, शरासन तथा खट्वाङ्गधारी और झर्झर वाद्यधारण किया करते हो; तुमही छेत्ता, भेत्ता प्रहर्त्ता, नेता और सन्तापिताररूपसे शास्त्रका-रोंके जरिये वर्णित हुए हो। तुम ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य अपरिग्रह यम, सन्तोष तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, इन दश प्रकारके लक्षणोंसे युक्त धर्म तथा काम स्वरूप हो। तुम ही गंगा आदि सब नदी समुद्र, पल्वल और तालाब हो। तुम ही लता, वल्ली, तृण, औषधि, पशु, पक्षी और कुमकस्वरूप

हो। तुम द्रव्य तथा सब कर्म्मोंके समारम्भ और पुरुष फलप्रद कालस्वरूप हो; तुम ही वेदोंके आदि और अन्त हो; तुम ही गायत्री और ओंकार हो; तुम ही हरित, लोहित, नील, कृष्ण, रक्त, अरुण, कपिल, पिंगल, कपोत, और मेचक, इस दस प्रकारके वर्ण स्वरूप हो। तुम वर्णहीन और सुवर्ण वर्णकार तथा उपमारहित हो, तुम सुवर्ण नामा और सुवर्णप्रिय हो। तुम ही इन्द्र, यम, वरुण, कुवेर, अग्नि, उपराग, चित्रभानु, स्वर्भानु और भानु स्वरूप हो। तुम ही होम साधक अग्नि, होता, होम्यकृत और प्रभु हो; तुम त्रिसुपर्ण, मन्त्र शिक्षित ब्रह्म और यजुर्वेदमें स्थित शतरुद्रिय हो। तुम सब पवित्र वस्तुओंके बीच अत्यन्त पवित्र और निखिल मंगलके भी मंगल हो। तुम पर्व्वतके तुल्य अचेतन शरीरको सचेतन करते हो, इस ही लिये गिरिक और हिण्डुक अर्थात् चिदाभास नामसे वर्णित हुए हो। तुम उपाधियुक्त होकर नाशमान हुआ करते हो, इस ही लिये वृद्ध स्वरूप और शुद्ध स्वरूपसे जीवित रहते हो, कभी विनष्ट नहीं होते, इसहीसे जीव स्वरूप हो, तुम पूर्ण और गलित स्वरूप हो; तुम पूर्ण और जलित हो। इसहीसे देहस्वरूप हो। तुम प्राणस्वरूप, और सत, रज, तम तथा अप्रमद अर्थात् प्रमादहीन ऊर्द्ध्वरेता हो। तुम प्राण, उदान, अपान, समान और व्यान वायुस्वरूप हो। तुम उन्मेष निमेष, क्षुत और जिम्भृत हो तुम लोहित वा अन्तर्गत दृष्टि धारण करते हो, तुम महावक्त्र और महादेव हो। तुम सूई समान रोए और पिंगलवर्ण श्मश्रु धारण करते हो; तुम ऊर्द्धकेश और अत्यन्त चञ्चल हो। तुम गीतवादके तत्त्वज्ञ और गीतवादप्रिय हो। तुम मत्स्यरूपी जलचर हो, संसारनदी जलमें विचरते हो, इस ही निमित्त वासनाजालसे बद्ध हो। तुम दुर्द्धर, केलिकल, कलि, अकाल, अतिकाल, दुष्काल, और कालस्वरूप हो। तुम मृत्यु और छेदन साधन क्षुरस्वरूप और छेदन योग्य हो, तुम सबके मित्र और शत्रु व्यूहके नाशक हो; तुम मेघकाल, महादंष्ट्र, सम्वर्त्तक और बलाहक हो। प्रकाशवान हो इस ही लिये घण्ट और मायाविस्तृत रूपसे प्रच्छन्न प्रकाश हो, इसहीसे तुम्हारा नाम अव्यक्त है। तुम आप मनुष्योंके कर्म्मफलकी घटना करते हो, इसहीसे घटी और घण्टा धारण किया करते हो, इस ही निमित्त घण्टी कहाते हो। आप स्थावर जंगम जीवोंके सहित क्रीड़ा करते हो, इसही कारण सबहीसे और सबके सहित संश्लिष्ट हो, इस ही निमित्त मिलि मिली नाम ऐसा धारण किया है। तुम ब्रह्म और वह्नि जाया स्वाहा हो; तुम ही दण्डी मुण्ड और त्रिदण्डधारी परमहंस हो। तुम चारो युग, चारो वेद और चतुर्होत्र प्रवर्त्तक हो। तुम भगनेत्राङ्कुश, चण्ड तथा सूर्य्यदन्त विनाशन हो। तुम स्वाहा, स्वधा, वषट्कार, प्रणाम और प्रणामके प्रतिरूप नमोनमः स्वरूप हो। तुम गूढ़व्रती, गुह्यतपो, प्रणव और तारकामय हो। तुम आदि कर्त्ता हो, इस हीसे धाता, भौतिक, स्रष्टा होनेसे विधाता सब वस्तुओंको एकत्रित करके स्थापित करते हो, इस ही कारण सन्धाता, अदृष्ट कर्म्मोंके विधान करनेसे विधाता, सबके अधिष्ठानभूत होनेसे कारणात्मा और तुम्हारा कोई आधार नहीं है, इस ही लिये अधर हो। तुम ही ब्रह्मा, तपस्या, सत्य ब्रह्मचर्य्य, अर्ज्जुन, भूतात्मा भूतकृत, भूत और भूत भविष्यत् वर्त्तमानके उद्भवकर्त्ता हो। तुम भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक और ध्रुवलोक हो। तुम जितेन्द्रिय होनेसे महेश्वर कहाते हो; तुम ही दीक्षित, अदीक्षित, क्षान्त, दुर्दान्त और अदान्त नामसे हो। तुम चन्द्रमाके आवर्त्तनकारी मास, युगके आवर्त्तनकारी और सृष्टिके कारण प्रलय स्वरूप हो। तुम कामिनीके अभिलाष, काम, पुत्र,

बीजभूत तकेर अंश बिन्दु स्वरूप हो। आप सूक्ष्म, अचल और स्थूल हो; तुम कर्णिकाके पुष्पमाला प्रिय हो। तुम आनन्द जनक, आनन्दमय और भयङ्कर मुख धारण करते हो। आप ही सुमुख दुर्मुख और मुखविहीन हुआ करते हो। तुम चतुर्मुख बहुमुख और युद्धके समयमें अग्निमुखी होते हो। आप हिरण्यगर्भ और पक्षीकी भांति असङ्ग हो, तुम महोरगपति और विश्वव्यापी विराट हो। आप अधर्महन्ता, महापार्श्व, चण्डधार और गणाधिप हो। आप कृष्णावतारमें गोपबालकोंके सङ्ग क्रीड़ाके समय गौवोंके समान शब्द करते थे, इसलिये गोनर्द हो; गौवोंका विषजलसे पूर्ण रीतिसे उबारनेसे तुम्हारा नाम गोप्रतार है; गोवृषश्वर नन्दी ही तुम्हारा वाहन है। तुम त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्द हो; तुम इन्द्रियोंके द्वारस्वरूप और इन्द्रियोंके अगोचर हो। तुम ही श्रेष्ठ, स्थिर, स्थाणु, निष्कम्प और कम्प स्वरूप हो। तुम मृत्युरूपसे दुर्व्वारण तथा दुष्ट विषयोंके नाशक हो, इससे दुर्व्विषह हो। तुम युद्धमें दुःसह तथा तुम्हें कोई अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं है, इस ही निमित्त दुरतिक्रम हो, तुम्हें कोई मोहित करनेमें समर्थ नहीं होता, इस ही लिये तुम दुर्द्धर्ष हो; तुम्हें कोई कंपानेमें समर्थ नहीं है, इस ही कारण तुम दुष्प्रकम्प हो; अत्यन्त दुःखसे भी लोग तुम्हारी महिमाकी सीमामें प्रवेश नहीं कर सकते इससे तुम दुर्व्विश हो, कोई तुम्हें जय करनेमें समर्थ नहीं है, इसहीसे दुर्जय तथा तुम स्वयं जयरूपी धर्मराज हो। तुम शीघ्र गमन करनेमें समर्थ हो, इसहीसे तुम शश कहाते हो, तुम ही शशाङ्क और शमन हो; तुम ही शीत, उष्ण, क्षुधा, जरा आदि व्याधि और आधि धारण किया करते हो। तुम ही आधि व्याधिके नाशक हो, तुम मेरे यज्ञमें मृगके लिये व्याध स्वरूप हो। तुम ही सब व्याधियोंके आगम और अपगम स्वरूप हो। तुम शिखण्ड पुण्डरीकाक्ष और पुण्डरीक वनालय हो। तुम दण्डधार, त्रिनेत्र, उग्रदण्ड और दण्डनाशन हो। तुम ही विषाग्रपायी, सुरश्रेष्ठ, सोमपा और मरुत्पति हो। हे देव जगन्नाथ! तुम अमृत पीनेवाले देव गणेश्वर-विषाग्निपायी मृत्युञ्जय, क्षीरपा और सोमपायी हो। तुम विपदग्रस्थ लोगोंके त्राता, देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माके भी रक्षाकर्त्ता हो। तुम हिरण्यरेता पुरुष हो, तुम ही स्त्री, पुरुष और नपुंसक हो; तुम ही बालक, युवा, वृद्ध और जीर्णदंष्ट्र हो; तुम ही नागेन्द्र और शक्र हो; तुम जगत्की सृष्टि करनेवाले, विश्व कर्त्ता और विश्व संहर्त्ता हो, तुम ही विश्वस्रष्टा प्रजापतियोंके वरणीय हो। तुम पालन और पोषणके जरिये जगत्का धारण करते हो, इस ही लिये तुम्हारा नाम विश्ववाह है। तुम विश्वरूप, तेजस्वी और विश्वमुख हो, चन्द्रमा और सूर्य्य तुम्हारे दोनों नेत्र हैं, तुम सबके हृदय स्वरूप और पितामह हो; तुम ही महासागर हो; तुम ही वर्णरूपी सरस्वती और वैरोचवल स्वरूप हो; तुम ही अग्नि और वायु रूपी हो, समस्त अहोरात्र स्वरूप हो; तुम्हारे बिना ब्रह्मा आदि इन्द्र पर्य्यन्त कोई भी निमेष और उन्मेष कर्म साधन करनेमें समर्थ नहीं हैं।

हे शिव! ब्रह्मा, विष्णु और पुराण जाननेवाले ऋषि लोग यथार्थ रूपसे तुम्हारे माहात्म्यको जाननेमें समर्थ नहीं हैं। तुम्हारी जो सब सूक्ष्म मूर्त्ति हैं, वे हमारे दृष्टिगोचर नहीं होतीं, जैसे पिता निज पुत्रकी रक्षा करता है, वैसे ही तुम सदा मेरी रक्षा तथा परित्राण करो। हे अनघ! मैं तुम्हारा रक्षणीय हूं, इसलिये तुम मेरी रक्षा करो, मैं तुमको प्रणाम करता हूं। तुम सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त भगवान् हो, भक्तोंके ऊपर कृपा किया करते हो; मैं सदा तुम्हारा अनुरक्त भक्त हूं।

इससे मेरी रक्षा करो। जो सहस्रों पुरुषोंको तपस्यासे अभिभूत करके अन्य ध्यान और आत्मभावसे रहित होके सब कार्य्योंके समाप्त होनेपर अकेलाही निवास करता है, वह सदा मेरी रक्षाका विधान करे। जितेन्द्रिय, श्वास जीतनेवाले, सत्वस्थ और संयतेन्द्रिय योगी लोग जिस योगी स्वरूपको देखते हैं, उस योगात्मा पुरुषको नमस्कार है। जो जटिल और दण्डधारी हैं, जिसका शरीर लम्बोदरसे अलंकृत है, और कमण्डल ही जिसका तूण स्वरूप है, अर्थात् कमण्डलके जलसे ही जो यक्ष, राक्षस आदिका नाश करता है, उस चतुर्मुख ब्रह्मस्वरूपको नमस्कार है, जिसके केशमण्डलके बीच जो भूतगण अंगकी सन्धियोंमें नदियें, और कुक्षिमें चारों समुद्र वर्त्तमान हैं, मैं उस सलिलशायीका शरणापन्न हुआ हूं। जो रात्रिमें राहुके मुखमें प्रवेश करके चन्द्रमण्डलको और जो स्वयं स्वभानु होकर सूर्य्यको ग्रास किया करता है, वह सब भांतिसे मेरी रक्षा करे। जो सब अत्यन्त शिशु सृष्टिमें प्रविष्ट हुए हैं और जो सब देवता तथा पितर लोग विधिपूर्व्वक यज्ञभाग ग्रहण करते हैं, उन्हें प्रणाम है; वे लोग स्वधा और स्वाहा मन्त्रके जरिये दी हुई हव्यकव्य प्राप्त करके हर्षित होवें; जो अङ्गुष्ठ परिमाण पुरुष अर्थात् जीव देहधारियोंके शरीरमें निवास करता है, वह सदा मेरी रक्षा करे तथा मुझे आप्यायित करे। जो देहस्थ होके भी रोदन नहीं करता, और देहधारियोंको रुलाया करता है, स्वयं हर्षित न होके भी देहधारियोंको हर्षित किया करता है, उसे सदा प्रणाम करता हूं। जो नदी, समुद्र, पहाड़, गुफा, वृक्षकी जड़, गोष्ठ, कान्तार, गहन, चतुष्पद, रथ्या, चत्वर, तट, हाथी, घोड़े और रथशाला, जीर्ण बगीचे और स्थान, पञ्चभूत, दिशा, विदिशा तथा चन्द्रमा सूर्य्यके अन्तर्गत होके भी चन्द्र सूर्य्यके किरणमण्डलमें निवास करता है और जिन्होंने रसातलके मध्यगत होके भी ईश्वरके निमित्त वैराग्य अवलम्बन किया है उन्हें बारम्बार प्रणाम करता हूं। जिनकी संख्या और प्रमाण नहीं है तथा किसी प्रकारका रूप नहीं है उन अनगिनत रुद्रगणको प्रणाम करता हूं।

हे भूतनाथ! तुम सब भूतोंके सृष्टिकर्त्ता और संहर्त्ता हो; तुम प्राणियोंकी अन्तरात्मा और सर्व्वभूतपति हो, इस ही निमित्त तुम्हें निमन्त्रण नहीं किया, तुम अन्तर्य्यामी और अन्तरात्मा होनेसे साधारण देवताओंकी भांति व्यवहित वा पृथक् भूत नहीं हो, इस ही लिये तुम्हारा मेरे यज्ञमें निमन्त्रण विहित नहीं हुआ। लोग विविध दक्षिणायुक्त यज्ञसे तुम्हारा ही यजन किया करते हैं और तुम ही सबके कर्त्ता हो, इसलिये निमन्त्रित नहीं हुए। हे देव! अथवा मैं आपकी सूक्ष्म मायासे मोहित हुआ था, उस ही कारणसे आपको निमन्त्रण नहीं किया। हे भव! मैं आपका भक्त हूं, इसलिये मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। हे देव! हमारा मन, बुद्धि और हृदय तुममें ही समर्पित है।

प्रजापति दक्ष इस ही प्रकार महादेवकी स्तुति करके चुप हुए भगवान् भी अत्यन्त प्रसन्न होकर फिर दक्षसे बोले, हे सुव्रत दक्ष! इस स्तुतिसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं, अधिक कहनेका क्या प्रयोजन है, तुम हमारे निकटवर्त्ती होगे। हे प्रजापति! तुम मेरे प्रसादसे सहस्र अश्वमेध और एक सौ वाजपेय यज्ञके फलभागी होगे। अनन्तर लोकाधिपति वाक्यवेत्ता महादेव दक्षसे युक्तियुक्त धैर्य्यवचन कहने लगे। हे दक्ष! तुम इस यज्ञमें विघ्न होनेसे दीनता अवलम्बन मत करो, क्यों कि भावी कार्य्य अत्यन्त अप्रतिहार्य्य हैं। मैंने पूर्व्वकल्पमें तुम्हारा यज्ञ विध्वंस किया था, इससे सब कल्पोंकी ही समान रूपताके कारण इस

बार भी तुम्हारे यज्ञका नाशक हुआ। हे सुव्रत! मैं फिर तुम्हें वरदान करता हूं, तुम उसे ग्रहण करो और प्रसन्न वदन होकर एकाग्रचित्तसे उस विषयको सुनो। मैंने षड़ङ्गयुक्त वेद, सांख्य, योग और युक्ति शास्त्र अर्थात तर्कसे उद्धार करके देवता-दानवोंके दुस्तर अत्यन्त तपस्या की थी; जो षड़ङ्ग वेद, सांख्य और तर्कसे अनधिगत, उपनिषदोंमें प्रकाशित, फल कालमें मङ्गलस्वरूप है, सब वर्ण और आश्रमोंके अधिकृत मोक्षका कारण है, बहुत समयमें सिद्ध होनेवाले अप्रकाश अज्ञानी कर्मठ पुरुषोंके निन्दित वर्ण धर्म और आश्रम धर्मोंसे विपरीत कोई कोई ग्रन्थ विशेषमें जो वर्णकर्म और आश्रमधर्म कहके वर्णित है तथा जो सिद्धान्तज्ञ पण्डितोंके जरिये निश्चित है, और जो परमहंस परिव्राजकोंके जरिये आचरित हुआ करता है, हे दक्ष! मैंने पहले समयमें उस शुभप्रद पाशुपत व्रतको उत्पन्न किया था, उक्त व्रतको करनेसे पुष्कल फल मिलता है। हे महाभाग! तुम्हें उस ही पाशुपत व्रतका फल मिले; तुम अपना मानसिक शोक परित्याग करो। अत्यन्त पराक्रमी महादेव दक्षसे ऐसाही कहके उनके सम्मुख ही पत्नी और अनुचरोंके सहित अन्तर्द्धान हुए, जो लोग दक्षके कहे हुए इस स्तोत्रको कहते वा सुनते हैं, उन्हें कुछ भी अशुभ नहीं होता, परमायुकी वृद्धि हुआ करती है। जैसे सब देवताओंके बीच भगवान् महादेव वरिष्ट हैं, वैसे ही सब स्तोत्रोंके बीच यह स्तोत्र उत्तम है, इसलिये यह वेदवाक्य सदृश है, इसमें वेदोंका अर्द्धभाग और पुराणोंका अर्द्धभाग विद्यमान है। जो लोग यश, राज्य, सुख, ऐश्वर्य, काम्य, विषय और धनकी इच्छा करते हैं, तथा जो लोग ब्रह्म दर्शनको अभिलाष किया करते हैं, वे यत्न और भक्तिपूर्व्वक इसे सुने, इसके सुननेसे रोगी, दुःखी, दीन, चोरग्रस्त, भयसे पीड़ित अथवा राज कार्य्यके निमित्त अभियुक्त पुरुष अवश्य भवसे मुक्त होते हैं। इस स्तोत्रके सुननेसे मनुष्योंको इस ही शरीरसे प्रमथगणकी समता प्राप्त हुआ करती है, और तेजस्वी, यशस्वी तथा पापरहित होते हैं। जिसके गृहमें इस स्तोत्रका पाठ होता है, राक्षस पिशाच भूत और विनायकगण कभी वहां विघ्न नहीं करते। जो स्त्री महादेवमें भक्ति करके ब्रह्मचारिणी होकर श्रद्धायुक्त इस स्तोत्रको सुनती है, वह पितृकुल और मातृकुलमें देवताको भांति पूजनीय हुआ करती है जो मनुष्य सावधान होकर सम्पूर्ण स्तोत्र कहता वा सुनता है, वह सब कार्य्योंमें बारम्बार सिद्धिलाभ किया करता है। इस स्तोत्रके कहनेसे मनुष्योंके मनमें जो कुछ कार्य्य चिन्तित अथवा वचनसे वर्णित होते हैं, वे सब सिद्ध होते हैं। जो मनुष्य दम-नियममें तत्पर होकर महादेव, देवी भगवती, कार्त्तिकेय और नन्दीश्वरको विहित पूजा करते हुए यथाक्रमसे इस स्तोत्रमें कहे हुए नामको ग्रहण करता है, वह अभिलषित अर्थ, काम और भोग्य वस्तुओंको पाता और परलोकमें गमन करके स्वर्गलाभ करता है, कदाचित तिर्य्यग् योनिमें जन्म नहीं लेता, इसे पराशर पुत्र भगवान व्यासदेवने कहा था।

२८४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पुरुषकी आत्मामें जो विद्यमान रहता है, उसे अध्यात्म कहते हैं, इसलिये दृश्य वस्तुओंके विवेकमें शास्त्र ही अध्यात्म है, उस अध्यात्मका कैसा रूप है, और जिससे यह अध्यात्म शास्त्र उत्पन्न हुआ है, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे तात! पहले अध्यात्म विषय बारम्बार वर्णित हुआ है, तोभी जब कि तुम मुझसे उक्त विषयको पूछ रहे हो, तब संक्षेपसे

उस सर्व्वशास्त्रप्रद ब्रह्म साक्षात्कारका कारण अध्यात्म विषय तुमसे स्पष्ट रीतिसे कहता हूं, तुम उसकी यह वक्ष्यमाण व्याख्या सुनो; पृथिवी, वायु, आकाश, जल और अग्नि ये पञ्चभूत जरा युक्त आदि सब भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण हैं। हे भरतप्रवर! स्थूल और सूक्ष्म शरीर उस ही पञ्चभूतके कार्य्य हैं; बुद्धि आदि भौतिकगुण परम कारण आत्मामें सदा लीन रहके फिर उत्पन्न हुआ करते हैं, जीव आत्मासे उत्पन्न होके फिर उसहीमें लीन हुआ करता है, जैसे सुषुप्ति अवस्थामें जीवकी उत्पत्ति होती और उसहीमें लय हुआ करती है, वैसे ही महासागरकी लहरकी भांति महाभूतोंकी उत्पत्ति और लय हुआ करती है। जैसे कछुआ अपने अङ्गको पसारके फिर सहजमें ही समेट लेता है, वैसे ही आकाश आदि भूतोंसे सब क्षुद्र जीव सहजमें ही उत्पन्न होते हैं। शरीरमें जो शब्द प्रसिद्ध होरहा है, वह आकाशका अंश है, शरीरमें जो कठोर अंश है, वह पृथिवीका गुण है; प्राण वायुका अंश है, रुधिर आदि आर्द्रभाग जलके अंश हैं, और गौरवादि तेजके अंश स्वरूपसे वर्णित हुआ करते हैं; इसलिये स्थावर जङ्गम जीवमात्र ही पञ्चभूतमय हैं, ये सब प्रलयकालमें भूतस्रष्टा पितामहके शरीरमें लीन होकर फिर उसहीसे उत्पन्न हुआ करते हैं। भूतकर्त्ता अहङ्कारने देहके बीच जिन इन्द्रियोंकी जिस प्रकार कल्पना की है, और देहके बीच स्थित जिन कार्य्योंको वह अवलोकन करता है, उसे सुनो।

शब्द, श्रोत्र और सब इन्द्रिय आकाशयोनिज हैं; रस, स्नेह और जिह्वा जलके गुण हैं; रूप, नेत्र और विपाक ये तीनो अग्नि रूपसे वर्णित हुआ करते हैं। घ्रेय, घ्राण और शरीर, ये भूमिके गुण हैं; प्राण, स्पर्श और चेष्टा वायुके गुण कहाते हैं। हे राजन्! यही पञ्चभौतिक गुणोंकी व्याख्या हुई। हे भारत! सत, रज और तमोगुण, भूत, वर्त्तमान और भविष्यत्-काल निज निज विषयस्वरूप निश्चयरूपी कर्म्म-बुद्धि अर्थात श्रवणेन्द्रियसे शब्द बोध, त्वचासे स्पर्शज्ञान, नेत्रसे रूप देखना, जीभसे रस चखना और नासिकासे सूंघना तथा आघ्राण-विषयके सब कार्य्योंके जानने और "यह वस्तु इस ही प्रकार है, वा नहीं" इस भांतिके संश-यात्मक मनोवृत्तिमें मायावच्छिन्न ईश्वर प्रकट होता है। हे भारत! दोनों पांवके तलभागसे ऊपर सिरके निम्नस्थान पर्य्यन्त जो कुछ देखते हो इस सब शरीरके बीच बुद्धि निवास करती है। मनुष्यके शरीरमें जो पञ्चइन्द्रिय हैं, मन उनके बीच छठवां कहाता है और धीर लोग बुद्धिको उनके बीच सातवीं गिनते हैं; तथा क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीव उक्त इन्द्रियोंके बीच आठवां कहा जाता है। सब इन्द्रियों और क्षेत्रज्ञकी कार्य्यविभागके जरिये खोज करनी उचित है। तम, सत और रजोगुण इन्द्रियनि-यन्ताको अवलम्बन करनेपर भावरूपसे अभि-हित हुआ करते हैं। नेत्रके दृश्य विषयोंको आलोचनासे मन संशय करता है, बुद्धि उसे निश्चय किया करती है, क्षेत्रज्ञ सब विषयोंमें साक्षीरूपसे माना जाता है। हे भारत! तम, सत और रजोगुण तथा काल और कर्म्म, इन पांच प्रकारके गुणोंसे बुद्धि बार बार विषयोंमें प्रेरित हुआ करती है; सब इन्द्रियें और तम आदि गुण भी बुद्धिस्वरूप हैं। जब मनके सहित इन्द्रियें बुद्धिरूपसे गिनी गईं तब बुद्धिके अभावमें गुणोंके कार्य्य किसी प्रकार भी सम्भव नहीं होसकते। बुद्धि जिसके सहारे देखती है, उसे नेत्र कहते हैं जिससे सुनती है, उसका नाम कान है, जिसके जरिये सूंघती है, वह नासिका है; जिससे रसका स्वाद लेती है, उसे जीभ और जिससे स्पर्शज्ञान करती है, वह स्पर्शे-न्द्रियत्वग रूपसे वर्णित हुई है; इसलिये बुद्धि बार बार विकृतिभावको प्राप्त होती है। जब

बुद्धि किसी विषयकी इच्छा करती है, तब उसका नाम मन हुआ करता है, पांच प्रकारकी इन्द्रियें पृथक् पृथक् रूपसे बुद्धिका अधिष्ठान हुआ करती हैं। जैसे अवयवके दोषसे अवयवी दूषित होता है, वैसे ही इन्द्रियोंके दुष्ट होनेसे बुद्धि भी दूषित हुआ करती है। साक्षिभूत पुरुषमें आध्यात्मिक सम्बन्धसे वर्त्तमान बुद्धि सात्विक आदि सुख दुःख मोहात्मक तीनों भावोंमें निवास करती है, वैसी बुद्धि कभी प्रसन्नता लाभ करती और कभी शोक भोग किया करती है, तथा किसी समयमें सुख दुःख किसीमें भी लिप्त नहीं होती; वह भावमयी बुद्धि और सत्वादि तीनों गुणोंको अतिक्रम करके निवास किया करती है। जैसे तरङ्गमाला युक्त सरित्पति समुद्र तटको अतिक्रम न करके निवास करता है, वैसे ही इस प्रकारकी भावभूमिगत बुद्धि भावस्वरूप मनमें ही वर्त्तमान रहती है। उत्पद्यमान रजोगुण बुद्धिका अनुसरण किया करता है। प्रहर्ष प्रीति, आनन्द, सुख; शान्तचित्तता आदि सात्विक गुण पुरुषके शरीरमें कथञ्चित संयत्त हुआ करते हैं। दाह, शोक, सन्ताप, मूर्त्ति और क्षमाहीनता आदि रजोगुणके चिन्ह कदाचित कारणवशसे कभी बिना कारणके ही दीखते हैं। अविद्या, राग, मोह, प्रमाद, स्तब्धता, भय, असमृद्धि, दीनता, प्रमाद, स्वप्न, तन्द्रा आदि विविध तामस गुण कभी कभी उत्पन्न हुआ करते हैं, उनमेंसे जो शरीर और मनके प्रीतियुक्त होता है, उसमें ही सात्विकभाव वर्त्तमान रहता है, इसे ही अवलोकन करे; और जो दुःखको संश्लिष्टताके कारण आत्माका अप्रीतिकर हुआ करता है, वही रजोगुणका कार्य्य है; इसलिये उस विषयके कोई कार्य्यको आरम्भ न करके केवल उसकी चिन्ता करे; जो शरीर और मनमें मोहसे मिला हुआ तर्क तथा ज्ञानके अगोचर है, उसे ही तमोगुण कहके निश्चय करो। यह बुद्धिगत जो सब विषय कहे गये, इन्हें ही जाननेसे लोग बुध हुआ करते हैं; इसके अतिरिक्त और बुधका कौनसा लक्षण है।

अब सूक्ष्म सत्व और क्षेत्रज्ञका जितना प्रभेद है, उसे मालूम करो; इन दोनोंमें एक गुणोंको उत्पन्न करता है, दूसरा उससे विरत रहता है। वे दोनों स्वभावसे ही पृथक् भूत होनेपर भी सर्व्वदा सम्प्रयुक्त हुआ करते हैं। जैसे मछरी जलसे भिन्न होके भी सदा जलसे सम्प्रयुक्त रहती है सत्व और क्षेत्रज्ञ भी वैसे हैं, सत्वादि गुण आत्माको जाननेमें समर्थ नहीं हैं, परन्तु आत्मा सब तरहसे गुणोंको जानता है। गुण संसर्गी मूढ़ मनुष्य समझते हैं, कि आत्माके संग गुणोंका गुण-गुणि भावका सम्बन्ध है, परन्तु यथार्थमें वह नहीं है। आत्मा अपनेमें गुणोंका तदात्म अध्यास न करके केवल उन्हें देखता है, बुद्धि सत्वका अवलम्ब अर्थात् उपादान कारण नहीं है केवल सत्वादि गुणोंके कार्य्यके जरिये उसकी चेतनाशक्ति अध्यस्त हुआ करती है, कारणभूत गुणोंको उत्पन्न करती है, यह महदादि कार्य्यके जरिये अनुमित होता है। कोई पुरुष किसी समयमें ही सब गुणोंको जाननेमें समर्थ नहीं होता, बुद्धिशक्ति ही गुणोंको उत्पन्न करती है, क्षेत्रज्ञ उसका साक्षिमात्र है; इसलिये उस सत्व और क्षेत्रज्ञका इस प्रकारका सम्बन्ध अनादिसिद्ध है बुद्धि इन्द्रियोंके जरिये प्रकाशके कार्य्य अर्थात् अन्धेरेको दूर करती है; अचेतन और अज्ञानयुक्त पुरुष इन्द्रियोंको ही आकाशकी भांति समझते हैं। जो पुरुष इसे ही स्वभाव समझके बुद्धि चालनके जरिये समय बिताता है, उसे शोक वा हर्ष कुछ भी नहीं होता और वह मत्सरताहीन हुआ करता है। जैसे मकड़ी जाला पूरती है, वैसेही बुद्धिशक्ति जिन गुणोंको उत्पन्न करती है, वे स्वभावसिद्ध हैं; इसलिये गुणोंको सूतकी भांति जानना उचित है। गुण

प्रसक्त होनेपर फिर निवृत्त नहीं होते बड़- कपालकी भांति निवृत्त गुणोंकी प्रवृत्ति सूक्ष्म अवयवोंके जरिये प्राप्त नहीं होती। प्रत्यक्षके सहारे परोक्ष पदार्थोंके अवरोध न होनेसे जैसे अनुमानसे वे पदार्थ सिद्ध होते हैं, वैसे ही कोई कोई प्रवृत्तिका समर्थन करते हैं, दूसरे लोग उसे ही निवृत्त कहा करते हैं। इस ही प्रकार यह वृद्धि और चिन्तामय दृढ़ हृदय ग्रन्थि छुड़ाकर शोकहीन तथा संशय रहित होके परम सुखसे निवास करना उचित है।

मनुष्य इस मोह पूरित संसार नदीमें पड़के क्लेशोंको भोग करते हैं। मूर्खोंके अगाध जलमें डूबनेसे जैसा दीखता है, जीव भी बुद्धियोग लाभ करके वैसा ही हुआ करता है। अध्यात्मवित् विद्वान् धीर पुरुष संसार जलके किनारे पर उतरके कदाचित् क्लेश नहीं पाते, अकेला ज्ञान ही उन लोगोंके लिये परम नौका स्वरूप है। मूर्ख पुरुषोंको जिस प्रकार महत् भय हुआ करता है, विद्वानोंको वैसा भय नहीं होता। विद्वान् और मूर्खोंमें जैसा प्रभेद दीखता है, विद्वान् पुरुषोंमें परस्पर वैसा प्रभेद नहीं है। सकृतविभात ब्रह्मलोक विद्वानोंके पक्षमें समान है, मोक्ष विषयमें प्रत्ययावृत्तिका तारतम्य नहीं है। ज्ञानी लोग अज्ञान दशामें बहुतसा पाप करने पर भी ज्ञान उदय होने पर उनके पहले किये हुए सब पाप नष्ट होते हैं, वे जो कुछ करते तथा जिसे दूषित करते हैं, वे दोनों ही उन्हें अप्रिय नहीं है।

२८५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! प्राणियोंको अत्यन्त दुःख और मृत्युसे सदा भय हुआ करता है, इससे हम लोगोंको जिस प्रकार उक्त दोनों भय न हों, आप उसहीका उपाय वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भारत! प्राचीन लोग इस विषयमें नारद और समंगके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासकी कथा करते हैं। नारद बोले, हे समंग! दूसरे लोग सिर झुकाके प्रणाम करते हैं, तुम वक्षस्थल पर्यन्त पृथ्वीसे मिलाकर प्रणाम करते हो और मानो दो भुजाओंसे संसारनदीको तर रहे हो। तुम सदा प्रसन्नचित्त और शोकरहित दीखते हो; तुममें थोड़ी भी घबराहट नहीं दीख पड़ती; तुम नित्य तृप्त और स्वस्थ रहके बालककी भांति क्रीड़ा करते हो।

समङ्ग बोले, हे नारद! मैं भूत भविष्यत् और वर्त्तमानकालकी अविद्यमानता विशेष रूपसे जानता हूं; इस ही लिये दुःखित नहीं होता। मैंने लोकके बीच सब कार्य्योंकी गति कार्य्योंके फल और फलोंकी विचित्रताको विशेषरूपसे जाना है, इसहीसे शोक नहीं करता। हे नारद! मूर्ख और अप्रतिष्ठित अर्थात् धन, स्त्री आदिसे हीन पुरुष भी विपदग्रस्त और धनवान हुआ करते हैं, अन्धे और उन्मत्त मनुष्य भी जीवित रहते हैं, देखो, हम निरारम्भ होने पर भी जीवित हैं। आरोग्य शरीरवाले देवता, बलवान और निर्बल लोगभी पूर्वजन्मके किये हुए कर्म्मोंसे ही जीवित हैं, तब हम लोगोंका तुम सभाजन करो। सहस्रों परिवारयुक्त पुरुष भी जीवित रहते हैं और सैकड़ों परिवार विशिष्ट लोग जीवन धारण करते हैं; दूसरे लोग बहुतसा शोकभार ग्रहण करके भी प्राण धारण किया करते हैं और देखो हम भी जीवित हैं।

हे नारद! शोकके मूल अज्ञानके अभाव- निबन्धनसे जब हम शोकाकुल नहीं हैं, तब हमारे आत्मासे ब्राह्मणादिके अध्ययन प्रभृति धर्म्म और लौकिक कार्य्योंका क्या प्रयोजन है। जब कि सुख दुःखकी समाप्ति होती है, तब वे अब हमें धर्षण न कर सकेंगे। जिस कारणसे मनुष्य ज्ञानी हुआ करते हैं, वह ज्ञान ही इन्द्रियोंके मोहादि हीनता रूपी प्रसन्नताका

मूल कारण है ; ज्ञानके अभावमें ही इन्द्रियें लुब्ध और शोकाकुल हुआ करती हैं ; इसलिये मूढ़-इन्द्रिय मनुष्योंका ज्ञानलाभ नहीं होता। मूढ़ लोग जो अहंकार किया करते हैं, वही उनका मोहस्वरूप है ; मूढ़ मनुष्यके लिये यह लोक और परलोक भी नहीं है, सब दुःख सदा उपस्थित नहीं होते और सदा सुख-लाभकी भी घटना नहीं होती। परन्तु मेरे समान देहाभिमान रहित मनुष्य कदाचित सब भांतिसे विद्यमान संसाररूपी संज्वर स्वीकार नहीं करते, अभिलषित भोग्य वस्तु और सुखके अनुरोधमें बाधित नहीं होते तथा अभ्यागत दुःखकी चिन्ता नहीं करते ; इसलिये भोग्यबि-षय आदिकोंकी चिन्ता न करनी ही शोकहीनताका कारण है। योगयुक्त सावधान मनुष्य सुखकी स्पृहा वा अनागत लाभका अभिनन्दन नहीं करते वे बहुतसा धन पाके हर्षित नहीं होते और धन नाश होनेपर भी शोक नहीं करते। बन्धुजन, वित्त, कुलीनता, शास्त्रदर्शन, मन्त्र अथवा पराक्रम, ये कोई भी मनुष्योंको दुःखसे उबारनेमें समर्थ नहीं हैं ; मनुष्य शम-दम आदि सदाचारके सहारे ही परलोकमे शान्ति लाभ किया करते हैं। अयुक्त पुरुषोंमे विज्ञान नहीं होता और योगके बिना सुख भी नहीं मिलता। प्राण, मन और इन्द्रियोंके संयम करनेकी सामर्थ और दुःखका परित्याग ये दोनों ही सुख उत्पन्न होनेके कारण हैं। प्रिय वस्तुओंसे हर्ष उत्पन्न हुआ करता है, हर्षसे दर्पकी वृद्धि होती है, अभिमान ही नरकका हेतु हुआ करता है, इसलिये मैंने उसे परित्याग किया है। इस लोकमें जबतक शरीर नष्ट नहीं होता है, तबतक इन सब मोहकर शोक भय और गर्व्व आदिको सुख दुःखके साक्षि स्वरूपसे देखा करता हूं। मैं अर्थ और काम परित्याग करके तथा तृष्णा और मोहको छोड़के शोकरहित वा आनन्दित होकर इस पृथ्वीमण्डलपर विचरता हूं। मुझे मृत्यु, अधर्म्म अथवा लोभ आदि किसी विषयसे भी अमृत पीनेवाले पुरुषकी भांति इस लोक वा परलोकमें कुछ भय नहीं है। हे ब्रह्मन् नारद! मैंने उत्तम महत् तपस्या करके इसे ही जाना है, इस ही निमित्त देह स्वभाव, वा बहुतेरे कर्म्मोंसे उत्पन्न हुए शोक मुझे दुःखित करनेमें समर्थ नहीं हैं।

२८६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, जो पुरुष तार्किक, पाशुपत सांख्य, पातञ्जल आदि युक्ति प्रधान शास्त्रोंके यथार्थताको नहीं जानते हैं, जो सदा सन्देह-युक्त चित्त होकर आत्मदर्शनके निमित्त शम दम आदिका अनुष्ठान नहीं करते, उनके पक्षमें कल्याण क्या है ; आप इसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, ईश्वर परम गुरु है, इसलिये उसमें चित्त प्रणिधान, वृद्ध आचार्य्योंकी सदा उपासना और सब शास्त्रोंमें जो मोक्षका प्रतिपादन है, इस ही निमित्त गुरुमुखसे उन सबको सुनना, ये तीनों ही सदा कल्याणरूपसे वर्णित हुए हैं। प्राचीन लोग इस विषयमें देवर्षि नारद और गालव मुनिके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। कल्याणकी इच्छा करनेवाले गालव मुनि मोहक्लम रहित ज्ञान तृप्त, जितेन्द्रिय संयतचित्त विप्रवर नारदसे बोले, हे देवर्षि ! इस लोकमें पुरुष जिन सब गुणोंसे सर्व्वसम्मत हुआ करते हैं, आपमें वे सब गुण स्थिररूपसे दीख पड़ते हैं, इसलिये आप परम ज्ञानी हैं, हम लोग सदा विमूढ़ रहके आत्मपदार्थ कुछ भी नहीं जानते, इससे हमारे संशयोंको दूर करनेके उपयुक्त आप ही हैं। जिस प्रकार अग्नि होत्रादि कार्य्योंके सहित शीघ्र ही ज्ञानसाधनमें प्रवृत्ति हो और हमारा जो कुछ कर्त्तव्य है, उसे हम निश्चय करनेमें

समर्थ नहीं हैं ; इसलिये उसे ही वर्णन करना आपको उचित है ।

हे भगवन् ! जिसके अनुष्ठानमें भ्रम नहीं है, वे ज्ञानसाधन सब शास्त्र ही पृथक् पृथक् आचारका वर्णन किया करते हैं । वे सब शास्त्र "यही श्रेय है, यही कल्याणकारी है" ऐसे ही उपदेशसे मनुष्योंको प्रबोधित करते हैं । वे प्रबोधित मनुष्य विविध मार्गसे चलते और जैसे हम लोग निज शास्त्रसे परितुष्ट हैं, वैसे ही वे लोग भी निज निज शास्त्रोंके जरिये परितुष्ट हैं । देखनेसे सन्देह युक्त होकर अधिक कल्याणकारी क्या है, उसे हम लोग निश्चय करनेमें समर्थ नहीं हैं । यदि सब शास्त्रोंका मत एक हो, तो श्रेय मालूम होसके, परन्तु अनेक प्रकारके शास्त्रोंके अनेक मत होनेसे श्रेय अत्यन्त निगूढ़ भावसे प्रवेशित हुआ है । इस ही निमित्त मुझे बोध होता है श्रेय बहुत सी शङ्काओंसे परिपूरित है, इसलिये आप उस विषयको वर्णन करिये मैं आपका निकटवर्त्ती शिष्य हूं, आप मुझे शिक्षा दीजिये ।

नारदमुनि बोले, हे पुत्र गालव ! शास्त्र चार प्रकारके हैं, तिसमेंसे "धर्म्म नहीं है," यह एक वेदसे बहिर्भूत शास्त्र है । दूसरा शाक्यसिंहका बनाया हुआ चैत्यवन्दनादि रूप धर्म्मशास्त्र है । तीसरा वेदोक्त धर्म्म ही धर्म्म है, दूसरा धर्म्म धर्म्म नहीं है । चौथा "धर्म्माधर्म्मसे अतीत वस्तु मात्र है, और कुछ भी नहीं है" ये सब शास्त्र सङ्कल्पके अनुसार पृथक् पृथक् रूपसे कल्पित हुए हैं । उनमेंसे जो जिसे कल्याणकारी समझता है ; उसके पक्षमें वही उत्तम है । और तुम गुरुजनोंके निकटमें उनको जानके आलोचना करो । उन सब शास्त्रोंमें अनेक भांतिके आत्मज्ञानके उपायभूत सब धर्म्मोंका वर्णन स्वतन्त्र स्वतन्त्ररूपसे देखोगे । शास्त्रोंको स्थूल दृष्टिसे देखनेसे अभिप्रेत धर्म्म आत्मतत्व पूर्ण रीतिसे प्राप्त नहीं हो सकता, सूक्ष्मदर्शी और पुरुष सरलभावसे देखते हुए शास्त्रोंकी परम गति अवलोकन किया करते हैं । जो परम निःश्रेयस्वरूप और निःसंशयात्मक है, जो सब प्राणियोंके अभयदाताओंका अनुग्रह और हिंसक मनुष्योंका निग्रहस्वरूप है तथा जो धर्म्म, अर्थ, काम, इन त्रिवर्गोंका संग्रह करनेवाला है, मनीषी लोग उसे ही कल्याणकारी कहा करते हैं । पाप कर्म्मोंसे निवृत्ति सदा पुण्यशीलता और साधुओंके सङ्ग समुदाचार, यही निःसन्देह कल्याणकारी है । सब जीवोंके विषयमें मृदु व्यवहार, व्यवहार विषयमें सरलता और मधुर वचन यही निःसन्देह कल्याण है । देवता, पितर और अतिथियोंको तृप्तिसाधन, अन्नदान और सेवकोंको परित्याग न करना ही कल्याणकारी है । सत्य वचन ही उत्तम है, सत्य ज्ञान अत्यन्त दुष्कर है तो प्राणियोंको अत्यन्त हितकर है, मैं उसे ही सत्यका विषय कहता हूं ।

अहङ्कारका त्याग, प्रमादका निग्रह, सन्तोष और अकेले धर्म्माचरण करना सबसे उत्तम श्रेय कहके वर्णित हुआ करता है । धर्म्मके अनुसार वेद और वेदान्त शास्त्रको पढ़ना और ज्ञानके निमित्त प्रश्न करना, येही निःसन्देह कल्याणस्वरूप हैं । कल्याणकी इच्छावाले मनुष्य केवल शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धको कभी अधिक सेवन न करे तथा रात्रिका भ्रमण करना, दिनमें सोना, आलस, चुगुलखोरी, मद, अधिक भोजन और बहुत थोड़ा भोजन छोड़ दे । दूसरेकी निन्दाकर अपनी बड़ाईकी चेष्टा न करे, निज गुणोंके सहारे अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंसे बड़ाई पानेके लिये यत्नवान होवे, नीचोंसे बड़ाईकी इच्छा कभी न करनी चाहिये । निर्गुण मनुष्य ही अपनेको अधिक सम्मान भाजन समझके अपने गुण और अपने ऐश्वर्य्यकी बड़ाई करके दूसरे गुणवान मनुष्योंके दोषोंको कहके उनकी निन्दा किया

करते हैं। जिन्होंने कभी शिक्षा नहीं पाई, वे अपने अभिमानसे मतवारे होकर महाजनोंसे अपनेको अधिक गुणवान समझते हैं और गुण-युक्त विपश्चित पुरुष किसीको भी निन्दा न करके और अपने उत्कर्षको वर्णन करनेमें विरत होके अक्षत् यश लाभ किया करते हैं। पुष्पोंसे उत्तम सुगन्ध लानेवाला पवित्र वायु किसी प्रकारका वचन न कहके बहा करती है और निर्म्मल सूर्य्य कुछ भी न कहके आकाशमें प्रकाशित हुआ करता है। जिन्होंने ऊपर कहे हुए आत्म उत्कर्ष ख्यापन आदि दोषोंको बुद्धिसे आलोचना करके परित्याग किया है और उक्त दोषोंका उल्लेख नहीं करते वे लोकसमाजमें यशस्वी हुआ करते हैं। मूर्ख लोग केवल अपनी प्रशंसासे लोकमें प्रकाशित नहीं होते और कृतविद्य पुरुष गढ़ेमें पड़े रहनेपर भी प्रकाशित हुआ करते हैं। ऊंचे स्वरसे असार-भावसे उच्चारण किया हुआ शब्द भी शान्त होजाता है, परन्तु सुभाषित शब्द मृदु भावसे उच्चारित होनेपर भी अवश्य ही लोकमें प्रका-शित हुआ करता है, जैसे विभाकर सूर्य्यका-न्तमणिके संयोगसे अपना अग्निरूप प्रदर्शित करता है, वैसे ही गर्व्वित मूढ़ लोग भी असा-रमय बहुभाषणसे अन्तरात्माका क्षुद्रतमत्व प्रकट किया करते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनुष्य नानाशा-स्त्रोंके ज्ञानजनित वृद्धिको अभिलाष किया करते हैं, प्राणियोंको चाहे कितना ही लाभ क्यों न होवे, मेरे विचारमें बुद्धिलाभ ही सबसे उत्तम है।

बिना पूछे किसीसे कुछ वचन कहना उचित नहीं है और अन्यायपूर्व्वक पूछनेसे भी उत्तर देना अनुचित है; ज्ञानवान् मनुष्य मेधावी होनेपर भी जड़की भांति बैठे रहें; तथा स्वधर्म्ममें रत, वदान्य, धर्म्मनिष्ठ साधु लोगोंके समीप वास करनेकी इच्छा करें। जिस स्थानमें ब्राह्मणादि चारों वर्णोंमें सङ्कर हों; कल्याणकी इच्छा करनेवाला मनुष्य वहां किसी प्रकार भी निवास न करे। किसी मनुष्यको इस लोकमें कुछ कार्य्य न करके भी यथा प्राप्त वस्तुओंके जरिये सहजमें ही जीविका निभती है, कोई पुण्यवानके संसर्गमें रहके विमल पुण्य उपभोग करता है, कोई पापीके सङ्गमें रहनेसे पाप भोग किया करता है। जैसे जल, अग्नि और चन्द्रकिरणके स्पर्श होते ही सर्दी गर्मी आदि सुखदुःखका अनुभव होता है, वैसे ही सत् और असत् संसर्गसे भी पाप पुण्य देखा जाता है। जो भोजनकी वस्तुओंके रसका स्वाद न लेकर अर्थात् मीठे तीतेका केवल स्वाद न लेके पेट भरनेके निमित्त ही भोजन किया करते हैं, वही विघसाशी है, और जो भक्ष्यवस्तुओंकी परीक्षा करके रसका स्वाद लेते हैं, उन्हें ही कर्म्मपाशके वशीभूत जानो; इसलिये इन्द्रियपोषक मनु-ष्योंको कभी संसारसे पार होनेकी सम्भावना नहीं है। जिस स्थानमें प्रमाणजनित ज्ञान पूछ-नेवाले पुरुषोंके असत्कार पूर्व्वक पूछनेपर भी ब्राह्मण उनके निकट धर्म्म वर्णन करते है, बुद्धिमान मनुष्य उस स्थानको परित्याग करें; और जिस स्थानमें शिष्य और उपाध्यायके व्यव-हार उत्तम सावधानी तथा यथावत शास्त्रयुक्त हुआ करते हैं, कौन पुरुष उस स्थानको परि-त्याग कर सकता है। जिस देशमें अपने सम्मा-नकी इच्छा करनेवाले मनुष्य विपश्चितोंके आकाशकी वस्तुओंकी भांति निरवलम्बन अर्थात् अविद्यमानतामें दोष वर्णन करते हैं, वहां कौन पण्डित वास करनेकी इच्छा करेगा; जिस देशमें लोभी पुरुषोंके जरिये प्रायः सब धर्म्मबन्धन शिथिल होते हैं। जलते हुए चैला-ञ्चलकी भांति उस देशको बिना त्यागे कौन निश्चिन्त रह सकता है। जिस देशमें मनुष्य मत्सरहीन और निःशङ्क होके धर्म्माचरण करते हैं, उस ही पुण्यशील साधुसेवित देशमें निवास

करना उचित है। जिस देशमें मनुष्य धर्म्मके निमित्त धर्माचरण करते हैं, बुद्धिमान मनुष्य कदापि वहांपर निवास न करे, क्यों कि उस देशमें बसनेवाले सब मनुष्य ही पापकारी होते हैं। जिस देशमें पापकर्म्मोंसे जीवित रहनेकी इच्छा करके लोग निवास किया करते हैं, सर्प-युक्त गृहके समान उस देशसे शीघ्र ही प्रस्थान करना उचित है।

जिस कर्म्मके जरिये पूर्व्व वासनाका सम्बन्ध होके तीव्र दुःखग्रस्त न होना पड़े, जो अपने पुनर्ज्जन्मकी इच्छा न करे, पहलेसे ही उसे पूर्ण रीतिसे ऐसे कर्म्मका अनुष्ठान करना योग्य है। जिस राज्यमें राजा और राजपुरुष लोग कुटुम्बी जनोंसे पहले भोजन करते हैं, बुद्धिमान मनुष्य उस राज्यको त्याग दे। जिस राज्यमें यजन और अध्यापन कार्य्यमें नियुक्त सनातन धर्म्ममें रत श्रोत्रिय पुरुष प्रथम भोजन करते हैं, उस राज्यमें वास करना उचित है जिस राज्यमें स्वाहा, स्वधा और वषट्‌कार मन्त्र पूर्ण रीतिसे अनुष्ठित होकर सदा वर्त्तमान रहते हैं, वहां किसी प्रकार विचार भी न करके निवास करे। जीविकाके वशमें आकर्षित ब्राह्मणोंको जहां अपवित्र देखे, उस राज्यमें पहुंचने पर भी उसे विष मिले हुए अन्नकी भांति परित्याग करे। जिस राज्यमें प्रियमाण मनुष्य बिना मांगे दान करें, चित्त जीतनेवाला पुरुष कृतकृत्य और स्वस्थचित्त होकर वहां वास करे। जिस देशमें अविनीत पुरुषोंके विषयमें दण्डविधान और कृतबुद्धि लोगोंका सत्कार हुआ करता है, उस पुण्यशील साधुसेवित स्थानमें विचरना और निवास करना उचित है। जो लोग जितेन्द्रिय पुरुषोंके ऊपर क्रोध किया करते हैं, और जो साधुओंके विषयमें दुष्ट व्यवहार करते हैं, उन अविनीत लोभी पुरुषोंके निमित्त महत् दण्ड धारण करना चाहिये। जिस देशमें राजा धर्म्ममें तत्पर होकर धर्म्मके अनुसार प्रजापालन करता है, और विषयाभिलाषको त्यागके सर्व्व सम्पत्तिशाली होता है, वहांपर कुछ विचार न करके निवास करना उचित है। जिन राजाओंका ऐसा चरित्र है, वे निज देशवासी प्रजाको कल्याण-युक्त करके शीघ्र ही उन्नतिशाली करते हैं। तुम्हारे पूछनेके अनुसार मैंने तुम्हारे समीप यह कल्याणका विषय वर्णन किया। आत्माके श्रेयकी प्रधानताको वर्णन करनेमें किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है। इस ही प्रकार जीविकाके उद्देशसे जो लोग सावधान-चित्त होंगे, उनका स्वधर्म्मके सहारे ही इस लोकमें अत्यन्त कल्याण होगा।

२८७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, मेरे समान राजा पृथ्वी पालनमें नियुक्त होकर किस प्रकार मोक्ष धर्म्मका अनुष्ठान करनेमें समर्थ होगा। और सदा कैसे गुणोंसे युक्त होनेसे आसक्ति-पाशसे छूटेगा।

भीष्म बोले, इस विषयमें प्रश्न करनेवाले सगरके सङ्ग अरिष्टनेमिके कहे हुए प्राचीन इतिहासको तुम्हारे समीप कहता हूं सुनो।

सगर बोले, हे ब्रह्मन्! किस प्रकारके परम कल्याणयुक्त मनुष्य इस लोकमें सुख भोग करते हैं, और किस भांति शोकाकुल और क्षुब्ध नहीं होते। मैं इसे ही जाननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, सब शास्त्रोंके जाननेवाले पण्डितोंमें अग्रगण्य अरिष्टनेमिने सगरकी बात सुनके उपदेशकी योग्यता विचार कर यह उत्तर दिया। इस लोकमें मोक्ष सुख ही यथार्थ सुख है, धन धान्य और पुत्र वा पशुओंके पालनमें आसक्त मनुष्य उसे नहीं जान सकते। विषयासक्त चित्त और अशान्त मन उन मूर्खोंके अज्ञान रोगकी चिकित्सा करनेमें समर्थ नहीं है। जो मूढ़ मनुष्य स्नेहपाशसे बद्ध हुए हैं, वे

कदाचित मोक्ष पथके पथिक नहीं होसकते। अब स्नेहसे जो सब पाश उत्पन्न होते हैं, उन्हें कहता हूं, तुम सावधान होकर मेरे समीप सुनो; विज्ञानवान मनुष्य ही उसे सुननेमें समर्थ हैं। कालक्रमसे पुत्रोंके यौवन सीमामें पहुंचनेपर उनका विवाह करके जब उन्हें जीविका निर्व्वाहमें समर्थ जाने तभी संसार बन्धनसे मुक्त होकर यथासुखसे धर्म्माचरण करे। प्रतिपालित पुत्रवत्सला भार्य्याको बूढ़ी जानके यथासमयमें उसे परित्याग करो और परम पुरुषार्थ मोक्ष पदार्थके अन्वेषण करनेमें यत्नवान होजाओ। इन्द्रियोंसे इन्द्रिय विषयोंको यथारीतिसे अनुभव करके सापत्य अथवा निरपत्य ही होके संसार बन्धनसे छूटकर यथा सुखसे विचरो। यदृच्छा प्राप्त विषयलाभमें रागद्वेषसे रहित होके विषयलाभ जनित उत्सुकता परित्याग करते हुए संसारसे मुक्त होकर यथा सुखसे भ्रमण करो। यह तुम्हारे समीप मैंने मोक्षका विषय संक्षेपमें वर्णन किया है, अब उसे ही विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, सुनो। इस लोकमे जिन सब मनुष्योंने स्नेह बन्धनको तोड़ा है, वेही सुखी होकर विचरते हैं, और जो सब मनुष्य चित्तके विषयोंमें आसक्त हैं, वेही निःसन्देह विनष्ट होते हैं। चींटी आदि कीड़े भी आहार संग्रह करते हैं, परन्तु वे भी नष्ट होते हैं; इसलिये लोकमें जो पुरुष विषयोंमें अनासक्त हैं, वेही सुखी और जो लोग विषयासक्त हैं, वेही नाशमान् हैं। तुम्हें यदि मोक्षकी इच्छा हुई हो, तो "यह मेरे बिना किस प्रकार जीविका निर्व्वाह करेगा" स्वजनोंके विषयमें ऐसी चिन्ता करनी उचित नहीं है। जीव स्वयं ही उत्पन्न होता, स्वयं ही वर्द्धित हुआ करता और स्वयं ही सुख दुःख भोग करता तथा मृत्युके मुखमें प्रविष्ट होता है। मनुष्य पिता माताके संग्रहीत अथवा निज उपार्ज्जित अन्न वस्त्र पाया करता है; इस लोकमें ऐसा विषय नहीं है, जो पूर्व्व जन्ममें न किया गया हो। जीवमात्र ही निज कर्म्मोंके जरिये रक्षित होकर पूर्व्व स्वकृत कर्म्म फलोंके विभाग करनेवाले विधाताके जरिये विहित भक्ष्य लाभ करते हुए पृथ्वीपर लोगोंकी ओर दौड़ते हैं जब कि मनुष्य मट्टीके पुतलीकी भांति तथा सदा परतन्त्र है, तब वह स्वयं अदृढ़ स्वरूप होकर किस प्रकार स्वजनोंके भरणपोषणका कारण होगा, जब तुम्हारे बहुत यत्न करनेपर भी तुम्हारे सम्मुखमेंही मृत्यु तुम्हारे स्वजनोंका नाश करती है, तब तुम्हें आत्माको जानना उचित है, स्वजनोंकी जीवद्दशामें तुम उनके भरण पोषणमें नियुक्त रहते हो; परन्तु उस भरण-पोषणके समाप्त न होते ही तुम स्वयं उन्हें परित्याग करके यमलोकके अतिथि बनोगे; जब तुम मरके स्वजनोंको सुखी वा दुःखी कुछ भी न जान सकोगे; तब तुम्हें इस प्रकार विवेचना करनी उचित है कि मुझे भी लोकान्तरमें जानेपर मेरे पुत्र मुझे न जान सकेंगे, इससे वे मेरा कुछ भी उपकार न करेंगे। तुम्हारे पुत्रोंके बीच कोई आत्मीय निज जरा आदि रोगोंको भोगेंगे और तुम उसे छुड़ानेमें समर्थ न होगे; इस ही प्रकार दूसरे लोग भी तुम्हारे रोगादिकोंको दूर करनेमें समर्थ नहीं हैं; इसे जानके तुम्हें आत्महितका अनुष्ठान करना उचित है। इस लोकमें कौन किसके निमित्त निश्चित है, इसे विशेषरूपसे जानके मोक्ष विषयमें मन लगाना चाहिये और फिर धारणा करो।

जिस मनुष्यने भूख, प्यास, क्रोध, लोभ और मोह आदिको जय किया है, वही सतोगुणकी अधिकतायुक्त मुक्त पुरुष है। जो मनुष्य जूआ खेलने, मद्य पीने, स्त्री सेवन करने और मृगया विषयमें सदा प्रमत्त नहीं होते अर्थात् आत्म विस्मृति पूर्व्वक उसमें आसक्त नहीं होते, वेही मुक्त पुरुष हैं। प्रतिदिन कितना भोजन करना होगा और प्रति रात्रिमें ही कितना भोजन

कहते हैं ; इस प्रकार जो पुरुष मोक्ष विषयमें मोक्ष प्रकाश करते हैं, उन्हें ही दोषदर्शी कहा जाता है। जो सावधान होकर बार बार स्त्रीसङ्गसे अपना जन्म होता है, ऐसी ही आलोचना करते हैं, उन्हें ही यथावत् मुक्त पुरुष कहना चाहिये। जो जीवोंके जन्म मरन और जीवनके क्लेशको यथार्थ रूपसे जानते हैं, इस लोकमें वेही मुक्त पुरुष हैं। सहस्र कोटि छकड़े पर जो अन्न ढोया जाता है, उसे और पुरुषके आहार परिमित अन्नको जो समभावसे देखते हैं, और प्रसाद वा मन्त्रमें जिन्हें समज्ञान है, वेही मुक्त होते हैं। जो सब लोगोंको मृत्युसे आक्रान्त देख कर पीड़ित नहीं होते, बल्कि सुखी हुआ करते हैं, और जो थोड़े लाभसे भी सन्तुष्ट हुआ करते हैं, इस लोकमें वे ही मुक्त पुरुष हैं। जठराग्नि, भोक्ता और भोज्य अन्न ही सोम स्वरूप है, यह सब जगत् उन दोनोंसे युक्त है, परन्तु मैं उन दोनोंसे पृथक् हूं, जो लोग इसे अवलोकन करते हैं, और जो सुख दुःख आदि अद्भुत मायिक भावोंसे संस्पृष्ट नहीं होते, वेही मुक्त पुरुष हैं। पलङ्ग और भूमितल जिसके पक्षमें समान तथा चावल और कदन्नमें जिसे तुल्य ज्ञान है, वेही मुक्त पुरुष हैं। क्षौम वस्त्र और कुशचीर, कौशेय वस्त्र और वल्कल तथा कम्बल और चर्ममें जिसे समान ज्ञान है, वेही मुक्त पुरुष हैं। जो पञ्च-भूतोंसे उत्पन्न हुए सबको आत्म सदृश देखते हैं, और देखके उनके विषयमें वैसाही व्यवहार किया करते हैं, इस लोकमें वेही मुक्त पुरुष हैं।

जिन्हें सुख, दुःख, लाभ, हानि, जय, पराजय, इच्छा, द्वेष, भय और उद्वेगमें समान ज्ञान रहता है, वेही सब प्रकारसे मुक्त पुरुष हैं। जो रक्त, मूत्र और मलके आधार इस शरीरमें बहुतसे दोषोंको देखते हैं, वेही मुक्त होते हैं। जो जराके सहारे वलीपलित-संयोग कृशता, विवर्णता और कुब्जत्व अवलोकन करते हैं, वेही मुक्त होते हैं। जो कालक्रमसे निज शरीरमें पुरुषत्वकी हानि, दर्शनशक्तिकी उपरति, बधिरता और दुर्व्वलता देखते हैं, वेही मुक्त होते हैं। प्रसिद्ध और प्रभावयुक्त सहस्रों राजेन्द्र इस पृथ्वीको छोड़के परलोकमें गये हैं, इसे जो विचारते हैं वेही मुक्त होते हैं। जो इस लोकमें सब अर्थ दुर्लभ, क्लेश कदम्ब ही सुलभ और कुटुम्बके निमित्त दुःख दर्शन करते हैं, वे मुक्त होते हैं। इस लोकमें अपत्योंमें शिशुपाल और लोकके बीच अधिकांश ही गुणहीन हैं, इसे देखके कौन पुरुष मोक्षका अभिनन्दन न करेगा। जो मनुष्य शास्त्रीय और लौकिक ज्ञानप्राप्त करके मनुष्य जन्मको असार समझता है, वही सब प्रकारसे मुक्त होता है। गार्हस्थ्य अथवा मोक्ष विषयमें यदि तुम्हारी बुद्धि विह्वल न हुई हो, तो मेरा यह वचन सुनके विमुक्तके समान व्यवहार करो। पृथ्वीपति सगरने अरिष्टनेमिके कहे हुए वचनको पूर्णरीतिसे सुनकर अद्वेष्टृत्व आदि ज्ञानज गुणोंसे युक्त होकर प्रजापालन किया था।

२८८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे तात कुरु पितामह! हमारे हृदयमें बहुत समयसे यह वक्ष्यमाण कौतूहल विद्यमान होरहा है, इसलिये आपके समीप मैं उस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं। महाबुद्धिमान् देवर्षि उशना देवताओंके अप्रिय कार्य्यमें रत होकर किस कारण असुरोंके सदा प्रियकर थे और किस कारण अत्यन्त तेजस्वी देवताओंके तेजको क्षय किया था; दानव लोग ही किस लिये देवताओंके संग सदा वैरयुक्त थे। अमरद्युति उशना किस लिये शुक्रत्वको प्राप्त हुए और वह किस प्रकार ऋद्धियुक्त हुए थे, आप मेरे समीप यह सब

वर्णन करिये। हे पितामह! वह तेजस्वी शुक्र किस कारणसे आकाशमण्डलके मध्यभागसे गमन नहीं करते इन सब विषयोंको मैं विस्तार पूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता हूं

भीष्म बोले, हे पापरहित! मैंने जिस प्रकार निजबुद्धिके अनुसार इसे सुना है, वह तुम्हारे निकट कहता हूं। हे राजन्! तुम सावधान होकर यह सब विषय ज्योंका त्यों सुनो। यह दृढ़व्रती, भृगुवंशमें उत्पन्न हुए माननीय मुनि किसी कारणसे देवताओंके अप्रियकारी हुए थे। इस विषयमें यह इतिहास है, कि दानव लोग देवताओंको पीड़ित करके भृगुपत्नीके आश्रममें प्रवेश कर आपदरहित होकर निवास करने लगे। देवता लोग वहां प्रवेश करनेमें समर्थ न होकर सर्व्वव्यापी भगवान हृषीकेशके शरणमें गये। अनन्तर भगवान विष्णुने सुदर्शन चक्रकी धारसे भृगुपत्नीका शिर काट डाला। तब अन्तमें मरनेसे बचे हुए असुरोंने उसके एव भार्गवका आसरा ग्रहण किया। शुक्र मातृवधसे दुःखित होकर असुरोंको अभयदान करके देवताओंके विषयमें अत्याचार करनेमें प्रवृत्त हुए। अनन्तर जगन्नियन्ता पाकशासन इन्द्र और उनके धनाध्यक्ष यक्ष और राक्षसोंके स्वामी धनद कुबेर विरोध मिटानेके लिये शुक्रके निकट आये। योगसिद्ध महामुनि शुक्रने धनाधिपति कुबेरके हृदयमें योगबलसे प्रवेश कर योगबलसे ही उन्हें रुद्ध करके उनका सब धन हर लिया, सब धन हरे जानेपर धनपति किसी प्रकार सुस्थ न रह सके; उन्होंने दीनदशासेयुक्त और व्याकुल होके सुरसत्तम शिवके निकट जाके प्रियदर्शन अनेक रूपवाले अत्यन्त तेजस्वी देवश्रेष्ठ रुद्रदेवके निकटवर्त्ती होकर निवेदन किया, कि योगात्मा भार्गवने योगबलसे मेरे शरीरमें प्रविष्ट होके मुझे रुद्ध करके मेरा समस्त धन हर लिया है। वह महातपस्वी उशना योगबलसे सब धन अपने अधिकारमें करके मेरे शरीरसे निकल गये हैं। हे राजन्! महायोगी महेश्वर धनाधिपतिका ऐसा वचन सुनके क्रोधसे नेत्र लालकर शूल लेकर खड़े रहे। वह उस परमास्त्रको ग्रहण करके "वह कहां है? वह कहां है?" बारम्बार ऐसा ही कहने लगे, उशना उनका अभिप्राय जानके दूरसे उनके दृष्टिगोचर हुए।

योगसिद्ध शुक्र महायोगी महात्मा रुद्रदेवके रोषके विषयको जानके विचारने लगे, कि उनके निकट जाऊं अथवा इस स्थानसे प्रस्थान करूं। वा इस ही स्थानमें स्थित रहूं; अनन्तर योगसिद्ध उशनाने उग्र तपस्याके सहारे महानुभाव महेश्वरके विषयमें विचार करके यह निश्चय किया, कि "मैं शूलके ऊपर निवास करूं, तो महादेव मेरे ऊपर शूल न चला सकेंगे" ऐसा समझके वह शैव शूलके अग्रभागमें स्थित हुए। विज्ञानरूप तपसिद्ध शुक्रको शूलस्थ जानके देवेश महादेवने हाथसे उस शूलको नमित किया। उग्रायुध महादेवने अपरिमित प्रभावयुक्त हाथसे शूलको शरासन रूपसे नमित किया था, इससे ही उनका नाम पिनाकी हुआ। अनन्तर उमापति रुद्रदेवने भार्गवको हाथके बीच देख कर उसे हाथसे ही उठाके मुख बाके उसको मैं डाल दिया। महात्मा भृगुनन्दन उशना महादेवके उदरमें पैठकर वहां विचरने लगे, अन्न आदिकी भांति जीर्ण न हुए।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! महातेजस्वी भृगुनन्दनने महादेवके जठरके बीच किस निमित्त विचरण किया था और वहां किस प्रकार तपस्या की थी?

भीष्म बोले, पहले समयमें महाव्रती महादेवने स्थाणुकी भांति जलके बीच निवास करके तपस्याकी थी; उस तपस्यामें उनका दस हजार अर्बुद वर्ष बीत गया। अनन्तर वह दुस्तर

तपस्या करके महाह्रदसे निकले, तब देवश्रेष्ठ पितामह ब्रह्मा उनके समीप उपस्थित हुए। अविनाशी ब्रह्माने शिवके निकट जाके उनसे तप वृद्धि और कुशलका विषय पूछा, वृषभध्वजने तपस्या उत्तमरीतिसे हुई है, ऐसा ही उत्तर दिया। अनन्तर सत्य धर्म्ममें रत अचिन्त्य स्वभाव महाबुद्धिमान शङ्करने देखा, कि तपस्याके संयोगसे शुक्रने भी उत्कर्ष लाभ किया है। हे महाराज! महायोगी वीर्य्यवान शङ्कर उस तप रूप धनसे युक्त होकर त्रिभुवनमें विराजने लगे। अनन्तर योगात्मा पिनाकपाणिने ध्यानयोगमें समाधि लगाई, उशना भी व्याकुल होके उनके उदरके बीच लीन होरहे। महायोगी भार्गव महादेवके उदरसे निकलनेकी इच्छा करके उदरमें रहके ही उस देवदेवकी स्तुति करने लगे, परन्तु उससे कुछ भी फल न दीख पड़ा। अनन्तर जठरके मध्यवर्त्ती महामुनि उशना विनय वचनसे बोले, हे अरिन्दम! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये! जब शुक्र बार बार इस ही प्रकार कहने लगे, तब महादेव उनसे बोले, "तुम हमारे लिङ्गके मार्गसे निकलो" त्रिदशेश्वर महादेवने ऐसा वचन कहके सब इन्द्रिय द्वारोंको रुद्ध करते हुए लिङ्गद्वार सब भांतिसे शुक्रसे पिहित रहनेसे उसे नहीं देखा, अनन्तर उशना तेजसे प्रज्वलित होकर बाहर निकले, लिङ्गद्वारसे बाहर हुए थे इसहीसे उनका शुक्र नाम हुआ। और लिङ्गसे निकलनेसे ही वह इस मार्गकी भांति आकाशमण्डलके मध्यभागसे गमन करनेमें समर्थ नहीं है। महादेव उस तेजपुञ्जसे प्रकाशमान शुक्रको निकला हुआ देखकर क्रोधयुक्त होकर हाथमें शूल लेकर खड़े हुए। निजपति महादेवको क्रुद्ध हुआ देखकर देवीने उन्हें निवारण किया महादेवके भवानीसे निवारित होनेपर शुक्रने देवीका पुत्रत्व लाभ किया।

देवी बोली, हे देव! जब शुक्र हमारा पुत्र हुआ, तब इसकी हिंसा करनी तुम्हें उचित नहीं है; तुम्हारे उदरसे निकलनेसे कोई कदापि विनष्ट न होगा। हे राजन्! अनन्तर भगवान् महादेव भगवतीके ऊपर प्रसन्न होकर हंसते हुए बार बार यह वचन बोले, इस समय इसकी जहां इच्छा हो, उस स्थानमें गमन करे, अन्तमें महामुनि बुद्धिमान् भार्गवने वरदाता महादेव और जगन्माता उमादेवीको प्रणाम करके निज अभिलषित स्थानमें गमन किया। हे तात भरतश्रेष्ठ! तुमने मुझसे जो पूछा, मैंने तुम्हारे निकट उस ही महानुभाव भार्गवका चरित्र वर्णन किया।

२८९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबाहु पितामह! इसके अनन्तर जो कल्याणकारी है, आप उसे ही मेरे समीप वर्णन करिये आपके अमृत समान वचनको सुनके मुझे किसीसे भी तृप्ति नहीं होती है। हे पुरुषसत्तम! मनुष्य कैसा शुभ कर्म्म करके इस लोक और परलोकमें कल्याण लाभ करता है, आप उसे ही कहिये।

भीष्म बोले, इस विषयमें पहिले समयमें महा यशस्वी राजा जनकने महात्मा पराशरसे जो प्रश्न किया था, उसे ही मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं सुनो। "इस लोक और परलोकमें जो सब भूतोंके लिये कल्याणकारी है और जो सबका ही ज्ञेय विषय है आप मेरे निकट उसे ही वर्णन करिये।" राजर्षि जनकका ऐसा वचन सुनकर सब धर्म्मोंके विधाताको जाननेवाले तपोबलसे युक्त, मननशील पराशर मुनि राजाके ऊपर कृपा करनेकी इच्छा करते हुए वक्ष्यमाण वचन कहने लगे। पराशर मुनि बोले, उपार्जित धर्म्म ही इस लोक और परलोकमें कल्याणकारी है; मनीषी लोग जैसा कहते हैं, उससे बोध होता है, कि धर्म्मसे श्रेष्ठ वस्तु और कुछ

भी नहीं है। हे नृपसत्तम! मनुष्य धर्म्माचरण करके स्वर्गलोकमें वास करता है, देहधारियोंके योगयज्ञादि कर्म्म ही धर्म्ममय हैं, गार्हस्थ्य आदि आश्रमोंमें निवास करनेवाले सज्जन लोग धर्म-निष्ठ होकर इस लोकमें निज निज कार्य्योंको किया करते हैं। हे तात! इस लोकमें जीवन-यात्रा निभनेके उपाय चार प्रकारसे कहे गये हैं ब्राह्मणोंको प्रतिग्रह, क्षत्रियोंको कर ग्रहण करना, वैश्योंके लिये कृषि वाणिज्य और शूद्रोंके निमित्त सेवा करनेकी वेतन, मनुष्य जिस स्थानमें निवास करते हैं, जीविका भी यदृच्छा-क्रमसे वहां उपस्थित होती है। प्राणि समूह अनेक प्रकारके पुण्य पापका कार्य्य करके पञ्च-भूतोंमें विभक्त अर्थात् पञ्चत्व प्राप्त होनेपर उनकी नाना भांतिकी गति हुआ करती है। पापियोंकी तिर्य्यग् योनि पुण्यात्माओंको स्वर्ग-वास पाप-पुण्य समान रहनेपर मनुष्य जन्म और तत्त्वज्ञानके सहारे पाप पुण्यका नाश होनेपर मुक्ति हुआ करती है। जैसे ताम्रमय पात्रद्रवी भूत सुवर्ण वा रौप्यमें डाले जानेसे सोना तथा चांदीकी भांति दिखाई देता है, वैसे ही जीव पूर्व्वकर्म्मोंके वशमें होकर जन्म ग्रहण करता है बिना बीजके कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होता; जो बीज ग्रीष्मकालमें पांशुसे ढके रहनेसे नहीं दीख पड़ता, वर्षाकालमें वही अंकुर निकलनेसे जाना जाता है। इस ही भांति दृष्टादृष्ट कारणोंके जरिये सुख आदि उत्पन्न होते हैं; इसलिये पूर्व्व जन्ममें कुछ सुकृत न करनेसे जीव इस जन्ममें सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं होता, इससे सुकृतसे ही देवाधिपत्य अथवा ऐश्वर्य प्राप्त होने-पर मनुष्य सुखोंको भोग करता है। हे तात! देवताओंमें कुछ पुण्य वा पापका लक्षण नहीं दीखता, उस विषयमें अनुमान वा साधन नहीं है। देव, गन्धर्व्व और दानव लोग स्वभावसे ही जन्म ग्रहण किया करते हैं; उनमें कोई कार-णान्तर नहीं है। मनुष्य परलोकमें जानेपर इस लोकके किये हुए सब कर्म्मोंको सदा स्मरण करनेमें समर्थ नहीं होते; परन्तु उन कर्म्मोंके फलप्राप्त होनेपर पुण्य-पाप नीति वा अनीतिके जरिये प्रतिपादित चार प्रकारके कर्म्म स्मरण किया करते हैं। "पुण्यकर्म्मसे पवित्रता होती है" इत्यादि वेदाश्रय वचन लोकयात्रा निर्व्वाहके उपाय हुए हैं। हे तात! मनकी शान्तिके लिये लोकायत शास्त्र प्रणेता प्राचीन पुरुष बृहस्पति आदिकी ऐसी आज्ञा नहीं है। नेत्र, मन, वचन और कर्म्मसे मनुष्य चार प्रकारके कर्म्मोंको जिस भावसे किया करता है उस ही भावसे उसको फलप्राप्ति होती है। हे राजन्! कदा-चित मनुष्य निरन्तर दुःख पाता है, कभी सुख दुःख दोनों ही मिश्रित भावसे भोग किया करता है; कल्याणकारी कर्म्म हो, अथवा पाप कर्म्म ही होवे, उसके निमित्त पुण्य-पापात्मक अपूर्व्वके भोगे बिना कदापि विनाश नहीं होता, हे तात! संसारमें प्राय. डूबे मनुष्य दुःखोंसे छूटनेपर उनका सुकृत पक्षपात रहित होकर दुष्कृतके अविरोधमें निवास करता है।

हे मनुष्यराज! पुरुष दुःखका नाश करके सुकृत कर्म्मको सेवा करता है, और सुकृत नाश होनेके अनन्तर दुष्कृत कर्म्मोंका फल भोग किया करता है, ऐसा ही प्रणिधान करे। दम, क्षमा, धृति, तेज, सन्तोष, सत्यवादिता, लज्जा, अहिंसा, व्यसन हीनता और दक्षता, ये दर्शोंसु-खावह अर्थात् पुण्य-पापके समुच्छेद जनित सुख ढोया करते हैं। मनुष्य जीवन पर्य्यन्त सुख वा दुःखमें आसक्त न होवे; बुद्धिमान मनुष्य सदा ब्रह्मदर्शनके निमित्त समाधि करनेमें यत्नवान होवे। मनुष्य दूसरोंके सुकृत वा दुष्कृतको भोग नहीं करता, स्वयं जैसा कर्म्म करता है, वैसा ही फल-भोग किया करता है। सुख और दुःखके हेतु पुण्य और पापको तत्त्वज्ञानके जरिये आत्मामें लीन करके पुरुष ज्ञान पदवी गमन करनेसे अभिलषित वस्तुओंको पाता है,

और जो पुरुष शय्यापर स्थित होकर स्त्री, पुत्र, पशु, गृह, धन और आराम आदिमें आसक्त होता है, वह दूसरे मार्गमें गमन करता है,—वह स्वर्ग वा नरक विषयमें कोई उपकार नहीं करता। दूसरेका जो कार्य्य देखके निन्दा करनी होती है, स्वयं उस निन्दनीय कर्म्मको न करे; योगी पुरुष यदि दोषदर्शी हों, तो अवश्य ही उन्हें निन्दनीय होना पड़ेगा। हे राजन्! क्षत्रिय होके कादर, ब्राह्मण होकर सर्व्वभक्षी, वैश्य होके कृषि वाणिज्यके कार्य्योंमें चेष्टा-रहित होन वर्ण शूद्र होके आलसी, विद्वान् होके असद्वृत्त, कुलीन होके वृत्तिहीन, बदक होके सत्यसे भ्रष्ट, दुश्चरित्रवाली स्त्री, योगी होके विषयानुरागी, आत्म निमित्त पाचक, मूर्खवक्ता, राजासे रहित राज्य, वेदविहित योगाभ्याससे रहित होके भी प्रजासमूहके विषयमें स्नेह-हीन,—ये सभी शोचनीय हुआ करते हैं।

२९० अध्याय समाप्त।

पराशर मुनि बोले, जो मनुष्य मनोमय शरीरको और इन्द्रिय विषय शब्द स्पर्श आदिको घोड़े रूपी जानकर ज्ञानसे उत्पन्न हुई रश्मि अर्थात् चित्त-प्रतिमाके सहारे परिचालित करते हुए विषयोंको चिन्मय रूपसे अवलोकन करते हैं; वेही बुद्धिमान हैं। हे वेद संस्कारयुक्त महाराज! जिसका मन किसी अवलम्बका सहारा न करके निवास करता है, उस इच्छाहीन पुरुषका ईश्वर प्रणिधान सबसे श्रेष्ठ है, अर्थात् निर्व्विकल्पक समाधिके सहारे निवास करनाही सबसे उत्तम है। क्षीण कर्म्म-वाले ब्रह्मवित साधु पुरुष गुरुके प्रसादसे उस प्रणिधानको प्राप्त करके निवृत्त होते हैं, वैसा प्रणिधान परस्पर समान पुरुषोंमें नहीं प्राप्त होता। हे मनुजेश्वर! दुर्लभ परमायु पाके विषय सेवनसे उसे नष्ट करना उचित नहीं है। पुण्य, कर्म्मके सहारे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ लोक प्राप्त होनेके लिये मनुष्यमात्रको अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। सत, रज और तमोगुणको ह्रास वृद्धिके तारतम्यके अनुसार कल्पित कृष्ण, धूम्र नील, लाल, पीला और सफेद, इन छःप्रकारके वर्णोंसे जो पुरुष परिभ्रष्ट अर्थात् उच्च वर्णसे नीच वर्ण लाभ करता है, वह कदापि सम्मान पानेमें समर्थ नहीं होता और जो लोग उच्च वर्ण लाभ करते राजस कर्म्मोंको सेवन नहीं करते, वेही सम्मान भाजन होते हैं इसलिये मनुष्य पुण्यकर्म्मसे ही श्रेष्ठ वर्ण लाभ किया करते हैं और पाप कर्म्मसे दुर्लभ वर्णको उत्कर्षता न प्राप्त कर सकनेसे बहुतेरे लोग आत्माको अनेक नरकोंमें डुबाते हैं। मनुष्य अज्ञानसे प्राप्त हुए दुःखको तपस्यासे दूर करे, जानके किया हुआ पाप कर्म्म केवल पापफलको ही उत्पन्न किया करता है; इसलिये परिणाममें दुःख ही जिसके फलरूपसे उत्पन्न होता है, वैसे पापकर्म्मका अनुष्ठान करना कदापि उचित नहीं है; पापयुक्त कर्म्मसे यदि महाफल उत्पन्न हो, तौभी जैसे पवित्र पुरुष चाण्डालको स्पर्श नहीं करता वैसे ही बुद्धिमान मनुष्य उस पाप कर्म्मके अनुष्ठान करनेमें विरत रहें। पापकर्म्मका फल कुत्सित कष्ट मात्र ही दीख पड़ता है; पापके वशमें होकर विपरीत दृष्टिवाला मनुष्य देहादिको ही आत्मा जानता है। इस लोकमें जिस मूढ़ मनुष्यके अन्तःकरणमें वैराग्यका सञ्चार नहीं होता, मरनेपर भी उसे अत्यन्त ही नरक यन्त्रणासे दुःख उत्पन्न हुआ करता है। जो वस्त्र स्वयं श्वेत है, वह यदि विपरीत रङ्गसे रङ्गा जावे, तो समय विशेषमें सफेद होसकता है; परन्तु काली रंग मलीन-कादिसे रङ्गा हुआ वस्त्र कभी परिशुद्ध नहीं होता। हे मनुजेन्द्र! इसलिये मेरा यही मत है, कि प्रयत्नके जरिये किस पापसे पवित्रता लाभ की जा सकती है, और किस पापसे पवित्रता

नहीं प्राप्त होसकती, तुम इसहीको विचारो। जो पुरुष जानके पापाचरण करके शेषमें शुभकर्म्मोंका अनुष्ठान करता है, वह प्रायश्चित्त करनेके निमित्त पापपुण्य दोनोंके ही फलको पृथक् रूपसे भोग किया करता है, जानके किया हुआ पाप किसी भांति भी नष्ट नहीं होता।

यदि मनुष्य बिना जाने हिंसा करे, तो वेदशास्त्रको अनुसारिणी अहिंसाके जरिये उसके पापकी शान्ति होती है; ब्रह्मवादी लोग ऐसा कहा करते हैं, इसही प्रकार जानके किया हुआ पापकर्म्म अहिंसाके जरिये शान्त नहीं होता; वेद शास्त्र और स्मृतियोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंका ऐसा ही मत है कामना वा अकामनासे किया हुआ कर्म्म चाहे थोड़ा हो चाहे अधिक वह बिना भोगे नष्ट नहीं होता, परन्तु मैं देखता हूं कि जो किया हुआ कर्म्म विद्यमान रहता है, वह पुण्य कर्म्म रूपसे प्रकाशित होने पर पापके जरिये कभी नहीं छिपता। इस लोकमें सब सूक्ष्मकर्म्म "इसे इस प्रकारसे करे" इस भांति परामर्श करके अथवा "इसे इस भांति करना चाहिये" ऐसा निश्चय करके स्थूल सूक्ष्मके तारतम्यके अनुसार सुख दुःख आदि फल उत्पन्न हुआ करते हैं; अव्यभिचारी नरकावह कर्म्मका फल थोड़ा भी होनेसे वह सेवन किया जाता है। हे धर्म्मज्ञ! उग्रकर्म्मसे अज्ञानकृत कर्म्म सम्पादित हुआ करते हैं, जैसे जानकर किये हुए कर्म्मोंका अवश्य फल उत्पन्न होता है, अज्ञानकृत कर्म्म भी वैसे ही हैं। देवता और मुनियोंके जरिये सब कर्म्म विहित हुए हैं, धर्म्मात्मा मनुष्य उन कर्म्मोंका आचरण अथवा उसे सुनके निन्दा न करें, क्यों कि अलौकिक कर्म्म कदापि मनुष्योंके अनुष्ठेय नहीं हैं। हे राजन्! आप जिन कर्म्मोंके करनेमें समर्थ हो, मनहीमन उसका अनुशीलन करके जो लोग शुभ कर्म्म करते हैं, वेही कल्याण लाभ किया करते हैं।

हे राजन्! नवीन कपालमें डाला हुआ जल नष्ट होता है और उस जलके सम्बन्धसे कपाल भी गल जाता है और परिपक्व कपालमें डाला हुआ जल अनायास ही स्थित रहता है; जैसे जलयुक्त पात्रमें और जल डालनेसे पात्रके जलकी वृद्धि होती है, वैसे ही इस लोकमें बुद्धियुक्त कर्म्म चाहे सम हों वा विषम हों हों, पात्रके अनुसार पवित्रतायुक्त हुआ करते हैं। पाप पुण्यमें जो उदासीन हैं वैसे तेजस्वी पुरुषको कर्म्म कदापि हिंसा नहीं कर सकते, निस्तेज मनुष्य ही पापसे पराभूत हुआ करते हैं।

शत्रुओंके उन्नत होनेपर भी उन्हें जय करना राजाका कर्त्तव्य कार्य्य है, प्रजासमूहको पूर्णरीतिसे अवश्य पालन करना चाहिये, अनेक भांतिके यज्ञसे अग्निचर्य्या अत्यन्त अनुष्ठेय है; अवस्थाके परिणाममें अथवा मध्य अवस्थामें संसारसे विरक्त होकर जङ्गलके अवलम्बसे निवास करना उचित है। हे नरेन्द्र! दमयुक्त पुरुष धर्म्मशील होकर जीवोंको अपने समान देखे और वह अपनी शक्तिके अनुसार सत्य वा सदाचारके जरिये सहजमें ही बड़ेपुरुषोंके सम्मान करनेमें यत्नवान होवे।

२९१ अध्याय समाप्त।

पराशर मुनि बोले, इस लोकमें कौन किसका उपकार करता है। कौन किसे दान किया करता है; यह प्राणी अपनी इष्टसिद्धिके लिये आप ही सब कर्म्मोंको करता है, दूसरेका प्रयोजन सिद्धके लिये कोई भी किसी कर्म्मको नहीं करता। "माताको देवी समान जानो, पिताको देवता समान मान्य करो" इत्यादि वेदवाक्यसे देवता समान आराधित माता पिता अवश्य ही पुत्रका उपकार करते हैं,—ऐसी आशङ्का उपस्थित होनेपर भी जब कि यह देखा जाता है कि अनुपकारी माता पिताको भी लोग परि-

त्याग करते हैं, तब यह निश्चय मालूम होता है कि कोई किसीका उपकार नहीं करता। मनुष्य जो गौरवके लिये पिता माताकी आराधना करता है, वह अपनेही ऐहिक और पारलौकिक हितके निमित्त, पिता-माताके हितके लिये नहीं करता। सहोदर भाई भी जब स्नेहहीन होता है, तब उसेभी जब कि मनुष्य त्याग देते हैं, तब दूसरे सामान्य लोगोंकी बातही क्या है। विशिष्टोंका विशिष्टसे दान वा प्रतिग्रह तुल्य है, सम्प्रदाता ब्राह्मणका दान प्रयुक्त दोनोंसे पुण्ययुक्त है। न्यायसे उपार्ज्जित धनकी न्यायानुसार बढ़ाके यत्नपूर्व्वक धर्म्म, अर्थकी रक्षा करनी उचित है, यही शास्त्रीय निश्चय है। धर्म्मार्थी मनुष्य नीच कर्म्मसे धन उपार्ज्जन न करे; शक्तिके अनुसार सब कार्य्योंको सिद्ध करे, धन सम्पत्ति स्मरण न करे। निर्द्धन मनुष्य सावधान होकर शक्तिके अनुसार यदि भूखे अतिथिको ठण्ढा वा अग्निसे गर्म्म किया हुआ जल प्रदान करे, तो वह अन्नदानका फल भोग किया करता है।

फल मूल और पत्तसे मुनियोंकी अर्चना करके रन्तिदेवने इस लोकमें ही सिद्धिलाभ की थी। पृथ्वीपति शैव्यने भी उस ही प्रकार फलपत्तके जरिये सूर्य्यदेवको सन्तुष्ट करके उस ही फलसे परम स्थान पाया, मनुष्य देवता, अतिथि पितर, पत्र और आत्माके निकट ऋणी होता है, इसलिये उनसे अऋणी होवे। स्वशाखोक्त वेदाध्ययनसे महर्षियों, यज्ञसे देवताओं, श्राद्ध और दानसे पितरों, सत्कारसे अतिथियों वेदशास्त्रमयी अथवा मनन आदि वाणी पञ्चयज्ञसे शेष बचे अन्नके भोजन तथा जीवोंपर दया करनेसे आत्मा और जातकर्म्म आदि कार्य्योंको यथावत् निर्व्वाह करके पुत्रोंसे अऋण होवे। मुनि लोग निर्द्धन होके भी प्रयत्नके सहारे सिद्ध हुए हैं, उन लोगोंने पूर्व्व रीतिसे अग्निमें आहुति देकर सिद्धि लाभ की है। हे महाराज! ऋचीकपुत्र ऋगमन्त्रके जरिये यथभागि देवताओंकी स्तुति करके विश्वामित्रका पुत्रत्व लाभ किया। उशनाने देवोंके देव महादेवको प्रसन्न करके शुक्रत्व लाभ किया; वह देवी भगवतीकी स्तुति करके यशस्वी होकर आकाशमण्डलमें विराजते हैं। असित, देवल, नारद, पर्व्वत, कक्षीवान्, जमदग्निपुत्र राम, बुद्धिमान ताण्ड्य, वसिष्ठ, जमदग्नि, विश्वामित्र, अत्रि, भरद्वाज, हरिश्मश्रु, कुण्डधार और श्रुतश्रवा, ये सब महर्षि लोग तथा सावधानीसे ऋगमन्त्रके जरिये बुद्धिमान् विष्णुकी स्तुति करके तपस्याके सहारे सिद्धि लाभ की थी, भगवान् विष्णुकी स्तुति करके अपूज्य पुरुष भी पूज्य हुए हैं; इसलिये इस लोकमें जुगुप्सित कर्म्म करके कोई अपनी उन्नतिकी कामना न करे। धर्म्मसे जो सब अर्थ प्राप्त होता है, वही सत्य है और अधर्म्मसे जो उपार्ज्जित किया जाता है, वही निन्दित है; इसलिये धनकी अभिलाषसे इस लोकमें कोई नित्य धर्म्मको न त्यागे। जो धर्म्मात्मा आहिताग्नि हैं, वेही पुण्यात्माओंके बीच श्रेष्ठ हैं। हे प्रभु राजेन्द्र! वेदोंमें दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आवहनीय, ये तीनों अग्नि निवास करते हैं। जिनकी क्रिया नष्ट नहीं होती, वे ब्राह्मण भी आहिताग्नि होते हैं। अनाहिताग्नित्व और निष्क्रिय अग्निहोत्र कदापि कल्याणकारी नहीं है। हे नरश्रेष्ठ! अग्नि ही आत्मा, अग्नि ही माता और जन्मदाता पिता है, तथा अग्नि ही गुरु है; इसलिये यथारीति अग्निकी परिचर्य्या करनी चाहिये। जो अभिमान त्यागके वृद्धोंकी सेवा करते हैं, वे कामहीन बुद्धिमान मनुष्य दयार्द्र दृष्टिसे सब जीवोंको देखा करते हैं। जो आलस रहित, धर्म्मपरायण और हिंसाहीन होते हैं, वे आर्य्य पुरुष ही इस लोकमें साधुओंके जरिये पूजित हुआ करते हैं।

२९२ अध्याय समाप्त।

पराशर मुनि बोले, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णोंसे हीनवर्ण शूद्रकी वृत्ति ही उत्तम है, क्योंकि शूद्रको निर्द्दिष्ट सेवावृत्ति प्रीतिपूर्व्वक उपस्थित होकर सेवकोंको सदा धर्म्मिष्ठ किया करती है। शूद्रको यदि पितृ-पितामह आदि क्रमसे कोई निर्द्दिष्ट वृत्ति न रहे, तौभी वह त्रैवर्णिक सेवाके अतिरिक्त वृत्त्यान्तरको खोज न करे, ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सेवा करनेमें ही नियुक्त होवे। सब अवस्थामें ही सदा धर्म्मदर्शी साधुओंका संसर्ग ही शोभा पाता है, असत् संसर्ग कभी न करना चाहिये,—यही मेरी विवेचना होती है। जैसे उदयाचल पर स्थित मणि सुवर्णादि सूर्य्यकी सन्निकर्षतासे प्रकाशित होते हैं वैसे ही सतां-सर्गसे नीच वर्ण शूद्र भी ज्ञानलाभ करके प्रकाशित हुआ करता है। जैसे श्वेत वस्त्र जिस रङ्गसे रङ्गा जाता है उसका रूप भी वैसा ही हुआ करता है, इसे ही तुम मेरे समीप मालूम करो; इसलिये सब गुणोंमें ही अनुरक्त होवे, दोषोंमें कदापि अनुराग न करे, इस लोकमें मनुष्योंका चञ्चल जीवन अत्यन्त अनित्य है। बुद्धिमान् मनुष्य चाहे सुख अथवा दुःखरूपी किसी अवस्थामें निवास क्यों न करें, यदि वे शुभ कार्य्योंका सञ्चय करते हैं, तो अवश्य ही इस लोकमें कल्याण भाजन होते हैं। धर्म्मसे पृथक् कर्म्म यदि महाफल प्रदान करे तौभी बुद्धिमान मनुष्य उसे सेवन न करे; क्योंकि इस लोकमें वैसा कर्म्म हितकर कहके वर्णित नहीं हुआ है। प्रजासमूहके पालन विषयमें उदासी-नता युक्त जो राजा दूसरेको सहस्र गऊ हरके दान किया करता है, वह नाम मात्रका फल-भागी तस्कर होता है। स्वयम्भू पहले सब लोक सत्कृत धाताको उत्पन्न करते हैं। धाता सब लोकोंके धारण करनेमें रत होकर पर्ज्ज-न्यदेव नाम पुत्रको उत्पन्न करते हैं। वैश्य जाति उनकी पूजा करके जीविकाके लिये कृषि वाणिज्य और पशुपालन आदि किया करती है। क्षत्रिय प्रजा पालन करें और ब्राह्मण लोग हव्यकव्य प्रयोगमें निपुण होकर जीविका निबाहें। शूद्र लोग निर्म्मार्ज्जन अर्थात् भूमि-शुद्धि आदि कार्य्य करें; इस ही भांति सब कोई स्वकर्म्म साधन करनेसे धर्म्मभ्रष्ट नहीं होते। हे राजेन्द्र! धर्म्म नष्ट न होनेसे सब प्रजा सुखी रहती है, उन लोगोंके सुखके निमित्त सुर लोकमें देवता लोग प्रसन्न होते हैं; इससे जो राजा स्वकर्म्मके अनुसार प्रजापालन करता है, जो ब्राह्मण वेद पढ़ता है, जो वैश्य कृषि वाणिज्य पशुपालन आदिसे धन उपार्ज्जनमें रत रहता है, और जो शूद्र सदा सावधान होकर तीनों वर्णोंकी सेवामें नियुक्त रहते हैं, वे सब कोई लोकसमाजमें सम्मानित होते हैं। हे मनुजेन्द्र। इसमें अन्यथा करनेसे मनुष्य स्वध-र्म्ममें च्युत होता है। प्राण सन्ताप पूर्व्वक बीस वराटिका दान करनेसे भी महाफल हुआ करता है, और अन्यायसे उपार्ज्जित सहस्र धन दान करनेसे भी कुछ फल नहीं होता। हे नरनाथ! जो ब्राह्मणोंका सत्कार करके जिस प्रकार दान करते हैं, वे सदा वैसा ही ऊर्ज्ज-स्वल फलभोग किया करते हैं। जो दाता स्वयं पात्रके निकट जाके उसकी तुष्टिके निमित्त दान करता है, पण्डित लोग उस दानको अभिष्टुत अर्थात् सब प्रकारसे प्रशंसित कहते हैं, और मांगनेपर जो दान किया जाता है, उसे मध्यम दान कहा करते हैं, तथा अवज्ञा वा अश्रद्धासे जो दान किया जाता है, सत्यवादी मुनि लोग उसे ही अधम दान कहते हैं। संसा-रसमुद्रमें प्रायः डूबते हुए मनुष्य विविध उपायके सहारे उससे पार होनेकी चेष्टा करें, और संसारजालसे जिस प्रकार छुटकारा मिल सके, मनुष्य मात्रको ही उस विषयमें चेष्टा करनी उचित है। ब्राह्मण इन्द्रियोंके जीतने और क्षत्रिय युद्धमें विजय पानेसे शोभित होता है।

वैश्य धनउपार्ज्जन करने, और शूद्र सदा कार्य्योंमें निपुणता प्रकाशित करनेसे शोभा पाता है।

२९३ अध्याय समाप्त।

पराशर मुनि बोले, ब्राह्मणोंको दानसे, क्षत्रियोंको युद्ध जीतने, वैश्योंको न्यायसे प्राप्त होने और शूद्रोंको सेवाके जरिये मिला हुआ धन अत्यन्त थोड़ा होनेपर भी प्रशंसित होता है, और धर्म्मार्थमें लगानेसे वह महाफलजनक हुआ करता है। ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सदा सेवा करनेवाले पुरुषको ही शूद्र कहा जाता है। वृत्तिहीन ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य धर्म्मका आचरण करनेसे पतित नहीं होता; परन्तु शूद्रका धर्म्म अवलम्बन करनेसे उस ही समय पतित होता है। अपने धर्म्ममें रहके जीविका लाभमें असमर्थ शूद्रके लिये वाणिज्य, पशुपालन और चित्र खींचना आदि शिल्प कर्म्मके जरिये जीविका निर्व्वाह विहित है, क्यों कि उक्त कार्य्य सेवामें ही परिगणित हुआ करते हैं। स्त्रीका वेष बनाके रङ्गभूमिमें जाना, रूप पलटना (बहुरूपी) अर्थात् सूक्ष्म वस्त्र पहनके चर्म्ममय आकारके जरिये राजा और सेवकोंके आचरणको प्रदर्शित करना, मद्यमांस बेचके जीविका निभानी, लोहा और चमड़ेको बेंचना; इन सब निन्दित कर्म्मोंको जिनके पूर्व्व पुरुषोंने कभी नहीं किया, उन्हें किसी प्रकार भी उसे न करना चाहिये; और जिनके पूर्व्व-पुरुषोंने उक्त निन्दित कर्म्मको किया है, अध-स्तन (नीचेके) यदि कोई पुरुष उक्त कर्म्मको छोड़ दें, तो उन्हें बहुत ही धर्म्म हुआ करता है, ऐसी ही जनश्रुति है। इस लोकमें बहुतसे अन्न वस्त्र आदि पाके मदोन्मत्त चित्त होकर लोकमें जो पुरुष पापाचरण करता है, वैसा निन्दित कार्य्य इन्होंके जरिये अनुष्ठित होनेपर भी मनुष्योंके सब भांतिसे अनहो कार्य्य रूपसे वर्णित हुआ करता है। पुराणप्रबन्धमें सुना जाता है, कि प्रजासमूहने धिगदण्ड राजाके शासनके अनुसार जितेन्द्रिय, धर्म्मपरायण और न्याय धर्म्मानुयायी वृत्तिको अवलम्बन किया था। हे राजन्! इस लोकमें मनुष्योंके लिये धर्म्म ही सब समयमें श्रेष्ठ है; पृथ्वीमण्डलपर धर्म्मवृद्ध मनुष्य ही केवल गुणोंकी सेवा किया करते हैं। हे तात प्रजानाथ! काम क्रोध आदि असुर-स्वभाव वैरीवृन्द उस धर्म्मकी अवमानना करते थे। उस समय उनके क्रमसे वर्द्धित होते रहने पर प्रजा उनमें अनुप्रविष्ट हुई; तब प्रजा समूहमें धर्म्मनाशक दर्प उत्पन्न होने लगा; दर्पसे अभिमान और उसके अनन्तर उन लोगोंमें क्रोध उत्पन्न हुआ। धीरे धीरे क्रोधयुक्त प्रजावृन्दका चरित्र लज्जाकर होगया। हे राजन्! अनन्तर उन लोगोंकी लज्जा नष्ट हुई, अन्तमें मोह उत्पन्न हुआ। उस समय प्रजा मोहमें फंसकर अपमर्द्दनके जरिये यथा सुखसे वृद्धि लाभ करती हुई पहलेकी भांति आपसमें परस्परकी तत्वावधान करनेमें विरत हुई। राजा धिगदण्ड उन सब समुद्धत प्रजाको शासन करनेमें असमर्थ हुए। तब वे सब प्रजा ब्राह्मणोंकी अवमानना करके देवस्वभाव शम दम आदिके सम्बन्धहीन हुईं। उस समय पहले कहे हुए देवता लोग माया वशसे बहुरूपधारी, नित्य ज्ञान ऐश्वर्य्य आदि गुणोंमें श्रेष्ठ वीरवर देवेश्वर शिवके शरणमें गये, शिवका दर्शन कर-नेसे उन लोगोंके तेजकी वृद्धि हुई, तब उन्होंने एक बाणसे ही दानव स्वभाववाले आकाश गत क्रोध आदि प्रजा समूहको स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरके सहित पृथ्वीपर गिरा दिया। उक्त काम क्रोध आदि दानवोंका जो भीमपरा-क्रमी भयङ्कर महामोह नाम अधिपति था, वह देवताओंके पक्षमें भयानक होनेसे शूलपाणि महादेवके जरिये मारा गया। महामोहके मारे जानेपर मनुष्योंने निज निज भाव काम

किया और पहलेकी भांति वेदशास्त्र प्राप्त हुए आदि सृष्टिमें जैसे मरीचि आदि महर्षि लोग एकमात्र वेदनिष्ठ होकर तत्त्वज्ञानके अनन्तर जीवन मुक्त हुए थे, उस समयमें मनुष्योंका अन्तःकरण उस ही प्रकार अनादि सद्वासनासे एकमात्र वेदनिष्ठ हुआ था। अनन्तर सप्तर्षि वेद स्वरूप इन्द्रियोंके राज्यरूप वशित्व विषयमें हृदयाकाश अथ स्वर्ग लोक स्वरूप चैतन्यके जरिये शरीर या इन्द्रियोंके निवास प्रवर्तक चिदाकाको अभिषिक्त करके मनुष्योंके शासन कार्य्यमें नियुक्त हुए। अनन्तर सप्तर्षियोंसे उर्द्ध लोकमें स्थित अवयव उपचयमें रहित विपृथु नाम पार्थिव अर्थात शिर स्थानमें सहस्रदल कमलपर अधिष्ठित परमात्मा और योगविघ्न षट् चक्राधिपति गणेशादि रूप निराशि क्षत्रिय लोग पृथक् पृथक् मण्डलस्वरूपसे शरीरमें निवास करने लगे। जो सब पहलेके वृद्धलोग महांशमें उत्पन्न हुए थे, उनके हृदयसे भी आसुर भाव दूर न हुआ; इससे भयङ्कर पराक्रमी पार्थिव लोग उस आसुर भावसे ही आसुर कार्य्योंको निबाहने लगे, जो सब मनुष्य अत्यन्त मूढ़ थे, वे आसुर भावोंमें प्रतिष्ठित रहे सबने आसुर कार्य्योंको स्थापित किया है, और अबतक भी आसुर भावोंमें रत हैं, प्रकृत भावको प्राप्त न कर सके। हे राजन्! इसलिये मैं शास्त्र अनुशीलन करके तुमसे कहता हूं, कि आसुर भावकी निवृत्तिके लिये आत्मज्ञानके सिद्ध करनेमें यत्नवान् होकर मनुष्यमात्रको ही हिंसात्मक कर्म्म अवश्य परित्याग करना चाहिये। बुद्धिमान् मनुष्य सत्कार कार्य्यसे धन पैदा न करे, न्याय पथमें जलाञ्जलि देकर जो धर्म्मार्थ धन उपार्जन करते हैं वह धन उनके लिये कल्याणकारी नहीं होता। तुम इस ही प्रकार सद्गुणोंसे युक्त, दान्त, और बन्धु प्रिय क्षत्रिय हो, इसलिये प्रजा, सेवक और पुत्रोंको स्वधर्म्मके अनुसार प्रतिपालन करो। इष्ट और अनिष्टके संयोगसे जो वैर और सुहृदता होती है, वही सहस्र जातियोंमें वह प्रवर्त्तित हुआ करती है; इसलिये सब गुणोंमें ही अनुरक्त होवे, किसी मतसे दोषोंमें अनुराग प्रकाशित न करे; क्योंकि निर्गुण नीच बुद्धि पुरुष भी जब कभी अपने किसी गुणकी कथा सुनता है, तब वह अत्यन्त ही सन्तुष्ट होता है। हे महाराज! जैसे मनुष्य धर्म्माधर्म्ममें विद्यमान रहते हैं, मनुष्यहीन देशमें भी धर्म्म अधर्म्म दोनों ही हैं। धर्म्मशील विद्वान् मनुष्य अन्नार्थी ही हो, अथवा अनीह ही होवे, सदा सब भूतोंमें आत्मवित ज्ञान करके जीवोंकी अहिंसाके जरिये जन समाजमें विचरे। जब उसका मन वासनाहीन, निरहंकार वा निर्गताज्ञान होगा, तब वह ब्रह्मानन्द लाभ करनेमें समर्थ होवेगा।

२६४ अध्याय समाप्त।

पराशरमुनि बोले, यह गृहस्थोंकी धर्म्मविधि कही गई, अब तपस्याकी विधि कहता हूं, सुनो। हे राजन्! राजस और तामस भावके प्रसङ्गसे प्रायः गृहस्थोंमें ममत्व उत्पन्न होती है, मनुष्य गार्हस्थ्य आश्रमको अवलम्बन करनेसे उनके गौ आदि पशु क्षेत्र, धन, स्त्री, पुत्र तथा सेवक प्रभृति हुआ करते हैं। इस ही भांति संसार आश्रममें प्रवृत्त मनुष्य प्रतिदिन निज सम्पत्तिकी उन्नति और नित्यताको देखते रहने पर भी क्रमसे उनके राग द्वेषकी विशेष रूपसे वृद्धि हुआ करती है। हे नरनाथ! मनुष्यके विषयासक्त होकर राग द्वेषसे अभिभूत होने पर मोह जनित रति उसे अवलम्बन करती है। रतिपरायण मनुष्यमात्र ही आत्माको भोगशील और कृतार्थ समझ कर अनुराग वशसे ग्राम्य सुखके अतिरिक्त दूसरे लाभको लाभ ही नहीं समझता। अनन्तर मनुष्य विषयोंमें आसक्त होनेसे लोभमें फंसके कुटुम्ब और दासदासी

आदिकी परिमाणकी वृद्धि करता है, अन्तमें उन्होंके प्रतिपालनके लिये कुसीद व्यापारसे धन बढ़ानेमें यत्नवान होता है। मनुष्य सन्तान सन्ततिमें स्नेहयुक्त होकर जिस कार्य्यको अकार्य्य समझा जाता है, धनके लिये वैसे कार्य्योंको भी करनेमें कुण्ठित नहीं होता, परन्तु उस अर्थके नष्ट होने पर परिताप किया करता है। अनन्तर अभिमानयुक्त होके जिस भांति अपनी पराजय न हो, उस विषयमें सदा सावधान मनुष्य किस प्रकारसे "मैं सुख भोग करूंगा" —ऐसी ही चिन्तामें निमग्न होता है, अन्तमें भोगाभिलाषमें आसक्त होकर मृत्युके मुखमें पड़ता है। जो मनुष्य ऐसा समझता है, कि मैं स्त्री आदि परिवारोंसे भोगवान हूंगा, वह उन परिजनोंसे ही विनष्ट होता है। जो सब प्रत्याशा रहित शाश्वत ब्रह्मवादी मनुष्य लोक निषिद्ध काम्य कर्म्म परित्याग करके शुभ कर्म्मोंका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें ही सुख लाभ हुआ करता है। हे राजन्! मनुष्य प्रीतियुक्त स्त्री पुत्रोंके नाश, धन नाश और आधिव्याधिके प्रभावसे दुःख पाता है। हे महाराज! उस ही निर्व्वेद निबन्धनसे आत्मबोध होता है, आत्मबोधसे शास्त्र दर्शन हुआ करता है, शास्त्रार्थ दर्शनसे मनुष्य तपस्याको ही कल्याणकारी समझता है। हे मनुजेन्द्र! सार असारमय विवेकयुक्त मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ हैं; पत्नीसे जो सुख उत्पन्न होता है, उससे जो मनुष्य क्लेश पाके उसमें दोष देखता है, वही तपस्या करनेमें समर्थ होता है। हे तात! जितेन्द्रिय और दान्त पुरुषोंके स्वर्गमार्ग प्रवर्त्तक तपके नियम साधारण हैं, दम दया और दान आदिमें हीन वर्णोंका भी अधिकार है। हे राजन्! पहिले समय यजमान अवस्थामें प्रजापतिने किसी किसी स्थानमें व्रत अवलम्बन करके तपस्याके सहारे प्रजासमूहको उत्पन्न किया था। हे तात! आदित्यगण, वसु, रुद्र, अश्विनी कुमार, मरुत, विश्वदेव साध्य, पितर, मरुद्गण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व्व, सुरपुरवासी सिद्ध लोग तथा इनके अतिरिक्त दूसरे स्वर्गवासियोंने भी तपस्याके जरिये सिद्धि लाभकी है। आदित्य प्रभृति सबने ही यजमान होकर निज निज पदप्रापक कर्म्मोंको करके उसहीने उस ही पदको पाया है। पहिले समयमें सृष्टिके आरम्भमें प्रजापतिने तपस्याके जरिये जिन सब ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया था, वे भूलोक और सुरलोक दोनों ही स्थानोंमें विचरते रहते हैं। मर्त्य लोकमें जिन राजाओं और गृहमेधी पुरुषोंने महावंशमें जन्म ग्रहण किया है, उनका वैसे वंशमें जन्म होना तपस्याके फलके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। कौसिकवस्त्र मनोहर आभूषण, विचित्र आसन, वाहन और यान, ये सभी तपस्याके फल हैं। मनके अनुकूल सहस्रों रूपवती प्रमदा और कोठेके ऊपर निवास, ये सब तपस्याके ही फल हैं। उत्तम शय्या, अनेक प्रकारके उपादेय भोज्य और अभिप्रेत विषयोंकी सिद्धि शुभ कर्म्म करनेवाले मनुष्योंको ही प्राप्त हुआ करती हैं। हे शत्रुतापन! तीनों लोकके बीच ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो तपस्याके जरिये प्राप्त न होसके, कृतकृत्यता-हीन मनुष्योंके लिये उपभोगका परित्याग अर्थात् वैराग्य ही तपस्याके फल रूपसे निर्दिष्ट हुआ करता है। हे नृपसत्तम! चाहे मनुष्य सुखी हो, वा दुःखी हो, मन तथा बुद्धिके सहारे शास्त्रको देखके लोभ त्याग करे। असन्तोष केवल दुःखका ही हेतु है, लोभसे इन्द्रियोंमें पूर्णरीतिसे भ्रम उत्पन्न हुआ करता है, इसलिये इन्द्रियभ्रमसे लोभी पुरुषोंकी प्रज्ञा अभ्यास रहित विद्याकी भांति होजाती है। जब मनुष्य नष्टबुद्धि होता है, तब उसकी न्याय दृष्टि नहीं रहती अर्थात् उस समयमें वह कर्त्तव्य अकर्त्तव्यके निर्णय करनेमें समर्थ नहीं होता। इसलिये सुखकी समाप्ति होनेपर पुरुष उग्र तपस्या करे। प्राचीन लोग

कहा करते हैं, जो इष्ट है, वही सुख है ; और जो द्वेषयुक्त है, उसहीका नाम दुःख कहा जाता है। तपस्या करनेसे सुख, न करनेसे दुःख होता है, इसलिये कृतकृत्य तपस्याका जिस प्रकार फल हुआ करता है, उसे देखो। मनुष्य शुद्धतासे तपस्या करके सदा शुभ दर्शन वा सब विषयोंको उपभोग करता तथा जनसमाजमें विख्यात होता है ; और फलको इच्छावाला मनुष्य अप्रिय अवमानना तथा अनेक प्रकार दुःख लाभ करते हुए तपस्याका फल परित्याग करके विषमय फल पाता है। धर्म्म, तपस्या और दान विषयमें यथा समय कर्त्तव्यता होनेपर भी स्थिर कार्य्योंमें चिकीर्षा उत्पन्न होती है, नित्यकर्त्तव्य कार्य्यके समय जो पुरुष स्वेच्छापूर्व्वक प्रवृत्त होकर अन्य कर्म्म करता है, वह वैसा पापाचरण करके नरकमें डूबता है। हे नरेन्द्र! जो मनुष्य सुख अथवा दुःखके समय भी निज धर्म्मसे विचलित नहीं होता, उसे ही शास्त्रदर्शी कहा जाता है। हे नरनाथ! जितने समयके बीच धनुषसे छुटा हुआ बाण पृथ्वीपर गिरता है, उतनेही समयमें देखना, चखना, सूंघना, सुनना और स्पर्शेन्द्रियके विषयसम्बन्ध निबन्धनसे अनुराग हुआ करता है, अनन्तर इन्द्रियजनित सुखकी समाप्ति होनेपर तीव्र दुःख उत्पन्न होता है, इसलिये मूढ़ लोग अनुत्तम मोक्ष सुखकी प्रशंसा नहीं करते, तब उस विषयमें यत्न क्यों करेंगे। विषयके आकर तीव्र पीड़ाके हेतु विवेक मात्रमें ही मोक्ष फलके लिये शम दम आदि साधनोंमें प्रवृत्ति हुआ करती है। विवेकी मनुष्यके धर्म्मानुसार निवास करनेपर काम और अर्थ उसे अभिभव करनेमें समर्थ नहीं होते। गृहस्थ लोग प्रारब्ध कर्म्मके अनुसार सम्प्राप्त अयत्न सिद्ध विषयोंके सेवनसे विरत न होवें ; क्यों कि उससे फल-विसस्वाद दर्शनके जरिये पुरुषके प्रबलकी दुर्बलता देखी जाती है। धर्म्मविषयमें पुरुषार्थकी प्रबलता दीखती है ; इसलिये यत्नके अनुसार प्राप्त विषयोंका सम्भोग ही निज कर्म्म है, मेरी ऐसी ही विवेचना होती है। माननीय सत्कुलमें उत्पन्न सदा शास्त्र देखनेवाले मनुष्य जिन कार्य्योंको करते हैं, धर्म्मरहित मूढ़चित्तवाले मनुष्य उसे कदापि सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं होते। जब कि मनुष्योंके क्रियमाण कर्म्म विनष्ट हुआ करते हैं, तब उन्हें तपस्याके अतिरिक्त दूसरा कर्त्तव्य कर्म्म और कुछ भी नहीं है। हे महाराज! इसलिये मनुष्य यज्ञादि कर्म्म करनेके लिये निपुणताके सहित निज-धर्म्ममें स्थित होके स्थिर बुद्धिवाला होवे। जैसे सब नद नदी समुद्रमें जाके निवास करती हैं, वैसे ही सब आश्रमोंके मनुष्य गृहस्थके अवलम्बसे निवास किया करते हैं।

२९५ अध्याय समाप्त।

जनक बोले, हे महर्षि! कृष्ण, धूम्र, नीला, लाल, पीला और सफेद इन छः प्रकारके वर्णोंके बीच किस प्रकार स्वाभाविक वर्णोंसे किन किन वर्णोंमें अधिकता उत्पन्न होती है, इसे ही मैं जाननेकी इच्छा करता हूं। हे वक्तृवर! इसलिये आप उस विषयकी वर्णन करिये ; सतोगुणप्रधान ब्राह्मणोंका अपत्य सतोगुणनिष्ठ ही हुआ करता है। ऐसी जनश्रुति है, कि मनुष्य पुत्ररूपसे स्वयं उत्पन्न होता है, परन्तु क्या कारण है, कि ब्राह्मणोंसे उत्पन्न हुए सन्तान क्षत्रिय आदि जाति विशेषके धर्म्मको ग्रहण करते हैं।

पराशर मुनि बोले, आपने जो कहा वह यथार्थ है, जो जिससे उत्पन्न होता है, वह उस-हीके रूप समान हुआ करता है, परन्तु तपस्याके अपकर्षसे जातिविशेषके धर्म्मको ग्रहण करते हैं। पवित्र वीर्य्य और पवित्र क्षेत्रसे जिसकी उत्पत्ति होती है, वह अवश्य ही पवित्र होता है। और

और लोकमेंसे एककी हीनता होनेसे सम्भव है, उससे उत्पन्न हुए मनुष्य अपकृष्ट रूपसे उत्पन्न होते हैं। हे राजन्! धर्म्म जाननेवाले पुरुष ऐसाही जानते हैं, कि लोकस्रष्टा प्रजापतिके मुख, बाहु, उरु और दोनों चरणोंसे मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। हे तात! उसमेंसे ब्राह्मण लोग प्रजापतिके मुखसे, क्षत्रिय बाहु, वैश्य उरु और परिचारक शूद्र लोग पांवसे उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। हे पुरुषप्रवर! ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंकी जो उत्पत्तिका विषय निर्णीत है, इनसे अतिरिक्त जो सब दूसरी जाति हैं, वे सङ्करज हैं। हे नरनाथ! उक्त चारों वर्णोंके परस्पर अनुलोम और विलोम परिग्रहसे क्षत्रिय, अतिरथ अम्बष्ट उग्र, वैदेहक, श्वपाक, पुक्कस, तेन, निषाद, सूत, मागध, अयोग, करण व्रात्य और चाण्डाल जाति उत्पन्न होती है।

जनक बोले, हे मुनिसत्तम! एकमात्र प्रजापतिसे उत्पन्न हुए मनुष्योंमें किस प्रकार गोत्रके अनुसार अनेकत्व हुआ करती है। इस लोकमें अनेक भांतिके गोत्र दीखते हैं, इसका क्या कारण है मुनिलोग स्वयोनिसे जिन सन्तानोंको उत्पन्न करते हैं, वेही ब्राह्मण हैं, परन्तु जिस किसी योनिमें जिन सब सन्तानोंको उत्पन्न किया है, उन लोगोंका ब्राह्मणत्व किस प्रकारसे हुआ; जो लोग शुद्ध योनिसे उत्पन्न होते हैं, वेही पवित्र हैं, और जो लोग विरुद्ध योनिसे जन्मे हैं, वेही निकृष्ट हैं। काक्षीवानके जरिये शूद्रागर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रोंने किस प्रकार ब्राह्मणत्व लाभ किया था।

पराशरमुनि बोले, हे राजन्! तपस्याके सहारे जो आत्माका ध्यान किया करते हैं, उन महात्माओंकी निकृष्ट जन्मके जरिये जो उत्पत्ति होती है वह कदापि ग्राह्य नहीं हैं। हे राजन्! मुनियोंने जिस किसी योनिसेही पुत्रोंको उत्पन्न करके निज तपोबलसे उसका ऋषित्व विधान किया है। हे विदेहराज! पहले मेरे पितामह कश्यप गोत्रमें उत्पन्न ऋष्यशृङ्ग, वेद, ताण्ड्य, कृप, काक्षीवान, कमठ आदि मुनि लोग यवक्रीत वल्कवर द्रोण, आयु, मतङ्ग, दत्त, द्रुपद और मात्स्यआदि मनुष्य तपस्याके अवलम्बसे निज प्रकृतिको प्राप्त हुए थे। ये सब वेदवित् पुरुष इन्द्रिय विजय और तपस्याके जरिये धर्म्म मर्य्यादा रक्षक कहके प्रसिद्ध हैं। हे राजन्! पहले चार ही मूल गोत्र उत्पन्न हुए थे, अंगिरा, कश्यप, वसिष्ठ और भृगु, येही उक्त चारों मूल गोत्रोंके प्रवर्त्तक हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे सब गोत्र कर्मसे उत्पन्न अर्थात् परमात्मासे कर्म्मके निमित्त ही वर्णाश्रम गोत्रकी कल्पना हुई है। तपस्याके जरिये उन सब गोत्रोंके जो सब नाम धय कल्पित होते हैं ऋषि लोग उसे ही ग्रहण किया करते हैं, अर्थात् ऋषियोंसे समुद्दिष्ट यरण विवाह आदि श्रौत स्मार्त्त व्यवहार अवलम्बन करके पृथक् गोत्रोंके नामसे वर्णित हुए हैं।

जनक बोले, हे भगवन्! आप पहले मेरे समीप वर्णोंके विशेष धर्म्म वर्णन करिये, पीछे सामान्य धर्म्मोंका विवरण कहियेगा, आप सब विषयोंको ही वर्णन करनेमें विशेष पारदर्शी हैं।

पराशरमुनि बोले, हे नरपाल! प्रतिग्रह, याजन और अध्यापन, ये ब्राह्मणोंके विशेष धर्म्म हैं, क्षत्रियोंके लिये प्रजापालन ही उत्तम धर्म्म है, कृषि, पशु पालन तथा वाणिज्य वैश्योंके मुख्य धर्म्म है और द्विजोंकी सेवा ही शूद्रोंका धर्म्म है। हे तात नरनाथ! ये सब वर्णोंके विशेष धर्म्म कहे गये, अब मेरे मुखसे विस्तार पूर्व्वक साधारण धर्म्मोंको सुनिये। हे राजन्! अनृशंसता, अहिंसा, अप्रमाद, सम्विभाग, श्राद्ध-धर्म्म, अतिथि, सत्कार, सत्य, क्रोधहीनता, सन्तोष, पवित्रता, सदा, अनुसूयता, आत्मज्ञान और तितिक्षा, ये तेरह धर्म्म सब वर्णों और आश्रमोंमें साधारण हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों वर्णही द्विजाति कहे जाते हैं। हे

राजन्! इसलिये अपर कहे हुए तेरह धर्म्मोंमें उन लोगोंका समान अधिकार है। जैसे ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण स्वकर्म्ममें रत होकर साधु पुरुषोंका आसरा ग्रहण करनेसे उन्नत होते हैं, वैसे ही निषिद्ध कर्म्मोंके अनुष्ठानसे पतित हुआ करते हैं। शूद्र जातिका कोई संस्कार नहीं है, इसीसे निषिद्ध कर्म्मोंके अनुष्ठानसे उसके पतित होनेकी सम्भावना नहीं है। वेद विहित कर्म्मोंमें उसका अधिकार न रहनेसे पहिले कहे हुए तेरह प्रकारके धर्म्म पालनके लिये शूद्रके विषयमें निषेध विधि कुछभी विहित नहीं है। हे महाराज विदेह! वेदज्ञानसे युक्त ब्राह्मण लोग शूद्रको ब्रह्माके समान अर्थात् ब्राह्मण तुल्य कहा करते हैं, परन्तु मैं शूद्रको जगत्‌में प्रधान क्षत्रिय स्वरूप विष्णुरूपसे देखा करता हूं। पहिले कहा गया है, प्रजापति ब्राह्मण और विष्णु क्षत्रिय वर्ण हैं, इसलिये शूद्र वैश्य और क्षत्रिय जन्मके अनन्तर ब्राह्मणत्व लाभ करके विदेह कैवल्य लाभ करता है, यह वैदिक मत है; और मेरे मतमें शूद्र क्षत्रियजन्मके अनन्तर ही ब्राह्मणत्व लाभ करके मोक्षपद पाता है। शूद्र लोग यदि साधुओंके आचरित दम, दान, दया आदिका अनुष्ठान करते हुए काम क्रोध आदि दोषोंको नष्ट करनेकी अभिलाषी होकर मन्त्रपाठ छोड़के पौष्टिकी क्रियाका निर्व्वाह करें, तो उसके लिये दूषित नहीं होते। साधारण लोगोंमें जो जिस प्रकार सदाचार अवलम्बन करते हैं, वे उस ही भांति सुख लाभ करके इस लोक और परलोकमें आनन्दित होते हैं।

जनक बोले, हे महामुनि! कोई कर्म्म और कोई जाति शूद्रको दूषित करती है, अर्थात् अत्यन्त हीन करनेमें समर्थ होती है; उस विषयमें मुझे सन्देह उत्पन्न हुआ है; इसलिये मेरे समीप आपको उस विषयकी व्याख्या करनी उचित है।

पराशरमुनि बोले, हे महाराज! कर्म्म और जाति दोनों ही दोषकारक हैं, इसमें सन्देह नहीं है; इसलिये उस विषयका विशेष वृत्तान्त सुनो। जाति और कार्य्यके जरिये जो कर्म्म दूषित होता है, पुरुष कदाचित उसका आचरण नहीं करता, और जो पुरुष जातिके जरिये दूषित होता है, वह पापयुक्त कर्म्म करनेसे विरत हुआ करता है। जातिके अनुसार प्रधान पुरुष यदि निन्दित कर्म्म करे, तो वह कर्म्म ही उसे दूषित करता है, इसलिये वैसा कर्म्म कदापि उत्तम नहीं है।

जनक बोले, हे द्विजसत्तम! इस लोकमें कौन कर्म्म धर्म्मयुक्त हैं, जिसे सदा अनुष्ठान करनेसे भी सब भूतोंकी हिंसा नहीं होती।

पराशरमुनि बोले, हे महाराज! जो सब अहिंस्र कर्म्म मनुष्योंकी सर्व्वदा रक्षा करते हैं, उस विषयमें तुम मुझसे जो कुछ प्रश्न करते हो, अब उसका उत्तर सुनो। परिव्राजक धर्म्म अवलम्बन कर अग्नि स्पर्श करके जो लोग उदासीन हुए हैं, वे शोकरहित होकर यथाक्रमसे वितर्क विचार, आनन्द और अस्मिता नामक योगभूमिमें आरोहण करके निःश्रेयस कर्म्मपथ अवलोकन करते हैं। वे सब श्रद्धावान् विनयान्वित, दम परायण, अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धिसे युक्त मनुष्य लोग सब कर्म्मोंसे रहित होकर उस स्थानमें गमन किया करते हैं; जहांपर जरा नहीं है। हे राजन्! ब्राह्मण आदि सब वर्ण इस जीव लोकमें पूर्णरीतिसे कर्म्म कार्य्योंको सिद्ध करने सत्य वचन कहने और दारुण अधर्म्मके त्यागनेसे स्वर्गमें जाते हैं, इस विषयमें कुछ भी विचार करना उचित नहीं है।

२९६ अध्याय समाप्त।

पराशरमुनि बोले, हे राजन्! भक्ति हीन पुरुषोंको पिता, सखा, पत्नी और गुरुजन आदि

सेवाका फल दान करनेमें समर्थ नहीं होती, जो अनन्य भक्त होके प्रिय वचन कहा करता है, सब कोई उसके हितकारी और वशीभूत हुआ करते हैं। मनुष्योंके लिये पिता ही परम देवता है, पण्डित लोग पिताको मातासे भी अधिक गौरवशाली कहा करते हैं, और पितासे ज्ञान लाभके कारण उसे परम श्रेष्ठ कहा जाता है; क्योंकि मनुष्य ज्ञान लाभसे इन्द्रिय विषयोंको जीतकर परमपद पाते हैं। जो राजपुत्र रणभूमिमें घायल होके शराग्नि शय्यापर शयन करके जलते हैं, वे देवताओंके भी अत्यन्त दुर्लभ लोकोंको पाके अनायास ही स्वर्गसुख भोग किया करते हैं। हे राजन्! संग्राममें श्रान्त, भीत, शस्त्रहीन रोदन परायण जो भागे जाते हों, रथ घोड़े कवच आदिसे रहित, अनुयोगी, रोगी, याचमान, बालक और बृद्धको किसी प्रकार भी हिंसा करनी उचित नहीं है। और जो क्षत्रिय युद्धमें रथ, घोड़े कवच आदिसे संयुक्त, उद्योगी तथा अपने समान हो, राजा उसे ही आक्रमण करे। ऐसा निश्चय है, कि अपने समान वा विशिष्टके जरिये मरना ही कल्याणकारी है, अत्यन्त हीन, कादर और कृपणसे मारा जाना बहुत ही निन्दित है। हे नरनाथ! पापात्मा पापाचारी और अत्यन्त हीन पुरुषसे जो बध होता है, वही पापयुक्त और नरकका निमित्त कहके निश्चित हुआ है। हे राजन्! मृत्युके मुखसे परित्राण वा जिसकी परमायु शेष हुई है उसे मृत्यु मुखसे आकर्षण करनेमें कोई भी समर्थ नहीं होता। आप्तगणोंके जरिये क्रियमाण अभ्युदय कर्म्म और हिंसामय समस्त कर्म्मोंसे निवृत्त होना उचित है, दूसरेकी परमायुसे अपनी आयु दूषित करनेकी कोई इच्छा न करे। हे तात! मृत्युकी इच्छा करनेवाले गृहस्थ लोग यदि किसी तीर्थमें जीवन परित्याग करें, तो उनकी वह मृत्यु परम उत्तम है। परमायु क्षय होनेसे ही मनुष्य पशुत्वको प्राप्त होता है, यदृच्छा मरणसे किसीकी अकारण मृत्यु होती है। किसीकी अज्ञानमात्रके दूर होनेसे स्वतः सिद्ध मोक्ष फल तीर्थ-मरण आदि कारणसे सिद्ध हुआ करती है। जो पुरुष देह लाभ करके जल प्रवेशादिके जरिये उस शरीरका पशुत्व साधन करता है, वह देहत्यागी मनुष्य फिर दुःख भोगनेके निमित्त वैसा ही शरीर पाता है, पवित्र क्षेत्र तीर्थादिमें भी यदि किसीकी अवैध भावसे मृत्यु हो तो वह मोक्षका पथिक होके भी कुत्सित कार्य्य वशसे देहको त्यागके देहान्तर लाभ किया करता है, उस विषयमें दूसरा कारण और कुछ भी नहीं है। देहधारियोंकी वह यातना देह मोक्ष योग्य रुद्रपिशाचमें आत्महत्या जनित पापको ढोने और दुःख भोग करनेके निमित्त निवास करती है। अध्यात्म विचार करनेवाले विद्वान पुरुष इस चर्म्मसे ढके हुए शरीरको शिरा, स्नायु और हड्डी आदिसे युक्त बिभत्स तथा मलमूत्रसे परिपूरित, पञ्चभूत, दशों इन्द्रिय और वासना-मय विषयोंका स्थान कहा करते हैं। वह शरीर सुन्दरता आदि गुणोंसे हीन होनेपर भी पूर्व्व वासनासे मनुष्यत्वको प्राप्त होता है। यातना शरीर सबके आरम्भकभूतोंके प्रकृतिको प्राप्त होनेपर जीवसे परित्याग किये जानेसे चेत रहित होजाता है, तथा निश्चेष्ट होके पृथ्वीपर गिर पड़ता है। हे विदेहराज! यह शरीर जिस जिस स्थानमें मृत होता है, कर्म्म संयोगसे फिर उस ही स्थानमें जन्म ग्रहण करता है, परन्तु जो शरीर पहिले परित्यक्त होता है, कर्म्म फल भोगनेके निमित्त पुनर्व्वार उत्पन्न हुआ शरीर तत्सजातीयरूपसे नहीं दीखता। हे राजन्! जबतक पाप नष्ट नहीं होता, भूतात्मा रुद्रपिशाच तबतक निज स्वरूपसे प्रकट नहीं होता। महान् अम्बुधरकी भांति आकाशमण्डलमें भ्रमण करता है।

अन्तमें उपाधि जनित कलुषता छूटनेपर स्नान पावे फिर जन्मता है। मनही आत्मा श्रेष्ठ और इन्द्रियोंसे मन उत्तम है। हे राजन्! जो सब अनेक प्रकारके जीव हैं, उनमेंसे जङ्गम जीव श्रेष्ठ हैं, और जङ्गम जीवोंके बीच दो पांववाले मनुष्य ही परम श्रेष्ठ हैं, दो पांववालोंमें द्विज लोग ही उत्तम हैं। हे राजेन्द्र! द्विजोंके बीच बुद्धिमान पुरुष ही श्रेष्ठ हैं, ज्ञानियोंमें योगी पुरुष और योगियोंके बीच योग ऐश्वर्य्यके दर्पसे रहित मनुष्य गरिष्ठ होते हैं। यह निश्चय है, कि मनुष्योंका मरना जन्मका ही अनुसरण किया करता है, सब लोग गुणोंके अनुसार चयशील कर्म्मोंका अनुष्ठान किया करते हैं। हे राजन्! सूर्य्यके उत्तरायण गमन करनेपर पवित्र नक्षत्र और पवित्र मुहूर्त्तमें जिसकी मृत्यु होती है, वह किसी पुरुषका क्लेश न देकर पापोंको धोके आत्मशक्तिके अनुसार कर्म्म करते हुए कालक्रम मृत्युके जरिये इस लोककी परित्याग करते हैं। विष भक्षण, उद्बन्धन, दाह, दस्युओंके हाथसे मारा जाना और दंष्ट्र पशुओंके जरिये जो मृत्यु होती है। वह प्राकृत मृत्यु कही जाती है। पुण्यशील मनुष्य आधिव्याधियोंसे पीड़ित होके भी ऐसे ही अनेक प्रकारके तथा अन्यान्य दुर्म्मरणकी कामना नहीं करते। हे नृपति! जो लोग उत्तरायणमें प्राणत्याग करते हैं, उन पुण्यवान मनुष्योंका प्राण सूर्य्यमण्डलको भेद कर ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। मध्यम पुण्यशालि मनुष्योंका प्राण मनुष्य लोकमें प्रतिष्ठा लाभ करता है, और पापी लोगोंका प्राण अधोलोकमें गमन करता है। हे राजन्! जो मनुष्य अज्ञानसे आवृत वा प्रेरित होकर अत्यन्त दारुण घोर कर्म्मोंको किया करता है, उस पुरुषको अज्ञानके समान कोई भी शत्रु नहीं है। हे राजपुत्र! जिसके प्रबोधके लिये वेद वा धर्म्मके अनुसार लोग वृद्धोंकी उपासना करनेमें प्रवृत्त होते हैं वह अज्ञानरूप शत्रु-यत्न साध्य प्रज्ञाशरके जरिये उच्छिन्न होनेसे ही नष्ट हो जाता है। धर्म्मकी इच्छा करनेवाला मनुष्य ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करके वेदाध्ययन तपस्याके जरिये यज्ञ निर्व्वाह तथा यथाशक्ति पञ्चइन्द्रियोंको निग्रह करके निज वंश स्थापित करते हुए मोक्षार्थी होकर वनमें गमन करे। हे तात! मनुष्य उपभोगहीन आत्माको कदापि अवसन्न न करे, चाण्डालके घरमें जन्म होनेपर भी मनुष्य जीवनको सब प्रकारसे उत्तम समझे। हे पृथ्वीनाथ! आत्मा जिसे पाके शुभ लक्षणयुक्त कर्म्मोंके जरिये अपना परित्राण करनेमें समर्थ होता है, वह मनुष्य जीवन ही प्रथम योनि है। मनुष्य लोग श्रुतिप्रमाण्य दर्शन निबन्धनसे "किस प्रकार इस योनिसे च्युत न होऊं" इसी ही सोचके सदा धर्म्मका अनुष्ठान करते हैं। जो मनुष्य अत्यन्त दुर्ल्लभ जीवन पाके इससे द्वेष करता है, वह धर्म्मावमन्ता कामात्मा पुरुष कामसे वञ्चित हुआ करता है। हे तात! जो पुरुष विरक्त होकर विषयोंकी ओर न देखकर प्रीतियुक्त नेत्रसे स्नेह सम्वर्द्धनीय दीप ककी भांति जीवोंको देखते हैं, और धैर्य्य वचन, अन्नदान तथा प्रिय वाक्यसे सबके दुःख सुखमें मिलित होते हैं, वे परलोकमें पूजित हुआ करते हैं। हे भूपति! सरस्वती, नैमिषक्षेत्र, पुष्कर अथवा पृथ्वीके बीच कुरुक्षेत्र आदि जो सब पवित्र क्षेत्र हैं, वहांपर दान, विषयासक्तिका परित्याग शान्तमूर्त्ति धारण तथा जल वा तपस्याके जरिये शरीरको शोधन करना उचित है। घरमें जिसका प्राण निकल जाता है, उसके मृत शरीरको जलाना ही उत्तम है, इसलिये मृत्यु शरीरको यानके जरिये श्मशानमें लेजाकर शौचविधिके अनुसार दाह करना ही योग्य है इष्टि, पुष्टि, यजन, याजन, दान और पुण्य कर्म्मोंके अनुष्ठान तथा शक्तिके अनुसार पितृ लोकके उद्देश्यसे जो कुछ विहित है, मनुष्य अपने ही लिये वह सब क्रिया

करता है। हे नरनाथ! आकृष्टकर्म्मा मनुष्योंके कल्याणके निमित्त ही धर्म्म शास्त्र, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, ये षड़ङ्ग और सब वेद विहित हुए हैं।

भीष्म बोले, हे महाराज! महानुभाव पराशर मुनिने पहिले समयमें कल्याणके निमित्त विदेहराजके निकट इन सब विषयोंको कहा था।

२९७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, मिथिलाधिपतिने धर्म्म विषयसे कृत निश्चय होकर महात्मा पराशर मुनिसे फिर प्रश्न किया। जनक बोले, हे ब्रह्मन्! कल्याण साधन क्या है, गति किसे कहते हैं। कौन कर्म्म करनेसे वह नष्ट नहीं होता और कहां जानेसे मनुष्यको संसारमें फिर नहीं आना पड़ता। हे महाबुद्धिमान आप मुझसे वही कहिये।

पराशर मुनि बोले, जो कुछ कल्याणके साधन हैं, आसक्तिहीनता ही उसका मूल है, ज्ञान ही परम तपस्या है, और सत्पात्रमें दानका फल कदापि विनष्ट नहीं होता। जब मनुष्य अधर्म्ममय पाशको काटके धर्म्म कार्य्यमें अनुरक्त होता है, उस समय वह सब भूतोंको अभय दान करके सिद्ध लाभ करता है। जो लोग सहस्रों गऊ और सैकड़ों घोड़े दान करते तथा सब भूतोंको अभय दान करते हैं, अभय सदा उनके सब ओर निवास करती है, अर्थात् उसे कभी किसी पुरुषसे भय नहीं होता। बुद्धिमान मनुष्य विषयके बीच निवास करके भी उसमें लिप्त नहीं होते और दुर्बुद्धि पुरुष असत् विषयोंमें ही आसक्त हुआ करते हैं। जैसे पय पुष्करपत्रमें संश्लिष्ट नहीं होता, वैसे ही अधर्म्म कभी बुद्धिमान् पुरुषको स्पर्श नहीं कर सकता। समस्त पाप अप्राप्त पुरुषको ही जतुकाष्ठकी भांति आलिङ्गन किया करता है। कभी अधर्म्म फल दानात्मिका क्रियापेक्षी होकर कर्त्ताको परित्याग नहीं करता, कर्त्तृत्वाभिमानी मनुष्य यथा समयमें अधर्म्मका फल पाता है। आत्माप्रत्ययदर्शी कृतात्मा मनुष्य कदापि कर्म्म फलके जरिये क्षोभित नहीं होते; बुद्धि कर्म्म और इन्द्रिय सम्बन्धसे प्रमत्त होकर जो पुरुष अपनी बुरी चेष्टाको नहीं समझ सकता, वह शुभाशुभ विषयोंमें आसक्तचित्त होकर महत् भय पाता है। जो लोग सदा पूर्ण रूपसे राग रहित होके क्रोधको जीतते हैं, वह विषयोंमें लिप्त रहके भी पापयुक्त नहीं होते। जो विषयोंमें आसक्त रहके मर्य्यादारूपी नदीमें धर्म्मसेतु बांधते हैं, वे किसी प्रकारभी अवसन्न नहीं होते, बल्कि प्रति दिन उनके तपवृद्धिकी परिपुष्टि होती है। हे राजश्रेष्ठ! जैसे विशुद्धमणि नियमके अनुसार सूर्य्यके तेजको ग्रहण करती है, वैसे ही जीव योगके सहारे ब्रह्मभाव लाभ किया करता है। जैसे तिलोंका स्नेह पृथक् पृथक् पुष्प संश्रयसे अत्यन्त रमणीय होता है, वैसे ही आत्मध्यान परायण मनुष्योंमें बार बार वासनाभ्यास निबन्धनसे सतोगुण उत्पन्न हुआ करता है।

जब मनुष्य सुरपुरमें वास करनेकी अभिलाष करता है, तब पत्नी पुत्र आदि परिवार और अतुल सम्पत्ति अनेक प्रकारकी सत्क्रिया तथा निज पद परित्याग किया करता है; उस समय उसकी बुद्धि शब्द स्पर्श आदि विषयोंसे पृथक् होती है। हे राजन्! जिस मनुष्यकी बुद्धि विषयोंमें लिप्त होती है, वह कदापि आत्महित समझनेमें समर्थ नहीं होता। जैसे मछली वंशीमें मांस देखकर उसमें फंस जाती है, वैसे ही मनुष्य भी सर्व्वभाव अनुगत मानसके जरिये आकृष्ट हुआ करते हैं, देह इन्द्रिय आदि संघातकी भांति स्त्री-पुत्र पशु आदि परस्पर उपकारक होके भी कदली गर्भवत् निःसार हैं; जैसे नौका जलमें डूबती है, वैसे

ही ये भी विनष्ट हुआ करते हैं। पुरुषके पक्षमें धर्मके समयका कुछ भी निश्चय नहीं है और "मनुष्यने धर्म नहीं किया है" इसके लिये मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती। जब कि मनुष्य मृत्युमुखमें ही पड़ा हुआ है, तब उसे सदा धर्माचरण करना ही शोभा देता है। जैसे अन्धा अभ्यासके सहारे निज गृहमें गमन करता है, वैसे ही प्राज्ञ पुरुष अभ्यास और गुरुत्व युक्तिके जरिये अगोचर पथमें गमन किया करते हैं। जन्मका निमित्त मरण है और मरणका अवलम्ब जन्म वर्णित हुआ है; अविद्वान् मनुष्य मोक्ष धर्ममें बद्ध होकर चक्रके समान भ्रमण किया करता है और जो लोग ज्ञान पथसे गमन करते हैं, वेही इस लोकमें सुखी होते हैं। अग्निहोत्र आदि कर्मके फेलाव दुःखदायक मात्र हैं। यज्ञादि कर्म्मोंसे आत्माको कुछ फल नहीं मिलता, पण्डित लोग विषयत्यागको ही आत्माका हितकर समझते हैं। जैसे मृणाल निज शरीरमें लगी हुए कीचड़को शीघ्र परित्याग करता है, पुरुषका शरीर भी उस ही प्रकार मनके जरिये शीघ्र ही परित्यक्त होता है। मन आत्माको यागविषयमें उत्सुक करता है, अनन्तर वह आत्मा योगी होकर मनको परम पदमें लीन करता है। जब मन योगसिद्ध होता है, तब वह उस सर्व्व उपाधिरहित आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ होता है। जो पुरुष दूसरेके निमित्त प्रवर्त्तमान होकर उसके कार्य्यको अपना कार्य्य समझकर अभिमान करता है, वह इन्द्रियविषयोंमें आसक्त मनुष्य योगरूपी स्वकार्य्यसे सब भांतिसे भ्रष्ट हुआ करता है। योगभ्रष्ट मनुष्य अधोलोकमें तिर्य्यग् योनिको प्राप्त होते हैं और बुद्धिमान् तथा उनसे इतर लोगोंकी आत्मा सुकृत कर्म्मोंके जरिये स्वर्गमें जाके इन्द्रलोक लाभ किया करती हैं। जैसे पके हुए मट्टीके पात्रमें द्रव-वस्तु जल आदि नहीं गिरते, वैसे ही जिस शरीरके जरिये सदा तपस्याकी आलोचना की जाती है, वह लिङ्ग शरीर ब्रह्मलोक पर्य्यन्त सब लोकोंमें व्याप्त हुआ करता है, किसी स्थानसे च्युत नहीं होता। जो शरीर प्रकाशकी भांति सब विषयोंमें व्याप्त हुआ करता है, उससे निःसन्देह कभी विषयभोग नहीं होता; और जो शरीर भोग त्याग करता है, वह भोग करनेमें समर्थ होता है। शिश्नोदरपरायण जन्मान्ध मनुष्य जैसे अन्धकारसे परिपूरित होकर मार्ग नहीं देख सकता, वैसे ही आवृतात्मा जीव छिपे हुए निज रूपको नहीं जान सकता। जैसे वणिक् समुद्रयात्राके सहारे मूल धनके अनुसार धनलाभ करता है, वैसेही इस संसार-सागरमें कर्म्मविज्ञानके अनुसार जीवकी गति हुआ करती है। जैसे सांप वायुको ग्रास करता है वैसे ही इस दिन रात्रिमय जीवलोकमें मृत्यु, जरा रूपसे तरती हुई जीवोंको ग्रास किया करती है।

जीव जन्म लेके अपने किये हुए कर्म्मोंको भोग किया करता है, जो कुछ प्रिय और अप्रिय कोई बिना कर्म्मके उन्हें नहीं पासकता। मनुष्य सोया हो, अथवा चलता हो, बैठा हो, वा विषयोंमें प्रवृत्त ही रहे, शुभाशुभ कर्म्म सदा ही उसके निकटवर्त्ती होते हैं। किसी प्रकार समुद्रके दूसरे किनारे पहुंचके फिर वहांसे लौट नहीं सकता; परन्तु उसके पक्षमें समुद्रमें विनिपात ही दुर्लभ बोध होता है। महासागरमें खेवनेवालेके अभिप्रायके अनुसार जैसे तन्तुके सहारे नौका चलती है, वैसे ही मनके भावताभिनिवेशके जरिये शरीर चालित हुआ करता है। जैसे सब ओरसे नदियें आकर समुद्रमें मिलती हैं; वैसे ही योगके सहारे मन आद्याप्रकृतिका अवलम्बन करता है। जैसे बालूके गृह जलसे नष्ट होजाते हैं, वैसे ही अनेक प्रकार स्नेहपाशके जरिये अज्ञान वशसे संसक्त चित्तवाले मनुष्य विषय हुआ करते हैं। देहनिष्ट नाम और रूपको आत्म धर्म्मरूपसे

मानमेवाले देहधारी यदि ज्ञानपथसे गमन करें, तो उन्हें इस लोक और परलोकमें परम सुख प्राप्त होता है। अग्निहोत्र आदि सब कर्म्म केवल क्लेश देनेवाले हैं; संक्षिप्त सन्न्यास धर्म्म ही अत्यन्त सुखदायक है; यज्ञ आदि कर्म्मोंसे आत्माका कुछ उपकार नहीं होता, इसलिये वे सब केवल परार्थ हैं; पण्डित लोग वैराग्यको ही आत्म-हितकर जानते हैं। सङ्कल्पजनित मित्रवर्ग कारणात्मक स्वजनसमूह भार्य्या, पुत्र और दास दासी सब कोई केवल निज अर्थ उपभोग करते हैं। माता वा पिता किसीका भी पारलौकिक हित नहीं कर सकते। जो मनुष्य दानको ही स्वर्ग मार्गमें जानेकी सीढ़ी करता है, वह निज कर्म्म फलोंको भोग किया करता है। माता, पुत्र पिता, भाई, भार्य्या और मित्रलोग देहचय निनादभूत श्वास-मुद्रारेखा विशेष हैं; इससे स्वर्गको भांति निज अदृष्ट ही अभ्युदयका हेतु है। जीव पूर्व्वजन्मकृत अपने शुभाशुभ कर्म्मोंको प्राप्त करनेपर अन्तरात्मा कर्म्मफल दान करनेके निमित्त बुद्धिको प्रेरणा करता है। जो उद्योग अवलम्बन करके सब सहाय संग्रह करते हैं, उनका कोई कार्य्य कदाचित् अवसन्न नहीं होता, जैसे किरण सूर्य्यको कभी परित्याग नहीं करती, वैसे ही एकाग्रचित्त योगयुक्त, शूर, धीर और विपश्चित पुरुषको श्री कदापि नहीं त्यागती। अनिन्द्-नीय स्वभावसे युक्त मनुष्य आस्तिक्य और व्यवसाय बलसे उपाय वा गर्व्वहीनताके कारण बुद्धिके सहारे जिस कार्य्यको आरम्भ करते हैं, वह कदापि अवसन्न नहीं होता। जीवपूर्व्वज-न्ममें यत्नपूर्व्वक जिन शुभाशुभ कर्म्मोंको करता है, जननीजठरमें प्रविष्ट होनेके समयसे ही अपने किये हुए वेही सब शुभाशुभ कर्म्म प्राप्त हुआ करते हैं, और जैसे वायु करपत्र विदारित समस्त चारणोंकी स्थानान्तरित करता है, वैसे ही अपरिहार्य्य मृत्यु भी कालक्रमसे जीवोंको विनाश मुखमें डालती है, इसलिये यदृच्छा प्राप्त अन्न आदिके जरिये जीवन धारण करते हुए सबका ही मोक्षके निमित्त यत्न करना चाहिये। मनुष्य अपने किये हुए शुभाशुभ कर्म्मोंके जरिये पूर्व्वजन्मके कर्म्मोंसे प्राप्त हुए निज कुलके अनुसार सुन्दरताई और परिग्रह सन्तान आदि सद्वंशसम्भूति तथा द्रव्यसमृद्धि सञ्चय लाभ किया करता है।

भीष्म बोले, हे राजन्! पण्डित प्रवर परा-शर मुनिने धर्म्म जाननेवालोंमें अग्रगण्य राजा जनकसे जब ऐसी कथा कही, तब उसे सुनके वह परम आनन्दित हुए।

२८८ अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! लोकके बीच विद्वान् मनुष्य सत्य, दम, क्षमा और बुद्धिकी प्रशंसा किया करते हैं, इस विष-यमें आपका क्या मत है?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस विषयमें मैं तुम्हारे समीप हंस और साध्य लोगोंके सम्वाद-युक्त प्राचीन इतिहास कहता हूं, जन्म रहित शाश्वत प्रजापति सुवर्णमय हंस होकर तीनों लोकमें भ्रमण करने लगे, अनन्तर उन्होंने सिद्धोंके निकट गमन किया।

साध्योंने पक्षिश्रेष्ठ हंसको निकटमें आया हुआ देखके कहा, हे द्विजवर! हम लोग देवताओंके अन्तर्गत साध्यगण तुमसे प्रश्न करते हैं, तुम मोक्षवत् हो, इसलिये मोक्ष धर्म्म क्या है? उसे ही तुम हमसे कहो। हे महात्मन् पतत्रिन्! हमने सुना है, कि तुम धीरवादी पण्डित हो, तुम्हारी साधुताकी बड़ाई सर्व्वत्र सुनाई देती है; इससे तुम किसे श्रेष्ठ समझते हो और तुम्हारा मन किस विषयमें रत है। हे विहङ्गेश्वर! कार्य्योंके बीच जिस किसी एक कार्य्यको तुम श्रेष्ठ जानो, वही हम लोगोंके समीप

उपदेश करो। हे विहगेन्द्र! इस लोकमें जिसका अनुष्ठान करनेसे सब बन्धनोंसे शीघ्र ही छुटकारा होता है। हमको वही करना उचित है।

हंस बोला, हे अमृत पीनेवाले देवगण! मैंने यही सुना है, कि स्वधर्म्माचरण, बाह्य इन्द्रियोंका निग्रह, यथार्थ वचन और चित्तको जीतना योग्य है; हृदयकी ग्रन्थिराग आदिको मोचन करके हर्ष और विषादको वशीभूत करना उचित है। किसीके मर्म्म छेदक वा निठुरभाषी होना उचित नहीं। नीच पुरुषोंसे शास्त्र ग्रहण करना अयोग्य है, लोकमें जिस वचनसे दूसरे लोग व्याकुल हों, उस अकल्याण कर नरकविधायक वचनको न कहना चाहिये। जो वाक्यरूपी सब बाण शरीरसे बाहर होते हैं, उससे लोग घायल होके रात दिन शोकार्त्त हुआ करते हैं; वे सब वाक्यबाण दूसरेके मर्म्म-स्थलके अतिरिक्त अन्य स्थानमें नहीं लगते; इसलिये पण्डित पुरुषोंको उचित है, कि वैसे वाक्यबाणोंको दूसरेके ऊपर प्रयोग न करें दूसरे लोग यदि उन और पुरुषोंको अतिवाद बाणके जरिये अत्यन्त विद्ध करें, तो उन्हें शान्ति रस अवलम्बन करना उचित है। जो लोग दूसरेसे क्रुद्ध होनेपर भी उसपर रोष प्रकाश नहीं करते, बल्कि हर्षित होते हैं, वे दूसरोंके सुकृतका ग्रहण किया करते हैं, जो अधि-क्षेपकारी पुरुष अभिनिवेशके कारण अप्रिय प्रज्वलित क्रोधका निग्रह करते हैं, वे दुष्टता-रहित, असूयाहीन प्रसन्न चित्तवाले मनुष्य दूसरोंसे सुकृत ग्रहण किया करते हैं। कोई मेरे विषयमें आक्रोश प्रकाश करे, तो मैं कुछ भी नहीं कहता और मेरे ऊपर प्रहार करे, तो भी मैं सदा उसे क्षमा किया करता हूं; ऐसा आचरण ही श्रेष्ठ है, क्योंकि आर्य्य-लोग सत्य, सरलता, अनृशंसता और क्षमाको प्रशंसा किया करते हैं। वेदाधिगमका फल सत्य है, सत्यका फल दम अर्थात् बाह्य इन्द्रि-योंका निग्रह है, दमका फल मोक्ष है, यह सब शास्त्रोंमें वर्णित हुआ है। जो लोग वाक्य, मन, क्रोध, विधित्सा उदर और उपस्थ इन सब इन्द्रियोंके प्रबल वेगको सहनेमें समर्थ होते हैं, मैं उन्हें ही ब्रह्मिष्ठमुनि समझता हूं। क्रोधी पुरुषोंसे बिना क्रोधवाले, क्षमाहीनोंसे क्षमावान् पुरुष, कुकर्म्मियोंसे सदाचारयुक्त मनुष्य और मूर्खोंसे ज्ञानी लोग ही प्रशंसनीय हुआ करते हैं। पुरुष यदि दूसरेसे क्रोधित होने पर भी रोष प्रकाश न करके उसे क्षमा करे, तो उस तितिक्षु पुरुषकी क्षमा आक्रोशकारी पुरुषको जला देती है और तितिक्षु पुरुष भी आक्रोश करनेवालेके सुकृतको ग्रहण करता है। यदि कोई दूसरेके जरिये अत्यन्त निन्दित होने पर भी धैर्य्य अवलम्बन करके उसके विषयमें वा अप्रिय वचन प्रयोग न करे, अथवा घायल होके भी मारनेवालेके ऊपर प्रहार न करे, और "उस मारनेवालेका पाप हो" ऐसी इच्छा भी न करे, तो वह इस लोकमें सदा देवताओंके स्पृहणीय हुआ करता है। कोई पुरुष अपने समान वा अपनेसे उत्कृष्ट वा निकृष्ट लोगोंके निकट अवमानित होनेपर उनपर क्रोध न करके क्षमा करे तो उसे सिद्धि लाभ हुआ करती है, मैं अध्ययनकी समाप्ति होने पर भी सदा आचा-र्य्यकी उपासना किया करता हूं, किसी विषयमें मेरी तृष्णा वा रोष वर्द्धित नहीं होता। मैं लिप्समान होकर अधर्म्म पथमें गमन नहीं करता और विषय वासनासे देवताओंके निकट कुछ प्रार्थना भी नहीं करता। कोई मुझे शाप दे, तो मैं उसे प्रतिशाप न देकर शान्ति अवल-म्बन किया करता हूं; क्यों कि इस लोकमें दम ही मुक्तिका द्वार है, मैंने ऐसा ही निश्चय किया है। हे साध्यगण! मैंने तुम्हारे समीप इस गुप्त विषयको वर्णन किया, अब तुम लोग विचार करके देखो, मनुष्य जन्मसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। बुद्धिमान लोग धीरज धरके

समयकी प्रतीक्षा करते हुए पापहीन होकर बादलसे मुक्त हुए चन्द्रमाकी भांति सिद्धि लाभ करते हैं । जो सबके पूजनीय हैं, वेही ब्रह्माण्ड-मण्डपके स्तम्भ स्वरूप हुआ करते हैं और सब लोग जिससे प्रसन्न वचन कहते हैं, उस संयतात्माको देवत्व प्राप्ति होती है । स्पर्द्धावान् पुरुष जिस प्रकार मनुष्योंके दोषोंको प्रकाश करनेके अभिलाषी होते हैं, उस प्रकार उनके कल्याणकर गुणोंको प्रकाशित करनेको अभिलाष नहीं करते । जिनका वचन, मन सब प्रकार ही असत् मार्गसे निवृत्त और सदा सावहित है, वे वेद, तपस्या और त्याग, यह सब प्राप्त करते हैं । विद्वान् पुरुष मूर्खोंसे आकृष्ट वा अवमानित होने पर उन्हें मूर्ख जानके उनकी निन्दा न करें, अनुरोधसे अप्रशंसित पुरुषकी प्रशंसा न करे और समान लोगोंकी हिंसा भी न करनी चाहिये । पण्डित लोग दूसरेके जरिये अपना अवमाननासे अमृतकी भांति सन्तुष्ट होकर सुखकी नींद सोते हैं; परन्तु अवमानना करनेवाला असन्तुष्ट होकर शीघ्र विनष्ट होता है । क्रोधी पुरुष यज्ञ, दान तपस्या और होम आदि जो कुछ कर्म्म करता है, सूर्य्यपुत्र शमन उसके सब कर्म्मोंको हरण किया करता है, इससे क्रोधी लोगोंके सब परिश्रम निष्फल होजाते हैं ।

हे सुरसत्तमगण ! जिसके उपस्थ, उदर हाथ और वाक्य, ये चारों द्वार उत्तम रीतिसे रक्षित होते हैं, वेही धार्म्मिक हैं । जो लोग यत्न पूर्व्वक सत्य, सरलता, दम, अनृशंसता, धृति और तितिक्षा, इन सबकी सेवा करते हैं, तथा जो पराये वित्तकी वासना न करके निर्ज्जनमें वेदाध्ययनमें प्रवृत्त होते हैं, वेही ऊर्द्ध गति लाभ किया करते हैं । जैसे गऊका बछड़ा चारों मातृस्तनोंका अनुगामी होता है, वैसे ही मैं सत्य आदिका अनुसरण किया करता हूं ; क्योंकि कहीं पर सत्यसे अत्यन्त पवित्र और कुछ भी नहीं है, यह मुझे विशेष रूपसे मालूम है । मैं सर्व्वत्र भ्रमण करके मनुष्य और देवताओंसे यही कहा करता हूं, कि समुद्रगन्तु नौकाकी भांति सत्य स्वर्गका सोपान है । पुरुष जैसे लोगोंके सहवासमें रहताहै, जैसे लोगोंको उपासना करता और जैसा होनेकी अभिलाष करता है, वैसा ही हुआ करता है । जो जिस प्रकारके पुरुषकी सेवा करता है, वह उसहीके वशीभूत होता है । जैसे वस्त्र वर्णके वशमें होता है, वैसेही कोई साधु तपस्वीकी सेवा करनेसे उस तपस्वीके वशवर्त्ती होता है और असत् तस्करकी सेवा करनेसे उस तस्करके अधीन होता है । देवता लोग साधुओंके सङ्ग ही सर्व्वदा सम्भाषण किया करते हैं, मनुष्य भोगका विनाशी जानके देखनेकी भी इच्छा नहीं करते ; क्योंकि चन्द्रमा वा वायुका समभाव सदा सम्भव नहीं रहता, भोगवशसे उनकी भी उपचय और अपचय हुआ करती है इसलिये जो सब विषयोंके उच्चावच मालूम करते हैं, वेही सब जान सकते हैं । अन्तर्य्यामी पुरुषके राग द्वेषसे रहित होकर निवास करने पर सन्मार्गमें स्थित उस अन्तर्य्यामी पुरुषके जरिये ही देवता लोग तृप्त होते हैं । जो लोग सदा शिश्न और उदरके कार्य्यमें रत रहते हैं, जो सदा चोरीवृत्ति करते हैं, तथा जो सर्व्वदा कठोर वचन कहते हैं, उनके प्रायश्चित्त आदिसे निष्पाप होने पर देवता लोग उन्हें पापरहित समझके भी दूरसे ही परित्याग करते हैं । नीचबुद्धि, सर्व्वभक्षी और पाप कर्म्म करनेवाले नरकगामीसे देवता लोग कदापि परितुष्ट नहीं होते । परन्तु जो लोग सत्यव्रती कृतज्ञ और धार्म्मिक हैं, देवता लोग उनके सहित समभावसे सुखसेवन किया करते हैं । पण्डित लोग कहा करते हैं, कि मिथ्या न कहके चुप रहना ही कल्याणकारी है यह प्रथम कल्प है, द्वितीय कल्प यदि कहना पड़े, तो सत्य ही कहे । तीसरे कल्पमें धर्म्मवाक्य

कहना उचित है। यौथे कल्पमें प्रिय वचन कहना सर्व्वांशमें कल्याणकारी है।

साध्य लोग बोले, यह लोक किसके जरिये आहत हुआ करता है, किस कारण प्रकाश प्राप्त नहीं होता। किस निमित्त मित्रता छूटती है और स्वर्ग किस लिये नहीं मिलता?

हंस बोला, यह लोक अज्ञानसे परिपूरित होरहा है, मत्सरतासे प्रकाश प्राप्त नहीं होता, लोभसे मित्रता छूटती है, संसर्ग निबन्धनसे लोग स्वर्गमें गमन नहीं करते।

साध्य लोग बोले, ब्राह्मणोंके बीच अकेला रहके भी कौन पुरुष रमण करता है; कौन पुरुष अकेला होके भी बहुतोंके सङ्ग आनन्द अनुभव किया करता है। इन लोगोंके बीच कौन पुरुष निर्व्वल होके भी बलवान और कौन पुरुष कलहानभिज्ञ है।

हंस बोला, ब्राह्मणोंके बीच जो बुद्धिमान हैं, वह अकेले ही रमण किया करते हैं बुद्धिमान पुरुष अकेला ही अनेक लोगोंके सङ्ग आनन्द अनुभव करता है। इन लोगोंके बीच जो बुद्धिमान हैं, वे दुर्व्वल होनेपर भी बलवान तथा जो प्राज्ञ हैं, वेही कलहानभिज्ञ हैं।

साध्य लोग बोले, ब्राह्मणोंमें देवतापन क्या है; साधुता किसे कहते हैं। इनमें असाधुता और मनुष्यता किस प्रकार कही गई है।

हंस बोला, ब्राह्मणोंमें स्वाध्याय ही देवतापन है, व्रतको साधुता कहते हैं, इसके परिवादको असाधुता और मरना मनुष्यत्व कहता है।

भीष्म बोले, साध्योंका यह सम्वाद श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ है, स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरसे शुभाशुभ कर्म्मोंकी उत्पत्ति हुआ करती है और सत्तामात्रको सत्य कहते हैं।

२९९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आप धर्म्मज्ञ हैं, सब विषय ही आपको विदित है। हे कुरुसत्तम! सांख्य और योगमें क्या विशेषता है, आपको मेरे समीप उसे वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, शत्रुकर्षण सांख्य मतावलम्बी मनुष्य सांख्य शास्त्रकी प्रशंसा किया करते हैं, योगशास्त्रावलम्बी द्विजाति मनीषि लोग योगशास्त्रकी प्रशंसा करके निज पक्षको उद्भावन करते हुए योगशास्त्रको मुख्य कहा करते हैं और अनीश्वरवादी लोग "किस प्रकारसे मुक्ति होगी" इस विषयमें महती युक्ति पूर्ण रीतिसे वर्णन करते हैं। सांख्य मतवाले द्विजाति भी ऐसा कारण दिखाते हैं, कि जो लोग इस लोकमें सब गति जानके विषयभोगसे विरत होते हैं, वे निज शरीर त्यागनेके अनन्तर निश्चय ही स्पष्ट रूपसे मुक्ति लाभ किया करते हैं। इस ही निमित्त महाप्राज्ञ सांख्य मतवाले पण्डित लोग सांख्यको मोक्ष दर्शन कहते हैं। हे युधिष्ठिर! दोनों पथमें बलवान युक्ति विद्यमान रहनेपर भी जो पक्ष अपनेको सम्मत हो, उस विषयकी ही युक्ति ग्राह्य होती है और अपने अपन पक्षमें निज निज मतके अनुयाई वचन हितकर होता है; क्योंकि अपने अपने सम्प्रदायके शिष्टोंके मत तुम्हारे समान लोग ग्रहण किया करते हैं। हे तात! योग मतके अनुयायी पुरुष प्रत्यक्ष प्रमाणको कारण कहते हैं और सांख्य मतवाले शास्त्रसिद्ध अर्थात् श्रुति प्रमाणको कारण कहते हैं, ये दोनों ही मत मेरी सम्मतिमें यथार्थ हैं। हे राजन्! साधुसम्मत ये दोनों मतोंके शास्त्ररीतिसे अनुष्ठित होनेपर परम गति प्राप्त होती है। हे पापरहित! पवित्र आचार, सब प्राणियोंके विषयमें दया और अहिंसा आदि व्रतोंके अनुष्ठान, इन सबमें दोनों मतोंकी ऐक्यता है; परन्तु दोनोंके दर्शन समान नहीं हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! व्रत पवित्रता दया और इन सबके फल यदि दोनों मतमें ही समान हैं, तब दोनोंके दर्शन किस निमित्त

पृथक् हुए। उसे मेरे समीप विस्तारपूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, मनुष्य योगबलसे राग, मोह, स्नेह, काम, क्रोध आदि इन पांचो दोषोंको छेदन करके मुक्ति लाभ करता है। जैसे बड़ी मछली जालको छेदन करके फिर जलमें चली जाती है, वैसे ही योगी लोग योगबलसे पापर हित होके ब्रह्मपद लाभ किया करते हैं, जैसे बलवान मृग वागुरा छेदन करके निज स्थानपर चले जाते हैं, वैसे ही योगी लोग सब बन्धनोंसे छूटकर विमलपद पाते हैं। हे राजन्। बलवान योगी पुरुष ही लोभज बन्धनोंको काटके मङ्गलमय पवित्र मार्गमें गमन करते हैं। हे कुन्तीपुत्र राजेन्द्र! जैसे निर्व्वल हरिन जालमें बन्धकर विनष्ट होता है और बलहीन मछलियें जालबद्ध होकर मृत्यु मुखमें पड़ती हैं, वैसे ही अत्यन्त निर्व्वल योगी पुरुष भी विना योगबलके काम आदिके वशमें होकर विनष्ट हुआ करते हैं। हे शत्रुनाशन! जैसे निर्व्वल पक्षियें सूक्ष्म जालमें फंसके विपदग्रस्त होती हैं, परन्तु बलवान पक्षियोंको छुटकारा मिलता है, वैसेही निर्व्वल योगी कर्म्मज बन्धनोंसे बद्ध होकर विनष्ट होते हैं और बलवान योगी लोग सहजमें ही उससे मुक्ति लाभ किया करते हैं। हे राजन्! जैसे अत्यन्त निबल थोड़ी अग्नि स्थूल काष्ठोंसे दबके बुझ जाती है, वैसे ही निर्व्वल योगी भारी योगसे आक्रान्त होकर मृत्युको प्राप्त हुआ करते हैं। और जब वह थोड़ीसी निबल अग्नि वायुके संयोगसे फिर बलिष्ठ होती है; तब वही अग्नि सारी पृथ्वीको भस्म करती है। इस ही भांति अभ्याससे उत्पन्न हुए बलके सहारे तेजस्वी योगी भी प्रलयकालके सूर्य्यकी भांति सब जगत्‌को सुखा सकते हैं। हे राजन्! जैसे बलहीन पुरुष स्रोतके जरिये बह जाता है, वैसेही निर्व्वल योगी भी अवश होकर विषयोंके जरिये खूत हुआ करते हैं और जैसे बलवान हाथी महास्रोतको भी तुच्छ समझकर अनायास ही रुद्ध करनेमें समर्थ होता है, वैसेही योगी भी योगबल लाभ करके प्रबल विषयोंको सामान्य समझा करते हैं। हे पार्थ! योगबलशाली योगी लोग योगसे स्वतन्त्रता लाभ करके प्रजापति, ऋषि, देवता और महाभूतोंमें प्रवेश करनेमें समर्थ होते हैं। हे राजन्! यम, अन्तक और भयङ्कर पराक्रमी मृत्यु ये सब क्रुद्ध होकर भी तेजस्वी योगीके निकट प्रभु नहीं हो सकते; योगी पुरुष योगबल लाभकर अपने शरीरको कई हजार विभागमें विभक्त करके उसके सहित पृथ्वीपर पर्य्यटन किया करते हैं, उनमेंसे कोई योगी विषयभोगमें लिप्त होकर निज तेज संक्षेपकारी सूर्य्यकी भांति शरीर संक्षेप करते हुए पुनर्व्वार उग्र तपस्याचरणमें प्रवृत्त होते हैं। हे राजन्! बन्धनको काटनेमें समर्थ बलवान योगी पुरुष अपनी मुक्तिके विषयमें आप ही प्रभु हुआ करते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हे भारत! मैंने तुम्हारे निकट योगसे प्राप्त हुए ये सब बल कहे, प्रमाणके निमित्त फिर सूक्ष्म रूपसे उन सबका वर्णन करूंगा। हे विभु! आत्माकी समाधि और धारणाके विषयमें मैं सूक्ष्म दृष्टान्त कहता हूं, तुम सुनो। जैसे अप्रमत्त सावधान धनुषधारी लक्ष्यको वेधता है, वैसे ही युक्त योगी अर्थात योगयुक्त पुरुष निश्चय ही सब प्रकारसे मुक्ति लाभ करते हैं। जैसे प्रशान्त चित्तवाले कर्म्ममें आसक्त पुरुष सिरपर स्थित जल भरे पात्रमें मन लगाकर सीढ़ीपर चढ़ते हैं, वैसे ही पहले कहे हुए युक्त योगी आत्माको निश्चल वा सूर्य्यकी भांति निर्म्मल किया करते हैं। हे कुन्तीपुत्र! जैसे मल्लाह सावधान होकर समुद्रमें गई हुई नौकाको शीघ्र ही निज गृहपर लौटा लाता है, वैसे ही तत्त्ववित् पुरुष योगयुक्त होकर आत्म समाधान करते हुए इस शरीरको छोड़कर दुर्गम स्थान पाते हैं। जैसे सारथी अत्यन्त

सावधान होकर उत्तम घोड़ोंके जरिये धनुर्धारी पुरुषको शीघ्र ही अभिलषित स्थानमें पहुंचाता है, और जैसे बाण धनुषसे छूटकर शीघ्र ही निशानेपर लगता है वैसे ही योगी पुरुष धारणा विषयमें अत्यन्त सावधान होकर शीघ्र ही परम पद पाते हैं। जो योगी जीवात्माको परमात्मामें प्रवृष्ट करके अचलभावसे निवास करता है, वह सब पापोंका नाश करके पुण्यवान् पुरुषोंके अजर पदको पाता है। हे मनुजेन्द्र! अत्यन्त पराक्रमसे युक्त जो योगी पुरुष महाव्रतमें स्थित होके नाभि, कण्ठ, मस्तक, हृदय, वक्षस्थल, कोख, नेत्र और कान आदि इन सब स्थानोंमें बुद्धिके सहारे जीवात्माका दृढ़ संयोग कर सकते हैं, वे अविनाशी रूपसे भासमान शुभाशुभ कर्म्मोंको शीघ्र ही जलाकर उत्तम योग अवलम्बन करते हुए इच्छानुसार मुक्त होते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! योगी किस प्रकारके अहार और कौन कौनसे विषयोंको जय करके ऐसा बल प्राप्त करते हैं आपको उसे ही मेरे समीप वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, हे अरिदमन! जो योगी रूखे वस्तुको त्यागके तिलकल्ककी कणा वा रूखा यावक भक्षण करते हुए बहुत समयतक एकही आहारसे स्थिति करते है वे शुद्धचित्तवाले योगीवर बल लाभ करते हैं। और जो दिन, पक्ष, महीना, ऋतु वा सम्वत भर दूध मिले हुए जलको पीके रहते हैं, वे बल लाभ करते हैं। हे मनुजेश्वर! योगी लोग नित्य अखण्ड मांस भी परित्याग करनेसे सब प्रकारसे शुद्धचित्त होकर बललाभ किया करते हैं। हे नृप सत्तम! स्पृहाहीन ध्यानवान महात्मा योगी लोग काम, क्रोध, सर्दी, गर्म्मी, वर्षा, भय, शोक, श्वास, पौरुष, विषय, दुर्ज्जय, अरति, घोर तृष्णा, स्पर्श, निद्रा और दुर्ज्जय तन्द्रा परित्याग करके ध्यान अर्थात् ध्येयाकार प्रत्यय प्रवाह तथा अध्ययन अर्थात् प्रणव जपरूपी सम्पत्तिसे युक्त होकर ज्ञानके सहारे जीवात्माको प्रकाशित करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! विपश्चित ब्राह्मणोंका यह महान् पथ अत्यन्त दुर्गम है। जैसे सांप वा सरिसृप समूहसे परिपूरित, जल रहित बिल सम, अनेक कांटोंसे युक्त भक्ष्यवस्तुओंसे रहित दावाग्निसे जले हुए वृक्षों और तस्करोंसे पूरित, भयङ्कर वनके बीच कोई युवा पुरुष कुशलसे रहके विचरनेमें समर्थ नहीं होता, वैसे ही विद्वान ब्राह्मणोंके महापथमें कोई भी गमन नहीं कर सकता। यदि कोई द्विज योगमार्ग अवलम्बन करके गमन करते हुए उससे उपरत हो, तो वह पुरुष अत्यन्त दोषभागी हुआ करता है। हे राजन्! कृतात्मा पुरुष ही चोखे छुरधारकी भांति योगधारणामें सुखसे निवास करनेमें समर्थ होते हैं, परन्तु अकृतात्मा पुरुष कभी उसमें वैसे सुखसे निवास नहीं कर सकता। हे राजन्! जैसे समुद्रमें स्थित पुरुष मल्लाहसे रहित नौकाके जरिये पार नहीं होसकता, वैसे ही धारणा नष्ट होनेसे उसके जरिये पुरुषको कभी शुभ गति नहीं होती। हे कुन्तीनन्दन! जो लोग धारणामें पूर्ण रीतिसे निवास कर सकते हैं, वेही जन्म, मरण, सुख और दुःख त्यागनेमें समर्थ होते हैं, यह योगशास्त्रमें अनेक भांतिसे निर्णयके सहित कहा गया है। परन्तु जो योगका फल है, वह द्विजातियोंमें निश्चित रूपसे विद्यमान है।

हे महात्मन्! वह योगका फल परब्रह्मस्वरूप है। महात्मा योगी लोग उस ही योगबलसे लोकेश ब्रह्मा, वरदाता विष्णु, महेश्वर, धर्म्म, कार्त्तिकेय, महानुभाव कपिल आदि ब्रह्मपुत्रगण, योगमें विघ्न करनेवाले तम, रज और आत्मतत्वको प्रकाशक शुद्ध सतोगुण, परम प्रकृति, वरुण पत्नी सिद्धदेवी, तेज और धीरज, इन सबमें इच्छानुसार प्रवेश कर सकते हैं।

अर्थात् इन्हें जय करनेमें समर्थ होते हैं, और तारोंसे घिरे हुए ताराधिप चन्द्रमा, विश्वदेव, सर्प, पितर, बनके सहित समुद्र, नदी, बादल, नाग, पर्व्वत, यक्ष, गन्धर्व्व, स्त्री, पुरुष और दिश, इन सबमेंसे जब जिसके रूपको धारण करनेकी इच्छा हो, उस समय उस ही रूपको धारण कर सकते हैं और शीघ्र ही मुक्त होते हैं। हे राजन्! महावीर्य्यसम्पन्न परमात्माको जगत् कर्त्तृत्वादि निरूपण रूपी जिन सब कथाओंका प्रसङ्ग होता है, उसे ही मैं शुभ समझा करता हूं, क्यों कि ईश्वरपरायण योगी लोग परमात्म विषयक प्रसङ्ग करते हुए सर्व्वाधिक होकर सङ्कल्पमात्र समस्त मर्त्य लोकको सृष्टि करनेमें समर्थ होते हैं।

योग विधानमें ३०० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे नरपाल! आपने शिष्यके पूछनेपर शिष्यहितैषी होकर शिष्य सम्मत इस योग मार्गका शिष्यके समीप पूर्णरीतिसे न्याय पूर्व्वक वर्णन किया; परन्तु अब मैं सांख्य शास्त्रकी विधि पूछता हूं उसे मेरे समीप विस्तार पूर्व्वक कहिये। तीनों लोकोंके बीच जो ज्ञान निर्द्दिष्ट हैं, उन सबको आप जानते हैं।

भीष्म बोले, हे मनुजेन्द्र! कपिल आदि यतीन्द्रोंने जो प्रकाश किया है, उसमें किसी भांतिका भ्रम नहीं दीखता, जिसमें अनेक प्रकारके गुण विद्यमान हैं, और जिससे सब दोष नष्ट होते हैं, आत्मवित् सांख्यमतवाले मनुष्योंका वह सूक्ष्म तत्व तुम्हारे समीप कहता हूं, तुम सुनो। हे राजन्! मोक्षके उपयोगी सात्विक भावसे चित्तको वशमें करनेवाले, ज्ञान और विज्ञानयुक्त सांख्यमतवाले मनुष्य, पिशाच, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व्व और तिर्य्यग्गामी पितर, नाग, पक्षी, मारुत, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि, असुर, विश्वदेव, योगी प्रजापति और ब्रह्मा, इन लोगोंके सदोष अर्थात् मिथ्यात्व दोषयुक्त सब दुर्ज्ञेय विषय, इस लोकमें आयुका समय, सुखका परमतत्व, सदा विषयकी इच्छा करनेवाले पुरुषके प्राप्तकालमें उत्पन्न हुए दुःख, तिर्य्यग्गामी और नरकगामी लोगोंके क्लेश, स्वर्गके दोष तथा गुण, वैदिक, वेदवाद, ज्ञानयोग और सांख्य ज्ञान, इन सबके दोष गुणोंका ज्ञानके सहारे जानके और आनन्द प्रीति, उद्वेग, प्रकाश्य, पथ्यशीलता, सन्तोष, श्रद्धालुत्व, आर्ज्जव, दानशीलता तथा ऐश्वर्य्य आदि दश गुणोंसे युक्त सत्व, अनशन, कृपणता होनता, सुख, दुःख सेवा, भेद, पौरुष, काम, क्रोध, मद और मत्सरता, इन नव गुणोंसे युक्त रज, तम, मोह, महामोह, तामिस्र अन्धतामिस्र, निद्रा, प्रमाद और आलस्य, इन आठों गुणोंसे युक्त तम, महत्, अहंकार शब्द तन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्र, इन सातों गुणोंसे युक्त बुद्धि, कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, इन पांचों इन्द्रियोंके सहित षष्ठमरूप मन, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पञ्चगुणोंसे युक्त आकाश, संशय निश्चय, गन्धर्व्व, स्मरण, इन चारों गुणोंसे युक्त बुद्धि, अप्रतिपत्ति विप्रतिपत्ति और विपरीत प्रतिपत्ति ये त्रिगुणात्मक तम आदि तथा दुःखरूपी द्विगुण रज, प्रकाशात्मक एक गुणसत्व, ये सब और प्रलय अर्थात् प्राकृत लय तथा प्रेक्षण अर्थात् आत्मतत्त्व समालोचनके समयमें मोक्ष मार्ग यथार्थ रीतिसे जानके आकाशगामी सूर्य्य किरणकी भांति मङ्गलकारी परम मोक्षलाभ किया करते हैं। और रूप-गुणसे युक्त श्रवणेन्द्रिय, रस गुणसे युक्त रसनेन्द्रिय, स्पर्शगुण युक्त त्वगेन्द्रिय, आकाशाश्रित वायु, तमोगुणयुक्त मोह अर्थाश्रित लोभ, विक्रम अर्थात् पादविक्षेपमें आसक्त विष्णुवल अर्थात् हस्तेन्द्रियासक्त इन्द्र, कोष्ठासक्त अग्नि, जलमें आसक्त शिव देवी, तेजसाश्रित जल, वायुआश्रित तेज, प्रकाशाश्रित वायु महत्तत्वसे

संयुक्त आकाश, बुद्धि समाश्रित महत् तम संयुक्त बुद्धि रजके आश्रित तम, सत्वाश्रित रज, आत्मा अर्थात् जीविताश्रित सत्व, ईश्वर नारायण देवमें आसक्त आत्मा, मोक्षमें समासक्त नारायण देव, शिवमहिमामें प्रतिष्ठित मोक्ष, सोलह गुणोंसे युक्त लिङ्ग शरीर, लिङ्ग देहके आश्रित स्वभाव अर्थात् पूर्व्वकर्म्म वा चेतना अर्थात् बुद्धिवृत्ति, निष्पाप उदासीन अद्वितीय आत्मा, विषय वासनावान पुरुषोंके द्वितीय कर्म्म आत्माश्रित इन्द्रिय और इन्द्रियार्थ वेदके अनुसार मोक्षके दुर्लभत्व प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान आदि पञ्चप्राण तथा अधः और प्रवाह इस ही प्रकारसे सप्तधा विहित सातों वायु प्रजापति, ऋषि अनेक भांतिके उत्कृष्ट धर्म्म मार्ग, सप्तर्षि, देवर्षि, सूर्य्यके समान दूसरे दूसरे महान् ब्रह्मर्षि, उक्त ऋषियोंकी कालवशसे ऐश्वर्य्यच्युति, महाभूतोंका नाश, पापाचारियोंकी अशुभ गति, यमलोकगामी जीवोंके वैतरनी पार होनेका दुःख जीवोंका विचित्र योनियोंमें भ्रमण और रुधिर जलके पात्र अशुभकर जठरके बीच वास, जीवके कफ, मूत्र, पुरीषसे परिपूरित तीव्र गन्धसे युक्त, बहुतसे शुक्रशोणित संयुक्त मज्जा और स्नायुसे परिवृत सैकड़ों नाड़ियोंसे परिपूरित अपवित्र नवद्वार युक्त परीके बीच निवास और उसमें विविध सम्बन्ध, रमणीय वस्तुमें आसक्तचित्त तामस और सात्विक जन्तुओंके कुत्सित कर्म्म हैं, आत्मतत्ववित् सांख्यवादियोंके गर्हित आचरण चन्द्रमा और सूर्य्यका घोर उपराग, तारोंका गिरना, नक्षत्रोंका विपर्य्यय, दम्पतियोंका विरह और दीनता, प्राणियोंके परस्पर अशुभ भक्षण, बाल्यकालमें मोह और देहका पतन, राग और मोह उपस्थित होनेपर किसी पुरुषमें सतोगुण आश्रित होता है, सहस्र लोगोंके बीच कोई पुरुष मोक्षबुद्धि अवलम्बन करता है, श्रुतिके अनुसार मोक्षका दुर्लभत्व, अप्राप्त वस्तुमें बहुमान, प्राप्तवस्तुमें उदासीनता विषयोंमें दौरात्म्य अर्थात् बन्धनकारित्व दोष मृतकोंके सुन्दर शरीर, जन्तुओंकी गृहवासरूपी दुःख, ब्रह्मघ्न पतित पुरुषोंकी दारुण गति, मद्य पीनेमें आसक्त और गुरुस्त्रीमें रत, दुरात्मा ब्राह्मणोंकी अशुभ गति, जो मनुष्य माताके अनुवर्त्ती नहीं होते और जो देवस्थानमें वास नहीं करते, उन अशुभ कर्म्म करनेवाले मनुष्योंकी गति, तिर्य्यग् योनिगत सब प्राणियोंकी पृथक् पृथक् गति, विचित्र वेदवाद ऋतुका बदलना, सम्वत्सर, महीना, पक्ष और दिवसका क्षय, चन्द्रमा, समुद्र, धन, इनकी घटती बढ़ती, सम्बन्ध, युग, पहाड़, नदी वर्षा इन सबका बार बार नष्ट होना, जन्म, जरा, मृत्यु देह दोष, देहके दुःख, देह नष्ट करनेवालोंके दुःख, सर्व्व जीवस्थित आत्मदोष, निज शरीरसे उत्पन्न अशुभ गन्ध,—इन सबको यथार्थ रीतिसे जानकर मुक्ति लाभ किया करते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे अमित विक्रम! निज शरीरसे उत्पन्न कौन कौनसे दोष अशुभरूपसे दीखते हैं, मेरे इस सन्देहके विषयको यथावत् वर्णन करना आपको उचित है।

भीष्म बोले, हे शत्रुनाशन! मोक्ष मार्गवित् कपिल प्रणीत सांख्य मतावलम्बी मनीषि लोग देहके बीच स्थित जिन सब दोषोंको कहा करते हैं, उन्हें मैं तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। पण्डित लोग काम, क्रोध, भय, निद्रा और श्वास, इन पांचोंको दोष कहा करते हैं, वे सब दोष शरीरमें ही दीख पड़ते हैं, हे राजन्! मनीषि लोग क्षमासे दोष, संकल्प त्यागसे काम, तत्वसेवाके जरिये निद्रा, अप्रमादसे भय और अल्प आहारसे श्वासको छेदन किया करते हैं।

हे नरपाल! महाप्राज्ञ सांख्य मतवाले पुरुष सांख्यसम्मत महान् व्यापक ज्ञान योगसे सैकड़ों गुणोंके जरिये सब गुणों, सैकड़ों

दोषोंके सहारे सब दोषों और विविध हेतुयुक्त तर्कके जरिये अनेक प्रकारके हेतुओंको यथार्थ रूपसे जानकर जलके फेन समान विष्णुकी मायासे आवृत्त विचित्र भित्तिसदृश नलतृणकी भांति अन्तःसार रहित अन्धकारसे परिपूरित बिल-सदृश, वर्षाके बुलबुलेके समान, सुखहीन, नष्टप्राय विनाशान्तर अवश, इन सब लोकोंको देखते हुए कीचड़में फंसे अवश हाथीकी भांति अन्धकारमें निमग्न रज और प्रजाकृत स्नेहको त्यागके देहस्थित रज तथा तमोगुणसे उत्पन्न वैसे अशुभ गन्ध और सतोगुणसे उत्पन्न सब स्पर्शन पुण्यगन्धोंको ज्ञानरूपी शास्त्रसे शीघ्र ही काटके जिसका दुःखरूप जल, चिन्ता वा शोकरूपी भयङ्कर तालाब, व्याधि और मृत्युरूपी महाग्राह, भयरूपी महासर्प, तमरूपी कूर्म्म, रजोगुणरूपी मीन, बुद्धिरूपी नौका, स्नेहरूपी कीचड़, ज्ञानरूपी दीपक, कर्म्मरूपी अगाध, सत्यरूपी तीर, हिंसारूपी प्रबलवेग, अनेक रस सदृश आकर, नाना प्रीतिरूपी महारत्न, दुःख और ज्वररूपी वायु, शोक और तृष्णारूपी महाआवर्त्त, तीक्ष्ण व्याधिरूपी महाहस्ती, हड्डीरूपी सघट, कफ रूपी फेन, दानरूप मुक्ताकी खान सीप, रुधिर ह्रदरूपी विद्रुम, हंसी और रोदनरूपी निर्घोष और जो जराके जरिये दुर्गम अनेक भांतिके ज्ञानके सहारे दुस्तर, रोदनके आंसू और मलरूप जिसका खार तथा सङ्गत्यागरूप जिसका परम आश्रय है, लोककी उत्पत्तिरूपी वेग, बान्धव और पुत्ररूपी पत्तन, अहिंसा और सत्यरूपी सीमा प्राणत्यागरूपी महान् तरङ्ग वेदान्त गमनरूपी द्वीप और जिसमें मोक्ष विषय अत्यन्त दुर्लभ है, वैसे बाड़वानलसे युक्त सब भूतोंके दयारूप समुद्रको ज्ञानयोगके जरिये पार हुआ करते हैं। हे कुन्तीनन्दन! सांख्य मतवाले इस ही भांति आकाशगामी दुस्तर जलयुक्त स्थूल शरीरको छोड़कर हृदयरूपी निर्म्मल आकाशमें प्रविष्ट होने पर वहां जिस भांति सुख संयोगसे अन्तस्थित मृणाल दण्डके जरिये आकर्षित जल भीतरमें प्रवेश करता है, वैसे ही चौदह भुवन विहारी सूर्य्य आत्मामें प्रणिहित मनके जरिये उन सुकृतमान सांख्यमतवालोंके अन्तरमें प्रविष्ट होकर उन लोगोंको चतुर्द्दश भुवनोंके विषयोंको मालूम करानेसे वे उन्हीं सब विषयोंको प्राप्त करते हैं। हे भारत! वहां प्रवह-वायु उन रागरहित वीर्य्यवान तपोधन यतिसिद्ध सांख्य लोगोंको ग्रहण करता है। अनन्तर शुभलोकगामी, सूक्ष्म, सुन्दर शीतलता सुगन्धि सुख स्पर्श मरुत श्रेष्ठ वह प्रवहमान वायु उन्हें आकाशको चरम गति अर्थात् हृदयरूपी आकाशमें लेजाता है। हे लोकेश! इस ही प्रकार धीरे धीरे आकाशसे रजोगुणमें रजोगुणसे सत्वको परमगति और सत्वसे परमात्मा प्रभु नारायणको पाता है। फिर सब भूतोंके निवास स्थान वे सांख्य लोग पवित्र परमात्माको पाके अमृतकल्प होते हैं, इसलिये उन लोगोंको फिर पुनरावृत्ति नहीं होती। हे पार्थ! सत्य और सरलतायुक्त सब भूतोंमें दयावान् भेद ज्ञानसे रहित महात्माओंकी वही परमगति है।

युधिष्ठिर बोले, हे पाप रहित! स्थिरव्रतवाले सांख्योंके षड्गुण ऐश्वर्य्ययुक्त परमात्मस्वरूप मोक्षधाम मिलने पर उन्हें जन्म मरणादिका स्मरण और मोक्ष विषयका विशेष ज्ञान रहता है, वा नहीं। तथा मोक्ष प्रतिपादक श्रुतिमें मोक्ष विषयक ये दो प्रकारके महान् दोष दीख पड़ते हैं, कि कोई कोई यति मोक्ष धर्म्मकी प्रशंसा करते हुए मोक्ष मार्गमें प्रवृत्त होते हैं, कोई कर्म्मकाण्डकी प्रशंसा करते हुए प्रवृत्ति मार्गमें प्रवृत्त होते हैं; मुझे भी वही प्रवृत्ति धर्म्म प्रधान जंचता है, परन्तु यह भी युक्ति सङ्गत है, कि मोक्षमार्गमें प्रविष्ट पुरुषोंका ज्ञान श्रेष्ठ है। हे कौरवेन्द्र! इसलिये इस विषयमें जो यथार्थ है, उसे यथावत वर्णन

करनेमें आप ही उपयुक्त हैं, आपके समान पुरुषके अतिरिक्त मैं और किसीसे पूछनेमें समर्थ नहीं होता हूं।

भीष्म बोले, हे तात भरत श्रेष्ठ! तुमने जो युक्ति सङ्गत प्रश्न किया, वह अत्यन्त कठिन है, यद्यपि इस प्रश्नमें पण्डितोंको भी मोह उपस्थित होता है, तौभी कपिलोक्त सांख्य मतवालम्बी महात्मा लोग जिस परम तत्त्वको जानते हैं, उसे ही तुम्हारे समीप विस्तार पूर्व्वक कहता हूं, सुनो। हे राजन्! प्राणियोंको निज देहमें स्थित इन्द्रियोंके जरिये ही आत्माको जाना जा सकता है, इसलिये वे इन्द्रियें आत्म ज्ञानकी हेतुभूत बोध होती हैं, क्यों कि सूक्ष्म चिदात्मा उन इन्द्रियोंके सहित ही अन्तर-वाह्य सब विषयोंको प्रकाश किया करता है। परन्तु इन्द्रियें आत्मासे रहित होने पर काठ और कुड्यप्राय होकर महार्णवमें स्थित जल रहित फेनकी भांति विनष्ट होती हैं। हे परन्तापन! देहाभिमानी जीव इन्द्रियाके सहित शयन करनेपर स्वप्नावस्थामें सूक्ष्म अन्तरात्मा आकाश मण्डलवर्त्ती वायुकी भांति सर्व्वत्र विचरण किया करता है। हे भारत! जाग्रत अवस्थाकी भांति स्वप्नमें भी वह सूक्ष्म अन्तरात्मा यथाक्रमसे रूप और स्पर्शविषयोंको दर्शन और स्पर्शन किया करता है। इस स्वप्नावस्थामें निज निज स्थानमें स्थित इन्द्रियें अपने अपने विषयोंको ग्रहण करनेमें असमर्थ होकर विषरहित सर्पकी भांति आत्मामें लीन होती हैं। हे पार्थ! उक्त अवस्थामें अन्तरात्मा निज निज स्थानमें स्थित इन्द्रियोंकी सब वृत्ति और धर्म्म आदि सतोगुण, प्रवृत्ति आदि रजोगुण, अप्रवृत्ति आदि तमोगुण, अध्यवसाय आदि बुद्धिके गुण और संकल्प आदि मनके गुण, श्रोत्र आदि आकाशके गुण, स्पर्श आदि वायुके गुण, दर्शन आदि अग्निके गुण, रस आदि जलके गुण और गन्ध आदि पृथ्वीके गुणोंको आक्रमण करके सर्व्वत्र विचरण करता है। हे युधिष्ठिर! अन्तरात्मा क्षेत्रज्ञ जीवस्थित उक्तानुक्त सत्वादि गुणसमन्त और अमित माया गुणके जरिये आच्छादित करके जीवको आक्रमण करती है, उसहीके अनुसार शुभाशुभ कर्म्म भी जीवको आच्छन्न किया करते हैं। अनन्तर क्षेत्रज्ञ जीवकार्य्य उपाधि इन्द्रिय और कारणोपाधि प्रकृतिको अतिक्रम करके अव्यय परमात्माको पाता है। हे भारत! क्षेत्रज्ञ जीव मायातीत अनामय एकमात्र निर्गुण परमात्मा नारायणमें प्रविष्ट होनेपर पुण्य-पापसे मुक्त होती है, इससे उसको फिर पुनरावृत्ति नहीं होती। हे तात! समाधि भङ्ग होनेपर आत्मामें लीन हुए अन्तःकरण और इन्द्रियें प्रारब्ध कर्म्मके अनुसार ईश्वरकी आज्ञा पालन करनेके निमित्त फिर देह धारण किया करती है। अनन्तर थोड़े समयमें ही वर्त्तमान देहका पतन होनेपर गुणार्थी, मोक्षकी इच्छावाले ज्ञानयुक्त योगी लोग विदेह मुक्ति लाभ करते हैं।

हे राजन्! महाप्राज्ञ सांख्य लोग इस ही ज्ञानके सहारे परम गति पाते हैं, इसलिये कोई ज्ञान भी इसके समान नहीं है। हे कुन्तीनन्दन! मेरी समझमें यह सांख्य ज्ञान ही अत्यन्त उत्कृष्ट और अक्षर अचञ्चल सनातन पूर्णब्रह्म स्वरूप है; इसलिये इसमें तुम्हें और सन्देह न करना चाहिये। मनीषि लोग जिसे अद्वैत उत्पत्ति, स्थिति और नाशरहित, नित्य अखण्ड, जगत्कर्त्ता कूटस्थ ब्रह्म कहा करते हैं, जिससे सृष्टि, स्थिति और प्रलयरूपी सब क्रिया उत्पन्न होती हैं, ऋषि लोग सब शास्त्रोंमें जिसकी प्रशंसा किया करते हैं; सब भूतोंमें समज्ञान करनेवाले साधु, ब्राह्मण और देवता लोग ब्राह्मणोंके परम हितकारी उस अच्युत अनन्त देवकी प्रार्थना किया करते हैं। विषयज्ञानसे युक्त ब्राह्मण लोग मायिक गुणोंके सहारे जिसकी स्तुति करते हैं, अमित दर्शन सांख्य और योगसिद्ध योगी लोग उसे अमत्प्रका

कारण आपको अनेक प्रकारसे स्तुति करते हैं; और यह वेदमें प्रसिद्ध है, कि सांख्य उस अमूर्त्त गुण विशिष्ट परब्रह्मकी मूर्त्ति है तथा घटादि विषयक सब विषयोंका ज्ञान ही उसका महाज्ञान स्वरूप है।

हे राजन्! इस पृथ्वीपर जो स्थावर और जङ्गमात्मक दो प्रकारके प्राणी हैं, उनमें जङ्गम ही श्रेष्ठ हैं। हे महात्मन्! अत्यन्त विस्तृत वेद, सांख्य, योग, पुराण, इतिहास, शिष्टजन सेवित अर्थशास्त्र और इस लोकमें जो सब विविध भांतिके ज्ञान दीख पड़ते हैं, वे सब इसी सांख्यज्ञानके अन्तर्गत हैं. हे राजन्! शम, बल, सूक्ष्म ज्ञान, तपस्या और सुख, ये सब सांख्यज्ञानके बीच यथावत विहित हुए हैं। हे पार्थ! किञ्चित विकलता वशसे उस सांख्य ज्ञानका उदय न होनेसे सांख्य लोग देवलोकमें जाके वहां सदा सुखसे वास करके देवताओंके ऊपर आधिपत्य करते हुए कृतार्थ होकर भोगकी समाप्ति होनेपर यज्ञशील विप्रकुलमें फिर पतित होते हैं। सांख्य लोग देह छोड़के देव लोकवासी देवताओंकी भांति देवलोकमें प्रवेश करके क्रमसे महापूज्य शिष्टोंसे सेवित सांख्य ज्ञानमें अधिक अनुरक्त हुआ करते हैं। हे राजन्! कभी वे तिर्य्यग्गति, अधोगति वा पापात्माओंके अधिवासको प्राप्त नहीं होते; क्यों कि जो द्विजाति एकमात्र ज्ञानमें अनुरक्त रहते हैं, वेही प्रधानता लाभ करते हैं। जो महात्मा महासागरकी भांति विशाल सुन्दर, अप्रमेय, पुरातन परम पवित्र सब सांख्य ज्ञानको धारण अर्थात् दर्शन करते हैं वेही नारायण परब्रह्मरूप होते हैं। हे नरदेव! मैंने तुम्हारे निकट यथावत् तत्व वर्णन किया; वह जगदन्तर्य्यामी नारायण सृष्टि कालमें यही पुरातन विश्व उत्पन्न करता है, और प्रलयके समय फिर इस जगत्‌का संहार करता है। अन्तमें निज देह स्थित विषयादि कालजाल अपनेमें लीन करते हुए कारण सलिलमें शयन किया करता है।

२०१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे शत्रुनाशन! जिससे जीवोंको पुनरावृत्ति रहित होती, जिससे जीवोंका पुनरागमन होता है और जो अक्षर तथा क्षररूपसे वर्णित हुआ है, वह कौन है? हे महाबाहो कुरुनन्दन! उस अक्षर और क्षर दोनोंके प्रभेदको यथार्थ रूपसे जाननेके लिये आपसे प्रश्न करता हूं। क्यों कि वेदपारग ब्राह्मण, महाभाग ऋषि और महात्मा योगी लोग आपको ज्ञाननिधि कहा करते हैं। हे कुरुकुलश्रेष्ठ! आपकी परमायुके दिन बहुत हो कम बाकी हैं; क्यों कि भगवान सूर्य्यके दक्षिणायनसे लौटनेसे ही आपको परमगति प्राप्त होगी। आप कुरुवंशके दीपक हैं, तथा ज्ञान दीपसे सदा प्रकाशित हैं, इसलिये आपके परमधाममें गमन करने पर हम लोग किसके समीप इस कल्याणकर वचनको सुनेंगे। हे राजेन्द्र! इस ही निमित्त आपके समीप हम सब विषयोंके सुननेकी इच्छा करता हूं, इस लोकमें ऐसे अमृतमय वचनको सुनकर मैं परितृप्त नहीं होता हूं।

भीष्म बोले, इस विषयमें करालजनक और वशिष्ठके सम्वादयुक्त प्राचीन इतिहास तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। पहिले समयमें कराल नाम महाराज जनक सूर्य्यके समान तेजस्वी अध्यात्म विद्याके जाननेवाले, आध्यात्मिक अनुभव और निश्चययुक्त ऋषिश्रेष्ठ मित्रावरुण वशिष्ठको बैठे हुए देख उन्हें प्रणाम कर हाथ जोड़के सुन्दर अक्षरोंसे युक्त विनीत कुतर्क रहित मधुर वचनसे मोक्ष सम्बन्धी परम ज्ञानका विषय पूछा कि, हे भगवन्! जिससे मनुष्योंकी पुनरावृत्ति निवारित होती है,

जिसमें यह जगत् लीन होनेसे चर रूप कहा गया है और जिसे अक्षर कहते हैं, उस संसार मोचक आनन्द स्वरूप निर्द्वन्द्व सनातन परब्रह्मके विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं, उसे आप मेरे समीप विस्तार पूर्व्वक कहिये।

वशिष्ठ बोले, हे पृथ्वीपाल! यह जगत् जिस प्रकार नष्ट होता और किसी समयमें भी जो विनष्ट नहीं होता है, उस ही चर और अक्षरको विशेष रीतिसे वर्णन करता हूं, आप सुनिये। देव परिमाणसे बारह हजार वर्षका एक युग होता है, चार युगका एक कल्प और हजार कल्पका ब्रह्माका एक दिन और इस ही परिमाणसे ब्रह्मरात्रि हुआ करती है। हे राजन्! उस ब्रह्माका नाश होनेपर अमूर्त्तात्मा शम्भु, परमेश्वर अनन्त कर्म्मा महाभूत मूर्त्तिमान विश्वरूप अग्रज हिरण्य गर्भको उत्पन्न करते हैं उसहीमें स्वयम्भु ब्रह्माके नित्य स्वतः-सिद्ध अणिमा आदि सब ऐश्वर्य्य विद्यमान हैं, सर्व्वनियन्ता ज्योतिमय, अविनाशी, सर्व्वत्रगामी, सर्व्वग्राही, सर्व्वदर्शी, सर्व्वशिरा, सर्व्वानन, सर्व्वश्रोता वह हिरण्यगर्भ लोकमें सब वस्तुओंको आवरण करके स्थित कर रहा है। यह सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त हिरण्यगर्भ वेद शास्त्रोंमें सूत्रात्मा और बुद्धि समष्टि कहके निर्द्दिष्ट हुआ है। योग शास्त्रमें इसे सृष्टिका प्रथम कार्य्य महान् विरञ्चि और अज कहते हैं, सांख्य शास्त्रमें यह अनेक नामसे विख्यात् है, अनेक शरीरधारी, बहुरूपी, विश्वात्मा, एक मात्र अक्षररूप कहा गया है। वही अक्षर स्वयं अनेक रूप होकर तीनों लोकोंको उत्पन्न करके उन्हें आवरण कर रहा है, इसलिये रूप निवन्धनसे लोग उसे विश्वरूप कहा करते हैं। यही महातेजस्वी विश्वरूप सूत्रात्मा विकृतभावयुक्त होकर स्वयं ही अपनेको उत्पन्न करके अहङ्कार और अहङ्काराभिमानी विराटकी सृष्टि करता है। पण्डित लोग अव्यक्त प्रकृतिसे व्यक्तभावापन्न उस विश्वरूपको विद्यासृष्टि और महान् कहा करते हैं और अहङ्कारको अविद्या सृष्टि कहते हैं। एक मात्र ईश्वरविषयकी उपासना वा ज्ञानसम्बन्धमें जो विधि और अविधि दोनों उत्पन्न हुई हैं; वेदशास्त्रोंके अर्थ जाननेवाले उन दोनोंको अविद्या कहके व्याख्या करते हैं। हे पार्थ! अहङ्कारसे पञ्च-तन्मात्र अपञ्चीकृत पञ्चभूतोंकी जो सृष्टि होती है, वह तीसरी सृष्टि है और सात्विक, राजस तथा तामस आदि अहङ्कारसमूहके विकारको चौथी सृष्टि समझिये। हे राजन्! आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और शब्द स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध, ये दशवर्ग, युगपत् उत्पन्न हुए हैं, इसलिये इस सार्थक भौतिक सृष्टिको पांचवीं जानो। कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नासिका, ये पांचों बुद्धि इन्द्रिय और वाक, हाथ, पांव लिङ्ग और गुदा, ये पांचों कर्म्मेन्द्रिय मनके सहित युगपत् उत्पन्न हुई हैं। ये चौबीस तत्व सब शरीरमें ही विद्यमान हैं, तत्वदर्शी ब्राह्मण लोग इसे यथार्थरूपसे जानके शरीरके विषयमें शोक नहीं करते। हे नरेन्द्र! यह निश्चय जानो, कि तीनों लोकके बीच सब जीवोंमेंही ये चौबीस तत्व देहरूपसे वर्णित हुए हैं। देव, दानव, मनुष्य, किन्नर, यक्ष, गन्धर्व्व, भूत, महोरग, चारण, पिशाच, देवर्षि, निशाचर, दंश, कीट, मशक, भनगे, कीड़े, चूहे, कुत्ते, स्वपाक, व्याध, चाण्डाल, पुक्कस, हाथी, घोड़े, गधे, शार्दूल गऊ और वृक्ष आदि सब मूर्त्तिमान प्राणिमात्रमें ही इसके दृष्टान्त दीख पड़ते हैं और प्राणियोंका जल, भूमि और आकाशके अतिरिक्त अन्यस्थान नहीं है, इस ही भांति स्थिर सिद्धान्त भी सुना जाता है। हे तात! हिरण्यगर्भ आदि व्यक्तात्मक सब वस्तु ही सदा विनष्ट होती हैं, इस ही लिये भूतात्मा पञ्चभौतिक शरीर चररूपसे कहा गया है। पण्डित लोग यह विषय प्रत्यगात्माको अक्षर कहते हैं और व्यक्त वा अव्यक्ता-

रूप महात्मक जगत्का स्वर कहा करते हैं। हे महाराज! आप जो मुझसे पूछते हैं, उसे मैंने तुमसे प्रथम ही स्वरके दृष्टान्तभूत नित्य महान् और अग्रज हिरण्यगर्भका विवरण कहा है। विष्णु निस्तत्व होके भी पञ्चविंशति तत्त्वरूपसे गिने गये हैं; और वह सब तत्त्वोंके अवलम्ब हैं, उस ही लिये मनीषी लोग इन्हें तत्त्व कहते हैं। चौबीस तत्त्व अव्यक्त मूल प्रकृति मर्त्यरूपसे संहत होकर व्यक्त अर्थात् कार्य्यरूपी जगत्की सृष्टि करती हुई उस मूर्तिमान जगत्की अधिष्ठाता होती हैं; परन्तु पचीसवीं तत्त्व पुरुष अमूर्त्त और असंहत है, इससे वह जगत्का अधिष्ठाता नहीं है। वह अव्यक्त मूल प्रकृति ही चितशक्तिसे युक्त होकर सब वस्तुओंके भीतर निवास करता है और सर्ग वा प्रलयधर्म्मिणी उस प्रकृतिके सहित वह नित्य शुद्ध चैतन्य स्वभावसे मूर्त्तिहीन होके भी सर्ग और प्रलयरूपसे सबको दीख पड़ता है। इस ही भांति सर्ग और प्रलयवित् वह महान् आत्मा हिरण्यगर्भ प्रकृतिके संयोगसे विकृत और मूढ़ होकर "मैं" इस ही प्रकार अभिमान करता है, वा तम, रज और सतोगुणसे युक्त होकर इस लोकमें मूर्खोंको सेवा तथा मूर्खताके कारण सब योगियोंमें लीन होता है और सहवास निबन्धनसे विनाशी होकर "मैं दूसरा नहीं हूं" इस ही भांति "मैं अमुकका पुत्र तथा अमुक जातीय हूं"—ऐसा कहके ब्राह्मणादि गुणोंके अनुवर्त्ती होता है। तमोगुणके जरिये क्रोधादि तामसभाव, रजोगुणसे प्रवृत्यादि राजसभाव और सतोगुणके सहारे प्रकाशादि सात्विकभाव प्राप्त होता है। स्वच्छता, रञ्जकता और मलिनता निबन्धनसे पहले कहे हुए सत, रज और तमोगुणसे क्रमशः श्वेत, लाल और नीला, ये तीन प्रकारके रूप तथा इस लोकमें जो सब रूप विद्यमान हैं, वे सभी प्रकृतिके जरिये उत्पन्न हुए हैं। तामसिक लोग नरकमें गमन करते, राजस लोग मनुष्य लोकमें गमन करते और सात्विक लोग सुखभागी होकर देवलोकमें गमन किया करते हैं। जो लोग केवल पापकर्म्म करते हैं, वे तिर्य्यग् योनिको प्राप्त होते हैं जो पाप पुण्य दोनों कर्म्म करते हैं, वे मनुष्य योनि पाते हैं और जो लोग केवल पुण्य कर्म्म ही करते हैं वे देव योनिको प्राप्त हुआ करते हैं; यह पचीसवां अक्षर पुरुष अज्ञानसे इस ही भांति अव्यक्त प्रकृतिके वशीभूत होकर मनीषी पुरुषोंके जरिये स्वररूपसे कहा जाता है और वही ज्ञानके सहारे सदा अक्षर रूपसे प्रकाशित होता है।

३०२ अध्याय समाप्त।

वसिष्ठ बोले, इस ही प्रकार वह अक्षर पुरुष प्रकृति संयोगवशसे अज्ञानका अनुवर्त्ती होकर एक शरीरसे अनेक शरीर धारण करता है और सत्वादि गुणोंकी सामर्थसे वह सत्वादि गुणोंके सहित कभी तिर्य्यग् योनि कभी देवयोनिमें उत्पन्न हुआ करता है और मनुष्य लोकसे देवलोक, देवलोकसे मनुष्य लोक, वहांसे अनन्त नरक लोक पाता है। जैसे कोषकार कीट अत्यन्त सूक्ष्म सूत्ररूपी गुणके जरिये आपही बद्ध होता है, वैसे ही यह निर्गुण अक्षर पुरुष इस लोकमें तिर्य्यग् आदि योनियोंमें उत्पन्न होके सिरके रोग, नेत्र रोग, दन्तशूल, गलग्रह, जलोदर, तृषारोग, ज्वर, गण्ड, विशूचिका, श्वित्रकुष्ट अग्निदग्ध श्वास, खांसी और मिरगी आदि सब रोगोंसे दुःख भोग करता है और शरीरमें जो सब दूसरे अनेक प्रकारसे प्राकृत सुख दुःखरूपी द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं, यह उन सब गुणोंको स्वयं ही ग्रहण करके "मैं दुःखी हूं मैं रोगी हूं" इस ही भांति अनुभव किया करता है। कभी तिर्य्यग् योनि और कभी देवयोनिमें उत्पन्न होके अभिमानके कारण उस ही

योनिसे उत्पन्न हुए सब सुकृत अनुभव करता है और मूर्खताके सबब अभिमानी होकर सफेद वस्त्र परिधान मशुवस्त्र धारण, सदा नीचे स्थानमें शयन, मेढ़ककी भांति शयन करना, वीरासनसे बैठना, चीर धारण, सूने स्थानमें शयन और निवास, इष्टक पत्थर, कण्टक पत्थर, भस्म पत्थर, भूमि, शय्यातल, वीरस्थान, जल, कीचड़ और फलक आदि विविध शय्यापर शयन करना फलकी वासनासे मूंजकी करधनी पहननी और वस्त्रोंको त्याग करना बाघके चमड़े, पट्टवास भुर्जत्वच और कण्टक वस्त्रोंको धारण करना, पाटसूत्रके वस्त्र, चीर वसन और दूसरे अनेक प्रकारके वस्त्रोंको पहनना विचित्र रत्न धारण करना, अनेक प्रकार भोजन, एक रात्रिके अनन्तर भोजन, एककालिक भोजन, दिनके चौथे, छठवें और आठवें समयमें भोजन षष्ठाह, सप्ताह, अष्टाह, दशाह और द्वादशाहके अनन्तर भोजन, एक मास उपवास, फल, मूल, वायु, जल, तिलकल्क दही, गोमय, गोमूत्र, शाक फूल, शैवाल, आमद्रव्य, सूखे पत्ते और गिरे हुए फलोंका भक्षण, सिद्धिकी कामनासे विविध कृच्छ्र अनेक प्रकारके व्रत, चिन्ह और विधि पूर्वक चान्द्रायण सेवन, चतुराश्रम विहित और अविहितमार्ग पाखण्डके विविधमार्ग पाशुपत अर्थात् पशुपति सम्मत पञ्चरात्र आदिमें कहे हुए दीक्षायोग विविक्त शिलाच्छाया झरने, निर्जन वन पुलिन, पुण्यजनक देवस्थान, तालाव, पहाड़ गड्ढेके समान गुफा, गूढ़ जापके मन्त्र विविध व्रत, अनेक प्रकारके नियम तपस्या, अनेक तरहके यज्ञ, विधि, वाणिज्य और ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र, इन चारों वर्णोंके व्यवसायका अवलम्बन तथा दीन अन्धे और कृपण पुरुषोंको अनेक प्रकारके धनदान आदि सब कार्य्योंको किया करता है। वह अचर आत्मा इस ही भांति प्रकृतिके संयोगसे शरीर धारण करके मूर्खताके कारण सत रज और तम, इन तीनों गुण तथा धर्म्म, अर्थ और काम, ये त्रिवर्ग "मुझमें विद्यमान है"—ऐसा समझके अभिमान करता है।

हे राजन्! स्वधाकार, वषट्कार, स्वाहाकार, नमस्कार, याजन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह यजन, अध्ययन, जन्म, मृत्यु और विवाद तथा युद्धमें जो कुछ शुभाशुभ कार्य्य हैं, इन सबको ही पण्डित लोग क्रियापथ कहा करते हैं, क्रीड़ाभिलाषिणी प्रकृति सृष्टि और संहार करती है, जैसे सूर्य्य दिनके प्रारम्भमें अपनी किरणोंको फैलाकर दिनके शेषमें उन्हें समेटकर अकेला ही निवास करता है, वैसे ही आत्मा सृष्टिके समयमें सत्वादि गुणोंका विस्तार करके प्रलयकालमें उन्हें अपनेमें लीनकर अकेलाही निवास किया करता है। यह त्रिगुणाधिपति आत्मा इस ही भांति बार बार कल्पित अवस्था, वर्ण, कार्य्य और सत्वादि अनेक प्रकारके हृदयप्रिय ऐसे गुणोंके क्रीड़ार्थ जानता है और कर्म्ममार्गमें अनुरक्त होकर सर्ग तथा प्रलयधर्म्मिणी इस प्रकृतिको विकृत करते हुए त्रिगुणात्मक कार्य्योंको सिद्ध किया करता है। वह कर्म्ममार्गमें प्रवृत्त होकर सब लोगोंको "यह कर्म्मका गुण है, यह फल है और इसे अवश्य करना चाहिये" ऐसा ही ज्ञान प्रदान करता है। हे विभो! प्रकृतिने इस समस्त जगत्को रज और तमोगुणके जरिये आच्छादन करती हुई अन्धीकृत कर रखा है, इस ही निमित्त सुख दुःखरूपी ये सब द्वन्द्व सदा आवर्त्तित हुआ करते हैं, हे नराधिप! इन द्वन्द्वोंको अपना समझनेसे ये इस लोक वा परलोक सर्व्वत्र ही जीवका पीछा किया करते हैं; इसलिये जीवको इन द्वन्द्वोंसे निस्तार पानेका उपाय सब प्रकारसे करनी उचित है। क्यों कि मूर्खतासे आत्मा ऐसा समझता है, कि मैं देवलोकगामी होकर इन्द्र वा सब सुकृत भोग करूंगा और इस लोकमें भी शुभाशुभ कर्म्मोंको भोगूंगा। इस लोकमें सुख

सुखका उपाय सुकृत कर्म्मोंको करना चाहिये, क्योंकि इसे एक बार कर सकनेसे जन्म जन्म जीवन पर्य्यन्त मुझे सुख होगा और यदि मैं इस लोकमें दुष्कृत कर्म्म करूंगा, तो मुझे अनन्तदुःख भोग करना होगा। मनुष्यता महादुःखका कारण है; मनुष्य ही नरकमें डूबता है। और कालक्रमसे नरकसे भी मनुष्यत्व प्राप्त होती है। मनुष्यत्वसे देवत्व, देवत्वसे फिर मनुष्यत्व और मनुष्यत्वसे पर्य्यायक्रमसे नरकमें जाना पड़ता है। जो निरात्मा अथवा चेतनत्व आदि आत्म गुणोंसे परिवृत होकर सदा ऐसा ही जानते हैं वे देव, मनुष्य और नरलोकमें जन्म ग्रहण करते हैं। जीव सदा ममतासे आवृत होकर अनन्तसृष्टिकालमें उस ममतायुक्त शरीरसे भ्रमण किया करता है। जो शुभाशुभ फलात्मक ऐसा कर्म्म करते हैं, वे त्रिलोकमें शरीरी होकर इस ही भांति फल पाते हैं। जो प्रकृतिके शुभाशुभ फलजनक कर्म्म करते हैं, वे तीनों लोकमें इच्छानुसार गमन करके उन सब कर्म्मोंको ग्रास करते हैं। इसलिये तिर्य्यग्योनि देवयोनि और मनुष्ययोनि इन तीनों स्थानोंको प्राकृत जानना चाहिये। सांख्य लोग कहते हैं कि प्रकृति अलिङ्ग अर्थात अनुमेय है; जैसे महदादि कार्य्योंसे प्रकृतिका अनुमान होता है, वैसेही आभास चेतन्यके जरिये पौरुष लिङ्ग अर्थात् पुरुष अनुनामक देहादिके अनुगत चैतन्यका अनुमान हुआ करता है। निर्व्विकार प्रकृतिसाधक वह पुरुष कर्म्मके अनुसार लिङ्गान्तर अर्थात् पुर्य्यष्टक गर्भ लाभ करके प्रणद्वार इन्द्रियवर्गोंमें अधिष्ठान करते हुए इस स्थूल शरीरका अभिमान करता है और इस स्थूल शरीरमें श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रिय तथा वाक् आदि सब कर्म्मेन्द्रिय निज निज गुणोंके सहित गुणोंमें प्रवृत्त हुआ करती है। पुरुष इन्द्रियरहित और प्रणशून्य होके भी "मैं इन कार्य्योंको किया करता हूं, ये इन्द्रियें मेरी हैं और मैं प्रणवान हूं"—ऐसा ही ज्ञान किया करता है। वह मूढ़ता निबन्धनसे अलिङ्ग होनेपर भी लिङ्ग अर्थात् पुर्य्यष्टक, अमर होनेपर भी आत्माको मरणधर्म्मी बुद्धिसे पृथक् होके भी आत्माको बुद्धिमान् अतत्व अर्थात् अवस्तु देह आदिको आत्मतत्व, किसीका हन्ता न होनेपर भी आत्माको हन्ता अचर होके आत्माको चलनेवाला अक्षेत्र होके आत्माको क्षेत्र असर्ग होके आत्माको सर्ग अतपी होके आत्माको तपस्वी अगति अर्थात् गतागतिसे रहित होके आत्माकी गति, संसार रहित होके आत्माका संसारी अभय होके आत्माको भययुक्त और अचर होके आत्माको चर,—ऐसाही ज्ञान किया करता है।

३०३ अध्याय समाप्त।

वसिष्ठ बोले, हे राजन्! पुरुष इस ही भांति प्रकृति संसर्गके वशमें निज मूर्खता और मूर्खोंके सेवाकी समाप्तिमें पतनशील कोटिसहस्र सृष्टिलाभ किया करता है और विलक्षके संयोगसे देव मनुष्य और तिर्य्यग्योनिमें भी मरणशील अनेक स्थान लाभ करता है। इस ही भांति पुरुष प्रकृतिके संयोगसे मूढ़ होकर चन्द्रमाकी भांति फिर उन सहस्र भूतयोनियोंको प्राप्त किया करता है, चिदाभासके सहित मूल प्रकृति, दशों इन्द्रिय और अन्तःकरण चतुष्टय ये पन्द्रह कलायोनि हैं, सोम अर्थात् चिदात्मा षोड़श कला है; यह निश्चय जाने कि वे ही योनिभूत पञ्चदश कला और सोमरूप चिदात्मा षोड़श कलाकी प्रभा नित्य प्रकाशित हुआ करती है। अविद्यावलसे पुरुष बुद्धिहीन होकर योनिभूत उन पन्द्रहों कलामें बार बार निरन्तर जन्म ग्रहण करता है। अनन्तर इसके समस्त भूत उस जायमान पुरुषके धाम अर्थात् आनन्द रूप षोड़श कलाको अव-

सम्पन्न करके फिर जन्म लिया करते हैं, परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म उस षोड़श कलाको सोम अर्थात् चिदात्मरूपसे जानना चाहिये, चिदात्मा इन्द्रियोंसे रक्षित नहीं है, परन्तु वही सत्ता और स्फूर्त्ति प्रदान करके इन्द्रियोंको पालन किया करता है।

हे नृपसत्तम! षोड़श कला प्राणियोंके उत्पत्तिका कारण है, उसके बिना प्राणिसमूह किसी प्रकार भी जन्म ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होते; क्यों कि वह सोलहवीं कला ही प्राणियोंके सृष्टिकार्य्यकी प्रकृति रूप वर्णित हुई है। इस ही लिये पण्डित लोग कहते हैं, कि कार्य्यरूपी प्रकृतिके नष्ट होनेसे ही मुक्ति हुआ करती है। जो लोग उस सोलहवीं कला अर्थात अव्यक्तसंज्ञक प्राकृत देहमें ममता करते हैं। वे लोग उस पचीसवें महात्मा पुरुष विमल विशुद्ध चिन्मय परब्रह्म स्वरूपको न जानकर उस ही देहमें बारबार भ्रमण किया करते हैं कदाचित मुक्ति लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। क्रमसे वे शुद्ध और अशुद्ध लोगोंकी सेवा करके पवित्र तथा अपवित्र हुआ करते हैं।

हे राजन्! वे असङ्ग शुद्धात्मा होके "यह शरीर मेरा है"—ऐसा समझनेसे अशुद्ध होते हैं, ज्ञानवान होके मूर्खोंको सेवा करनेसे मूर्खता प्राप्त हुआ करती है। और प्रतिकूल ज्ञान रहित होके भी त्रिगुणात्मिका प्रकृतिको परिचर्य्याके अनुसार त्रिगुणान्वित हुआ करते हैं।

३०४ अध्याय समाप्त।

जनक बोले, हे भगवन्! जैसे लोकसमाजमें स्त्री और पुरुषोंका सम्बन्ध दृष्ट है, शास्त्रमें अक्षर और चर अर्थात् प्रकृति पुरुषका सम्बन्ध भी उस ही भांति कहा गया है, और जैसे इस लोकमें बिना पुरुषके स्त्री गर्भ धारण नहीं कर सकती, वैसे ही पुरुष भी स्त्रीके बिना आकृति तयार करनेमें समर्थ नहीं होता। इस लिये सब योनियोंमें ही परस्परके सम्बन्ध वा परस्परके गुण संश्रयाधीन हैं, इस ही भांति सब रूप निर्वर्त्तित हुआ करते हैं। परन्तु रातके निमित्त ऋतु कालमें स्त्रीपुरुष दोनोंके सम्बन्ध और गुणसंश्रयसे जैसा रूप उत्पन्न होता है, उसका दृष्टान्त कहता हूं। हे द्विजश्रेष्ठ! पिता-मातामें जो सब गुण विद्यमान हैं, वे सभी विभाग क्रमसे सन्तानमें उत्पन्न हुआ करते हैं। क्यों कि वेद और शास्त्रोंमें वर्णित है, कि अस्थि, स्नायु, मज्जा, तीनों मातासे उत्पन्न होते हैं, इसे मैं जानता हूं और इसलिये इसे अवश्य ही प्रमाणिक समझना होगा। क्यों कि वेद और शास्त्रोंमें जो प्रमाणरूपसे पठित होता है, वह और वेद वा शास्त्र ये दोनों ही सनातन प्रमान हैं। पुरुष प्रकृतिके जड़ता गुणको रोध करके दुःख अवलम्बन करता है. और प्रकृति पुरुषके आनन्द आदि गुणोंको रोध करके चैतन्यता अवलम्बन करती है। इस ही भाति प्रकृति और पुरुष परस्पर गुणरोध और गुणसंश्रय करते हुए नित्य मिलित हुए हैं। हे भगवन्! इसलिये मैं देखता हूं, कि इसमें मोक्ष धर्म्म किसी प्रकार विद्यमान नहीं रह सकता। यद्यपि दूसरा कोई मोक्ष विषयक निदर्शन हो, तो उसे यथार्थ रीतिसे मुझसे कहिये; आप सदा ही प्रत्यक्षदर्शी हैं, आपको कुछ भी अविदित नहीं है। हम मोक्षगामी हैं, इससे जो अनामय, अदेह, अजर, अतीन्द्रिय ईश्वरसे भी अतिरिक्त और नित्य है, हम उसहीको आकांक्षा करते हैं।

वसिष्ठ बोले, हे नरराज! आपने जो यह वेद और शास्त्रके प्रमाण कहे और मन ही मन जैसी धारणा की है, वह ठीक ऐसी ही है; आपने वेद और शास्त्र दोनों ग्रन्थोंमें अभ्यास किया है, परन्तु उसमेंसे यथार्थ अर्थको ग्रहण न कर सके, जो लोग वेद और शास्त्रोंके

अभ्यासमें अनुरक्त होकर उसके मर्म्मको यथावत् ग्रहण नहीं कर सकते, उनका ग्रन्थ-अभ्यास निष्फल है। जो लोग ग्रन्थके अर्थको नहीं जान सकते, वे केवल ग्रन्थका बोझ ढोया करते हैं, जो उसके अर्थको यथार्थ रीतिसे जान सकते हैं, उनका अभ्यास निष्फल नहीं होता, वैसे अर्थवित् पुरुषोंसे यदि कोई ग्रन्थका अर्थ पूछे, तो जिस प्रकार जिज्ञासु पुरुष समझ सके, वैसे ही उसे अवश्य उपदेश देना योग्य है। जो स्थूलबुद्धि पण्डित सभामें ग्रन्थका अर्थ नहीं कह सकता, वह मन्दबुद्धि किस प्रकार निश्चय करके ग्रन्थकी व्याख्या करेगा। जब कि आत्मज्ञानी लोग भी यथार्थ रूपसे ग्रन्थके मतकी व्याख्या करते हुए उपहासको प्राप्त होते हैं, तब अज्ञानी लोग जो हास्यास्पद होंगे उसमें सन्देह ही क्या है। हे राजेन्द्र! इसी समय सांख्य योग और महात्मा जिस प्रकार आत्मज्ञानियोंमें यथार्थ रूपसे दीखते हैं, उसे सुनो। योगी लोग अनुभव करते हैं, सांख्य लोग उसहीका अनुगमन किया करते हैं; इसलिये जो लोग योग और सांख्य दोनोंको ही एक जानते हैं, वेही बुद्धिमान हैं। हे तात! त्वक्, मांस, रुधिर, मेद, पित्त, मज्जा, स्नायु और इन्द्रियां स्त्री पुरुषसे उत्पन्न होती हैं स्त्री-पुरुषकी भांति प्रकृति पुरुषसे शरीर सम्पादित होता है, यह जो वचन पहले मुझसे कहे थे, वह युक्तियुक्त नहीं है; क्यों कि द्रव्यसे द्रव्य, इन्द्रियसे इन्द्रिय देहसे देह और बीजसे बीज उत्पन्न हुआ करते हैं। निरिन्द्रिय बीजशक्ति शून्य, निर्द्रव्य, अदेही निर्गुण महात्मा पुरुषसे किस प्रकार सब गुण उत्पन्न होंगे। समस्त गुण गुणसे ही उत्पन्न होते हैं, और उस हीमें निविष्ट हुआ करते हैं; इसलिये सब गुण प्रकृतिसे उत्पन्न होके उसहीमें लीन होते हैं। त्वचा, मांस, रुधिर, मेद, पित्त, मज्जा, हड्डी और स्नायु, ये आठों शुक्रके जरिये प्रकृतिसे उत्पन्न होती हैं, इसलिये इन सबको प्राकृतिक जानना चाहिये। पुमान जीव, अपुमान पञ्चविषयादि और प्रमाण, प्रमेय तथा प्रमाता ये लिङ्गत्रय प्राकृत हैं। विशुद्ध चिन्मात्र लिङ्गी प्राकृत पुमान् वा अपुमान् कुछ भी नहीं है। जैसे सब ऋतु फल और पुष्पके जरिये सदा मूर्त्तिमान रूपसे मालूम होती है, वैसे ही प्रकृति अलिङ्ग पुरुष पुरुषको प्राप्त होकर आत्मज लिङ्ग महदादि कार्य्योंके जरिये अनुभूत हुआ करती है। इस ही भांति अलिङ्ग पुरुष भी अनुमानसे अनुभूत होता है। हे तात! पचीस तत्व लिङ्गके बीच नियतात्मा, उत्पत्ति विनाशसे रहित, अनन्त सर्व्वदर्शी निरामय पुरुष केवल देहादि गुणोंके अध्यासके कारण गुण रूपसे वर्णित हुआ है। जो गुणवान हैं, उन्हींमें संयोग आदि गुण विद्यमान रहते हैं, निर्गुण आत्मामें किसी प्रकार उक्त गुण विद्यमान नहीं रह सकते; इसलिये गुणदर्शी लोग ही उसे विशेष रूपसे जान सकते हैं, जब कोई पुरुष प्राकृतकाल आदि गुणोंको जय करे, तब वह देहादिमें आत्मभावरूप भ्रम परित्याग करके परम पुरुषका दर्शन करनेमें समर्थ होगा। सांख्य और योगी लोग जिसे बुद्धिसे अतिरिक्त, अबुद्ध जड़ अहङ्कार आदिके परित्यागसे बुध्यमान, महाप्राज्ञ, अप्रबुद्ध अर्थात् अज्ञान गुणातीत, गुणसम्बन्धरहित अन्तर्य्यामी, नित्य, सर्व्वकार्य्योंके नियन्ता, प्रकृति और महदादि गुणोंकी अपेक्षा पचीसवीं कहके निर्द्देश करते हैं, सांख्य और योगमार्गमें कुशल पण्डित लोग ही उसे जान सकते हैं बाल्य आदि अवस्था और जन्मभयसे भीरु ज्ञानवान् पुरुष जब प्रमाता जीवको यथार्थ रूपसे जान सकेंगे, तब उनके जीव ज्ञानके समकालमें ब्रह्मज्ञान उदय होगा। हे अरिदमन! ज्ञानवान पुरुष जीव और ईश्वरके अभेद ज्ञानको शास्त्रसम्मत सम्यक वा पृथक् कहा करते हैं और अज्ञानी लोग जीव ईश्वरके अभेद ज्ञानको असम्यक्, अपृथक् तथा

पृथक् कहा करते हैं, क्षर और अक्षर अर्थात् जीव ब्रह्मका निदर्शन परस्पर इस ही भांति कहा गया है, परन्तु पण्डित लोग एक मात्र अविनाशी पुरुषको अक्षर और अनेक रूप विनाशीको क्षर कहा करते हैं। जब पुरुष रज्जु सर्पकी भांति भ्रमात्मक पञ्चविंशति तत्वकी सब भांतिसे आलोचना करनेमें प्रवृत्त होता है, तब वह षड़्विंश आत्माका दर्शन करते हुए आत्माके एकत्व शास्त्रसम्मत और नानात्व अशास्त्र, इसे विशेष रूपसे जानता है, तत्वजनित और निस्तत्व अजन्य दोनोंका निदर्शन पृथक् है, परन्तु मनीषी लोग पञ्चविंशति सर्गको तत्व कहके निर्द्देश करते हैं, पञ्चविंशके अतिरिक्त षड़्विंश निस्तत्व है, और पञ्चविंशात्मक सर्गके प्रत्येक पांच पांच वर्ग विषयक जो ज्ञान है वही सत्य है।

२०५ अध्याय समाप्त।

जनक बोले, हे ऋषिसत्तम! आपने अनित्य क्षर और नित्य अक्षरके अनकत्व और एकत्वरूप जो दो दृष्टान्त प्रदर्शित किये, उनमेंसे एकत्वमें बन्ध और मोक्ष विषयक व्यवस्थाकी अनुपपत्ति तथा अनेकत्वमें आत्मनाशका प्रसङ्ग;—इस प्रकारके संशयमें दोनों पक्षमें अवलोकन करता हूं। हे अनघ! मैं स्थूलबुद्धिके कारण मूर्ख और ज्ञानवान् पुरुषोंसे बध्यमान जीवात्माका तत्व निश्चय रूपसे नहीं जान सकता हूं; और आपने जो क्षर तथा अक्षर अनेकत्व एकत्वरूप कारण निर्द्देश किया है, बुद्धिकी अस्थिरता निबन्धनसे उसे भी मैं निश्चय करनेमें समर्थ नहीं होता हूं। हे भगवन्! इसलिये पहिले कहे हुए नानात्व, एकत्व बुद्धाता, अप्रतिबुद्ध, प्रधानादि, बुध्यमान जीव नित्य अक्षर, अनित्य क्षर वस्तुतत्व-विवेक सांख्य, चित्तवृत्ति निरोधयोग, पृथक् भेद और अपृथक् अभेद, इन सबको फिर यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

वसिष्ठ बोले, हे महाराज! आपने जिन विषयोंको पूछा है, मैं उनका यथार्थ वृत्तान्त तुमसे विशेष करके कहूंगा; अब आप मेरे समीप पृथक् रूपसे योगकृत्य सुनिये। योगियोंको योग अवश्य करना योग्य है, योगरूप ध्यान ही उनका परमबल है; विद्यावित् पुरुष उस ध्यानको चित्तकी एकाग्रता और प्राणायाम भेदसे दो प्रकारका कहा करते हैं। उनमेंसे प्राणायाम सगुण विषयमें और चित्तकी एकाग्रता निर्गुण विषयमें कही गई है। हे नरनाथ! भोजन, मूत्र और मलत्याग, इन तीनों कामके अतिरिक्त पुरुष आलसरहित होके सब समयमें ही योगका अनुष्ठान करे, बुद्धिमान मनुष्य शब्द आदि विषयोंसे अन्तःकरणके सहित इन्द्रियोंको निवृत्त करते हुए पवित्र होकर परमात्मतत्व जाननेके निमित्त नासिका पुटमें वायुको आकर्षण करके अंगूठेसे सिर पर्य्यन्त सब शरीर वायुके जरिये परिपूर्ण करके धीरे धीरे ब्रह्मरन्ध्रसे मस्तकमें, मस्तकसे भौंके बीच, भ्रूमध्यसे नेत्रमें; नेत्रसे नासामूलमें, नासामूलसे जिह्वामें, जिह्वासे कण्ठकूपमें, कण्ठकूपसे हृदयमें, हृदयसे नाभिस्थलमें, नाभिस्थलसे पीठ, पीठसे फिर हृदय, हृदयसे गुह्य, गुह्यसे उरुमूल, उरुमूलसे दोनों जानु, जानुसे चितिमूलमें, चितिमूलसे जङ्घामें, जङ्घासे गुल्फ और गुल्फसे पैरके अंगूठेमें वायुका आकर्षण तथा ध्यान धारणा समाधि और प्रकृति पुरुषका भेद ज्ञान, इन बाईस प्रकारके प्राणायामके जरिये मनीषी लोग जिसको सर्व्व शरीरमें स्थित और अजर कहा करते हैं, उस चौबीस तत्वके अतिरिक्त जीवको बाईस प्रकार प्रेरण करे। हे राजन्! मैंने ऐसा सुना है, कि उस बाईसों प्रकारके प्रेरणसे ही आत्माको सदा जाना जासकता है और यह निश्चय है, कि जिसका चित्त काम आदिके जरिये कभी आहत नहीं हुआ है, उन्हें ही यह योगरूप व्रत अनुष्ठेय है, ऐसे लोगोंके अतिरिक्त दूसरोंका

अनुष्ठेय नहीं है। योगाचारी पुरुष ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय और सब प्रकारकी आसक्तिसे मुक्त होकर रात्रिके प्रथम और शेष भागमें आत्मामें मन संयुक्त करें।

हे मिथिलेश्वर! जो लोग मनके जरिये इन्द्रिय-वर्गोंको स्थिरीकृत करके बुद्धिके सहारे चित्त स्थिर करते हुए पत्थरकी भांति निश्चल स्थाणु-प्राय अकम्प और पहाड़की भांति अविचल होसके, विधि वा विधानवित् पण्डित लोग उन्हें ही योगी कहा करते हैं और जो लोग समाधि समयमें सुनना, सूंघना, चखना देखना और छूना आदि विषय ज्ञान तथा अन्य विषयक मनन वा अभिमान रहित काष्टके समान किसी विषयका बोध नहीं करते, मनीषी लोग उन्हें विशुद्ध स्वभावसे युक्त योगी कहा करते हैं। जैसे निर्व्वात स्थानमें जलता हुआ दीपक ऊर्द्ध अध और तिर्य्यग् गतिसे रहित होकर अविचलित रूपसे प्रकाशित होता है, वैसेही समाधिस्थ पुरुष समाधि समयमें बुद्धि आदि अन्तःकरण धर्म्मसे रहित होकर निश्चल भावसे प्रकाशित होता है। हे तात! जिस परमात्माके साक्षात्कार होनेसे हृदयस्थ अन्तरात्माका 'अहं ब्रह्म' यह ज्ञान ज्ञेय और ज्ञाता, ये तीनों मेरे समान पुरुषोंके जरिये अभिहित नहीं होते, समाधि समयमें समाधिस्थ पुरुष उस परमात्माको देख सकते हैं; उस समयमें धूमरहित अग्नि, रश्मिवान् सूर्य्य और आकाशस्थ वैद्युत अग्निकी भांति आत्मा योगियोंके हृदयमें प्रकाशित हुआ करती है, जिस समय महात्मा धृतिमान मनीषी वेदज्ञ ब्राह्मण लोग उस अयोनि अमृत स्वरूप परब्रह्मका दर्शन करते हैं, तब वे उसे सूक्ष्म महत्तर, सर्व्व भूतोंमें विद्यमान और सबके अगोचर ऐसा ही वचन कहा करते हैं। हे तात! ज्ञानरूप द्रविणयुक्त मनुष्य मनोमय दीपकके जरिये महान् तमोगुणके पारमें स्थित ईश्वरातिरिक्त भूरादि भुवनके कर्त्ता उस परमात्माका दर्शन करते हैं। सर्व्वज्ञ वेदपारग ब्राह्मण लोग इस ही प्रकार कहा करते हैं, कि उस निर्म्मल तमसे रहित वाक्य मनके अगोचर निरुपाधि ब्रह्मका बोध होनेपर मनुष्य संसार-पासको छेदन करता है। हे राजन्! मैंने जो कहा, इसे ही योग कहते हैं, इसके अतिरिक्त योगका और कुछ भी लक्षण नहीं है। इस योगबलसे ही महात्मा योगी लोग सर्व्वदर्शी अजर परमात्माका दर्शन किया करते हैं। हे तात! मैंने तुम्हारे समीप यहां पर्य्यन्त योग-ज्ञानको यथावत् वर्णन किया; परन्तु जिसके जरिये सब भ्रम दूर होके परमात्म दर्शन होता है; उस सांख्य ज्ञानको फिर तुम्हारे समीप कहता हूं सुनो।

हे राजसत्तम! मैंने सुना है, कि प्रकृतिवादी आत्मदर्शी सांख्यलोग पहली प्रकृतिको अव्यक्त कहते हैं और उसहीसे दूसरी महत्, महत्से तृतीय अहङ्कार और अहङ्कारसे सूक्ष्म तन्मात्रकी उत्पत्ति होती है,—ऐसा ही कहा करते हैं। अव्यक्तसे पञ्चतन्मात्र पर्य्यन्त इन आठोंको प्रकृति और अन्तःकरणके सहित एकादश इन्द्रिय तथा पञ्च स्थूल भूत, इन सोलहोंको विकार कहते हैं। इनमेंसे विषयादि पञ्चभूत विशेष रूपसे और शेष ग्यारहों निज निज विषयोंके प्रकाशक होनेसे इन्द्रिय रूपसे वर्णित हुए हैं। सदा सांख्य मार्गमें रत मनीषी विधि विधानवित् पण्डितोंने सांख्यके बीच चौबीस तत्वोंको यहां-तक ही विचार किया है। हे नृपसत्तम! जो वस्तु जिससे उत्पन्न होती है, वह उसहीमें लीन हुआ करती है। सृष्टि कालमें सब प्राणि अन्तरात्मासे अनुलोम क्रमसे उत्पन्न होकर प्रति-लोममें लीन होते हैं। इस ही प्रकार सब गुण समुद्रसे उत्पन्न हुई लहरकी भांति सदा गुणोंसे ही उत्पन्न होके उसीमें लीन हुआ करते हैं। हे राजेन्द्र! सर्ग प्रलय केवल एक ही नहीं है, प्रकृति आदिकी उत्पत्ति और प्रलय हुआ करती

है। प्रलयकालमें पुरुषका एकत्व और सृष्टि कालमें उसका अनेकत्व होता है; ज्ञानवान् पण्डित लोग ऐसा ही जानते हैं। अव्यक्त प्रकृति ही इस एकत्व और अनेकत्वका निदर्शन है, इसलिये जो लोग प्रकृतिके अर्थको यथार्थ रीतिसे जानते हैं, वे ही एकत्व और अनेकत्वके कारणको समझ सकते हैं।

हे राजेन्द्र! चिदात्मा प्रसवात्मिका प्रकृतिको अनेक प्रकार विभक्त किया करता है वह प्रकृतिही क्षेत्ररूपसे वर्णित हुई है, महात्मा पञ्चविंशति तमपुरुष उसमें ही अधिष्ठान करता है, इसीसे योगी लोग पुरुषको अधिष्ठाता कहा करते हैं। मैंने ऐसा सुना है, कि क्षेत्रोंके अधिष्ठान निबन्धनसे पुरुष अधिष्ठाता होता है और वह अव्यक्त प्रकृतिको क्षेत्र जानता है, इस ही सबबसे क्षेत्रज्ञ रूपसे वर्णित हुआ करता है; शास्त्रमें ऐसा कहा है, कि जब पुरुष प्राकृतिक पुर्य्यष्टक क्षेत्रमें प्रविष्ट होता है, तब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, ये दोनों पृथक् रूपसे कहे जाते हैं। अव्यक्त क्षेत्र है, पञ्चविंशतितम पुरुष ज्ञाता है, इसलिये ज्ञान और ज्ञेय परस्पर पृथक् हैं। इनमेंसे अव्यक्तज्ञान और पचीसवां पुरुष ज्ञेयरूपसे वर्णित हुआ है। शास्त्र अव्यक्तको क्षेत्र, सत्त्व, अर्थात् बुद्धि वा ईश्वर कहा करता है। हे राजन्! साङ्ख्य दर्शन इतना ही है। इस दर्शनके अनुसार सांख्य लोग स्थूल सूक्ष्म क्रमसे चिदात्मामें जो जगत्प्रपञ्च लीन होता है, उसे देखते हैं और प्रकृतिको जगत्का कारण कहते हैं। तथा वे लोग प्रकृतिके सहित चौबीसों तत्वोंको यथावत् गिनती करके पचीसवें पुरुषको निस्तत्त्व कहा करते हैं। पचीसवां बुध्यमान जीव अप्रबुद्ध प्रकृतिको परित्याग करके आत्मदर्शन कर सकनेसे वह केवल शुद्ध चैतन्यरूपसे निवास करता है।

हे राजन्! मैं तुम्हारे समीप यहां पर्य्यन्त सम्यक्‌दर्शन यथावत् वर्णन किया, लोग इसे विशेषरूपसे जाननेसे ही समत्व ही लाभ किया करते हैं। परब्रह्मके साक्षात्कारको ही सम्यक् दर्शन कहते हैं; इसहीमें सर्पकी भांति अन्यादर्शन भ्रान्तिदर्शन है, वह सम्यक् दर्शन नहीं है; जैसे निर्गुण पुरुषसे विभिन्नमदादि व्यवहारिक प्रथाके अनुसार इन्द्रिय निबन्धन प्रत्यक्षरूपसे गिना जाता है, वैसे ही निर्गुण पुरुषका भी दर्शन हुआ करता है। इस ही भांति आत्मदर्शी विदेहमुक्त पुरुषोंको पुनरावृत्ति निवारित होती है और सदेहमुक्त पुरुषके अक्षरत्व निबन्धनसे सत्य काम और सत्यसङ्कल्प आदि ऐश्वर्य्य समाधिकालका निरुपाधिक सुख और अव्यय भाव हुआ करता है। हे अरिदमन! जो लोग एक मात्र परमात्मदर्शनके अतिरिक्त अनेक वस्तुओंका दर्शन करते हैं, वे पूर्णदर्शी नहीं हो सकते; बल्कि वे बार बार जन्म लेके इस लोकमें शरीर धारण किया करते हैं; और जो लोग अर्थके सहित इन वाक्योंको विशेष रूपसे जानेंगे, वे लोग सर्व्वज्ञताके कारण शरीरके वशवर्त्ती न होंगे। हे राजन्! अव्यक्त सर्व्व और पचीसवां पुरुष असर्व्वरूपसे कहा गया है, इसलिये जो लोग इस असर्व्व पचीसवें पुरुषको सब भांतिसे जान सकते हैं, उन्हें फिर संसारके दुःखोंको नहीं भोगना पड़ता।

३०६ अध्याय समाप्त।

वसिष्ठ बोले, हे नृपसत्तम! मैंने आपके समीप यहांतक ही सांख्यदर्शन वर्णन किया अब फिर विद्या और अविद्याके विषयको विस्तारपूर्व्वक कहता हूं सुनो। पण्डित लोग सर्ग और प्रलय धर्म्मयुक्त अव्यक्तको अविद्या तथा सर्ग वा प्रलयधर्म्मरहित पचीसवें पुरुषको विद्या कहा करते हैं। हे तात! ऋषियोंने सीखा शास्त्रको सम्यक् निदर्शनरूप परस्परको विद्या जिस

प्रकार वर्णन की है, उसे तुम्हारे समीप विद्या-सके सहित कहता हूं, सुनो। कर्म्मेन्द्रियोंकी विद्या बुद्धीन्द्रिय है बुद्धीन्द्रियकी विद्या विशेष अर्थात् विषयादि पञ्चस्थूलभूत विशेषकी विद्या मन, मनकी विद्या पञ्चमहाभूत, पञ्चभूतकी विद्या अहंकार, अहंकारकी विद्या बुद्धि अर्थात् महत्तत्व महदादि सब तत्वोंकी विद्या है, अव्यक्त परमेश्वरी प्रकृति है, ये विद्या सब पुरुषोंकी ज्ञेय हैं; इसलिये इनमें परम विधि वर्णित हुई है; अव्यक्तकी परम विद्या पचीसवां पुरुष है। हे राजन्! सर्व्व ज्ञानका ज्ञेय सर्व्व अव्यक्त कहा गया है और अव्यक्त ज्ञान, पचीसवां पुरुष ज्ञेय तथा अव्यक्त ज्ञान पञ्चविंशति तम पुरुष ज्ञाता है, यह पहिले कहा गया है। हे राजन्! मैंने विद्या और अविद्याको यथार्थ रीतिसे तुम्हारे समीप वर्णन किया; परन्तु पहिले जो क्षर और अक्षर कहके वर्णित हुआ है, उसे विशेष रीतिसे कहता हूं, सुनो। अनादि निबन्धनसे प्रकृति और जीव दोनों ही अक्षर रूपसे कहे गये हैं, और भूतोंके सहित विज्ञानघन आत्माका भी नाश होता है, इस श्रुतिके सबब प्रकृति तथा जीव दोनों ही क्षर रूपसे वर्णित हुए हैं। परन्तु मुझे जैसा ज्ञान है, उसके अनुसार मैं इनका कारण यथार्थ रूपसे कहता हूं। ब्रह्मदर्शी ब्राह्मण लोग इस प्रकृति और जीव दोनोंको ही अनादि निबन्धन ईश्वर और तत्व कहके व्याख्या करते हैं और सर्ग वा प्रलय धर्म्मके कारण महदादि गुणोंको सृष्टिका निमित्त बार बार विकृत इस अव्यक्तको अक्षर कहा करते हैं। और परस्पर अधिष्ठानके हेतु पचीसवां चिदाभास जीव वा महदादि गुणोंको उत्पत्ति स्थान कहके इसे क्षेत्र कहा करते हैं, इसलिये जीवको भी अक्षर कहना पड़ेगा। हे तात! जब योगी लोग अव्यक्त आत्मा अर्थात् शुद्ध चैतन्य स्वरूप परब्रह्ममें गुणोंको लीन करते हैं, तब उन गुणोंके सहित पचीसवां पुरुष भी लीन होनेपर उस समय जैसे केवल एकमात्र प्रकृति ही विद्यमान रहती है, वैसे ही पचीसवां क्षेत्रज्ञ पुरुष भी निज उत्पत्ति स्थान छब्बीसवें परब्रह्ममें लीन होनेपर उस समय एकमात्र ब्रह्म ही विद्यमान रहता है। हे विदेहराज! जब पचीसवां क्षेत्रज्ञ पुरुष निर्गुण परब्रह्मको प्राप्त होता है, तब महदादि गुणोंसे युक्त अव्यक्त प्रकृति और देहाश्रित प्रत्येक श्रोत्र आदि गुणोंमें अविद्यमानताके कारण क्षरत्वको प्राप्त हुआ करता है। इस ही भांति क्षेत्रज्ञ भी क्षरत्वको प्राप्त हुआ करता है। परन्तु मैंने ऐसा सुना है, कि यह क्षेत्रज्ञ पुरुष क्षेत्रज्ञान अर्थात् प्रकृति ज्ञानसे रहित होनेसे ही स्वभाविक निर्गुण होता है। हे राजन्! यह क्षेत्रज्ञ स्वभावसे क्षर होनेपर भी निर्व्विकल्प समाधिके समयमें जब गुणवती प्रकृतिको अपनेसे पृथक् बोध करता है, तब अपना निर्गुणत्व जान सकता है। और जब क्षेत्रज्ञ ज्ञानवान होकर "मैं अन्य हूं, प्रकृति मुझसे भिन्न है" ऐसा समझता है, तब प्रकृति परित्याग करनेसे वह केवल शुद्ध रूपसे स्थिति करता है। हे राजेन्द्र! प्रकृति परित्यक्त होनेसेही यह क्षेत्रज्ञ पञ्चविंशतितम रूप संज्ञा वा मिश्रभाव परित्याग करता है, क्यों कि क्षेत्रज्ञ प्रकृतिके सहित मिश्रित हुआ रहता है। परन्तु जब क्षेत्रज्ञ प्राकृत गुणोंको घृणास्पद बोध करता है, तब वह परब्रह्मका दर्शन करके फिर उसे परित्याग करना नहीं चाहता। बल्कि उस समय उसके अन्तःकरणमें इस प्रकार ज्ञान उदय होता है, कि मैंने क्या किया। जैसे मछली अज्ञानके कारण जालकी अनुवर्त्ती होती है, वैसे ही मैं इस लोकमें इस कालरूप प्राकृत शरीरका अनुवर्त्ती होता हूं। जैसे मछली जलको अपना जीवन समझके एक तालावसे दूसरे तालावमें जाती है। वैसे ही मैं भी मोह-

मछली एक देह छोड़के देहान्तरका अनुवर्ती होता हूं, और जैसे मछली मूर्खताके कारण अपनेको जलसे अलग नहीं समझती, वैसे ही मैं भी अज्ञानके वशमें होकर पुत्र आदिको आत्मासे पृथक् नहीं समझता हूं। इसलिये मैं अधम हूं, मुझे धिक्कार है। क्यों कि मैं मोहके सबब इस विपदग्रस्त शरीरका बार बार अनुवर्ती होता हूं। मैं चाहे कोई क्यों न हूं, इस संसारमें यही मेरा सखा है, इसके सङ्ग हमारी योग्यता है, इसके सङ्ग मैंने समता और एकता लाभ की है, और इसके साथ मैं अपनी समानता देखता हूं ये निष्कपट हैं, मैं इस प्रकार हूं; क्यों कि अज्ञानतासे मैं इस जड़-स्वभाव प्रकृतिके सहित प्रवृत्त हुआ हूं। मैं आसक्ति रहित होके भी समङ्ग प्रकृतिके सहित इस कालरूप देहमें निवास करता हूं, और इस प्रकृतिके वशमें होके यह जो काल स्वरूप शरीर है, उसे नहीं जान सकता। उत्तम देवता, मध्यम मनुष्य और अधम तिर्य्यग् रूपसे विकृत प्रकृतिमें मैं किस प्रकार निवास करूं, यह इसी प्रकार है, अब इसके सङ्ग मेरा सह-वास होनेसे मैं कभी आत्माको न जान सकूंगा। इसलिये वञ्चना पूर्व्वक इस कालरूप प्रकृतिका सहवास त्याग करना ही उचित बोध होता है। मैं जो निर्व्विकार होके भी विकार स्वरूप प्रकृतिसे वञ्चित हुआ हूं, उसमें उसका कुछ अपराध नहीं है, अपना ही सारा अपराध स्वीकार करना होगा। जब मैं मूर्खताके सबब बाह्यविषयोंको भोग करनेकी अभिलाषासे इस प्रकृतिमें आसक्त हुआ हूं, तब अमूर्त होनेसे भी उस ही योनिमें वर्त्तमान रहनेसे मेरा चित्त ममतासे आकृष्ट होनेपर हमारा कितना अनिष्ट हुआ है, वह अवक्तव्य है। जो हो, अब इस प्रकृतिसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है; क्यों कि यह प्रकृति अहंकारके जरिये आत्माके सर्व्वज्ञत्व आदि सब गुणोंको आवरण करती हुई अनेक शरीरमें विभक्त करके बार बार मुझे संसारमें नियुक्त करती है। जो ममता सदा अहंकारके जरिये हमारे बुद्ध्यादि धर्मोंका आवरण करती है, वह इसी प्रकृतिमें ही विद्यमान रहे, मैं जो ममतारहित और अहंकारशून्य हूं, उसे इस समय जान लिया है। इसलिये मैं प्रकृतिको परित्याग करके निरामय निर्द्वन्द्व परमात्माका आश्रय करूंगा। इस परमात्माका आसरा करनेसे अवश्य ही मेरा मङ्गल होगा; इसलिये इसके सङ्ग समता लाभ करूंगा। कदापि जड़-स्वभाववाली प्रकृतिके सङ्ग संसर्ग न करूंगा। जब पचीसवां पुरुष इस ही प्रकार अनामय परमात्माको समझ सकेगा; तब परमात्म बोधके सबब क्षरको परित्याग करके अक्षरत्व लाभ करेगा। हे मैथिल! अव्यक्त और व्यक्त धर्म्मयुक्त सगुण तथा निर्गुण है, उसमेंसे जो लोग अव्यक्तका भी आदि भूत निर्गुण परब्रह्ममें दर्शन कर सकते हैं, वेही ब्रह्मत्व लाभ करते हैं। हे राजन्! क्षर और अक्षरके वेदविहित अनुभवयुक्त ज्ञानसे पूरित सूक्ष्म सन्देहरहित निर्दोष, इस निदर्शनको मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया; फिर यथाश्रुत वही विषय तुमसे फिर कहता हूं, सुनो। दोनों शास्त्रोंके अनुभवके अनुसार सांख्य और योग दोनों ही मेरे जरिये कहे गये हैं; परन्तु जो शास्त्र सांख्योक्त है, उसे ही निश्चय योगदर्शन जानो। हे पृथ्वीपाल! मैंने शिष्योंके हितकामनासे उनके समीप इस प्रबोधक सांख्यज्ञानको विशिष्ट रूपसे प्रकाशित किया है। बुद्धिमान पण्डित लोग इस शास्त्रको बृहत् और शीघ्र फल देनेवाला कहते हैं; इसलिये योगी लोग वेद और शास्त्रका अत्यन्त ही समादर करते हैं। हे नरनाथ! सांख्य लोगोंने सांख्य शास्त्रमें पञ्चविंशति तत्वके अतिरिक्त तत्व स्वीकार नहीं किया है; उन लोगोंका जो परम तत्व है, उसे ही यथावत् वर्णन किया है। सांख्य लोग

कहते हैं, कि लोग मूर्खतासे नित्य प्रबुद्ध परमात्मा और जीवके एकत्व स्वरूपको न जानकर दोनोंमें भेद कल्पना किया करते हैं; परन्तु यथार्थमें योगसे जीव ब्रह्मकी एकता मालूम हुआ करती है।

२०७ अध्याय समाप्त।

वसिष्ठ बोले, हे राजन्! अनन्तर बुद्ध परमात्मा वा सत्व आदि गुणोंकी विधिकर्त्ता अबुद्ध जीवका विषय कहता हूं, सुनो। परमात्मा मायाके सहारे अपनेको विश्व, तैजस, प्राज्ञ, विराट्, सूत्रात्मा और अन्तर्य्यामी रूपसे अनेक भागमें विभक्त करके उन सब रूपोंको यथार्थ कहके बोध करता है। उस समय बुध्यमान जीव "मैं कर्त्ता, मैं भोक्ता हूं" इस ही प्रकार अभिमानके अनुसार सत्वादि गुणोंको धारण करते हुए स्रष्टादिके कर्त्तृत्वस्वरूपसे विकृत होकर बुद्ध परब्रह्मको यथार्थस्वरूपसे नहीं जान सकता।

हे प्रजानाथ! इस लोकमें क्रीड़ाके निमित्त जीव बारम्बार विकृत हुआ करता है और कार्य्यके सहित अज्ञान अर्थात् यह घट है मैं आपको नहीं जानता, "इस ही भांति अविद्या कार्य्य घट आदि और आत्माश्रित अज्ञानका अनुभव करता है, इसहीसे लोग उसे बुध्यमान कहके निर्द्देश करते हैं। हे तात! अव्यक्त अचेतन होनेसे कौन वस्तु सगुण है, कौन निर्गुण है, उसे किसी प्रकार भी जाननेमें समर्थ नहीं होता, इस ही लिये लोग उसे अप्रतिबुद्ध कहा करते हैं। वेदमें ऐसा प्रसिद्ध है, कि अव्यक्त प्रकृति, यद्यपि पञ्चविंश बुद्ध्यमान जीव सङ्ग होनेसे उसे जान सकता है। तथापि असङ्ग परमात्माको नहीं जान सकता। पुरुषको अस्फुट अविकारी होनेपर भी सङ्गत्व निबन्धनसे लोग उसे मूढ़ कहा करते हैं; और महात्मा पचीसवां पुरुष कार्य्यके सहित अज्ञान अर्थात् यह घट है, मैं आपको नहीं जानता" इस ही प्रकार अविद्याकार्य्य घट आदि और आत्माश्रित अज्ञानका अनुभव करता है, इसहीसे लोग उसे बुध्यमान कहा करते हैं। उस ही निमित्त परमात्माको नहीं जान सकता, परन्तु केवल चैतन्यस्वरूप निर्म्मल बुद्ध अप्रमेय सनातन छब्बीसवां परमात्मा सदा चतुर्विंश अव्यक्त और पचीसवें पुरुषको जाननेमें समर्थ है। हे तात! जो-लोग दृश्य और अदृश्य अर्थात् कार्य्य तथा कारण रूप स्थूल सूक्ष्म समस्त पदार्थोंमें सदा स्वरूपसे अनुगत रहते हैं, वे केवल सत्मात्रसे ही षड्विंश शब्दसे कहे गये हैं; इस ही लिये मनीषी लोग इस सजीव शरीरस्थ उस षड्विंशको अव्यक्त ब्रह्म कहके बोध करते हैं। जब बुध्यमान जीव अपनेको "मैं अन्य हूं" ऐसा जानता है, तब केवल सत्स्वरूप षड्विंश, पचीसवां पुरुष और चतुर्विंश अव्यक्त प्रकृतिको प्रत्यक्ष करके उसे पराजय करनेमें समर्थ होता है, तब उसकी सर्व्वश्रेष्ठ विशुद्ध ब्रह्मविषयिणी बुद्धि उदय हुआ करती है।

हे राजशार्दूल! उस ब्रह्मविषयक विद्याका उदय होने पर षड्विंश धर्म्मबुद्धत्व लाभ करके सर्ग और प्रलयधर्म्मवाली प्रकृतिको परित्याग किया करता है। जो निर्गुण होके सगुण अचेतन प्रकृतिको जान सकते हैं, वे षड्विंश होते हैं, इसलिये अव्यक्त प्रकृतिका साक्षात्कार होनेसे ही जीव षड्विंश हुआ करता है। पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जीव तीनों उपाधिसे मुक्त होकर षड्विंशके सहित मिलित होनेपर अजर, अमर, अनारोपित, नित्य अपरोक्ष परमात्माको पाता है। हे मानद! षड्विंश परमात्मा प्रत्यक्ष परि दृश्यमान शरीर आदि तत्वोंका आश्रय होनेपर भी तत्वरूपसे न माना जायगा; क्यों कि मनीषी लोग पञ्चविंश पर्य्यन्त ही तत्व कहा करते हैं। हे तात!

कार्य्य और कारण रूप उपाधि रहित ज्ञान-स्वरूप परब्रह्म कार्य्यभूत महदादि तत्वोंमें कदापि विद्यमान नहीं रह सकता ; क्यों कि यह निज तत्व बुध्यत्व लक्षण "मैं ब्रह्म हूं" ऐसी वृत्ति भी परित्याग किया करता है। जीवके अन्तःकरणकी वृत्ति सदा षड्विंश आकारमें परिणत होने पर वह अजर और अमर होकर बलपूर्व्वक निश्चयही षड्विंशके सङ्ग समता लाभ करता है। जीव प्रबोध स्वरूप षड्विंश परब्रह्मके जरिये प्रबोधित होके भी अज्ञान वशसे उस परब्रह्मको न जान सकनेसे उस ही अज्ञानके अनुसार अनेकत्व अर्थात् प्रपञ्चकी उत्पत्ति होती है यह सांख्य और वेदमें वर्णित हुआ है। और जब ज्वरात्मक जीव चैतन्यतायुक्त होकर अपनेको "अहं" इस रूपसे नहीं बोध करता, उस ही समय उसका एकत्व हुआ करता है। हे मिथिलाधिपति नरेन्द्र! सुखादि संसर्ग अहंकाराभिमानी जीव जब ज्ञानके अगोचर उस षड्विंशके सहित समता लाभ करता है, तभी वह निःसङ्ग होता है। परन्तु जब जीव अज निःसङ्ग सर्व्वव्यापी षड्विंशको प्राप्त होकर विशेष रूपसे उसे जान सकता है, तभी वह अव्यक्त प्रकृतिको परित्याग किया करता है। इस ही प्रकार जब षड्विंशका बोध होता है, तब उसे चौबीस तत्व असार मालूम होते हैं। हे पाप रहित! वेदविहित अनुभवके अनुसार मैंने तुम्हारे समीप अप्रतिबुद्ध, क्षर बध्यमान और अक्षर बुद्ध ईश्वर विषयका यथावत वर्णन किया ; परन्तु इस ही भांति शास्त्रके अनुसार अनेकत्व और एकत्वका विवरण अनुभव करो। जैसे उडुम्बरके सहित मशक और जलके संग मछलीकी परस्पर विभिन्नता मालूम होती है, वैसेही प्रकृतिके संग पुरुषका पार्थक्य, अनेकत्व और एकत्व मालूम करो। परन्तु सांख्य शास्त्रमें ऐसा कहा है, कि प्रकृतिको अपनेसे पृथक् जाननेसे ही उसकी मुक्ति और उसही समयमें एकत्व व्यवहृत होती है नहीं तो उसकी सदा नानात्व व्यवहृत हुआ करती है। कवि लोग कहते हैं, कि इस पञ्चविंश पुरुषके शरीरमें जो षड्विंश परब्रह्म विद्यमान है, अव्यक्त ज्ञान और अज्ञानके विषय महदादिकोंसे उसे विमुक्त करना होगा, और ऐसा निश्चय है, कि अज्ञान नष्ट होनेसे ही षड्विंश परमात्मा मुक्त होता है, नहीं तो उसके मुक्ति लाभकी सम्भावना नहीं है। हे पुरुष श्रेष्ठ! यह चिदात्मा जीव इस लोकमें क्षेत्रके सहित एकीभूत होकर क्षेत्र-धर्म्मा होता है, और शुद्ध बुद्ध परमात्माके सहित मिलित होनेसे विशुद्ध धर्म्मा, मुक्तके संग संयुक्त होनेसे विमुक्त धर्म्मा वियोग धर्म्माके सहित मिलनेसे विमुक्तात्मा विमोक्षि संसर्गसे विमोक्ष शुचिकर्म्मा सहवाससे शुचि, विमलात्मके सहित एकत्रित होनेसे विमल आत्मा केवल सम्बलित होकर कैवलात्मा स्वतन्त्र संयोगसे स्वतन्त्र होके स्वतन्त्रता लाभ किया करता है।

हे महाराज! मैंने तुम्हारे समीप इस यथार्थ तत्वको यथावत वर्णन किया है, आप मत्सरता रहित होके विशुद्ध आद्य सनातन परब्रह्म स्वरूप यह अर्थ परिग्रह करिये। हे राजन्! इस वेदमार्गमें श्रद्धाहीन प्राणियोंके प्रणत होनेसे उन्हें प्रबोधित करने और तत्परत प्यासे लोगोंको आप ज्ञानका कारण परम तत्व प्रदान करिये, परन्तु अनृतात्मा, शठ, कायर, कुटिलबुद्धि, पाण्डित्याभिमानी और दूसरेको पीड़ित करनेवाले पुरुषोंको यह कदापि प्रदान न करिये। परन्तु जैसे पुरुषोंको इसका उपदेश देना चाहिये, उसे विशेष करके कहता हूं, सुनो। हे नरेन्द्र! जो लोग श्रद्धावान्, गुणवान्, सदा परापवादसे विरत, विशुद्ध, योगरत, पण्डित, क्रियावान्, क्षमाशाली, लोक हितैषी, पुण्यशील, विधिप्रिय, विवाद रहित, विज्ञ, हितकारी पुरुषोंके विषयमें क्षमावान्,

शम और दम गुणोंमें आसक्त हैं ; उन्हें ही यह गुह्य परम तत्त्व प्रदान करो। जो लोग ऐसे गुणोंसे हीन हों, उन्हें यह तत्त्व दान न करे। क्यों कि पण्डित लोग कहा करते हैं, कि जो लोग निर्गुण अपात्रको यह परम तत्त्व दान करते हैं, वे कभी भी कल्याण लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। हे राजेन्द्र! इसलिये यदि कोई व्रतहीन मनुष्य आपको यह रत्नपूरित पृथ्वी प्रदान करे, तौभी उसे यह दान न करना, जितेन्द्रिय पुरुषोंको ही दान करना। हे महाराज कराल! आज जो तुमने मेरे समीप इस उत्पत्ति स्थितिरहित शोकशून्य परम पवित्र अक्षर परब्रह्मका विषय सुना है, उससे तुम्हें और कुछ भी भय नहीं है। आप तत्त्वज्ञानको विशेष रूपसे जानके जन्म मरणसे रहित, निरामय, भयहीन, कल्याणकर, अपरिसीम उस परब्रह्मका दर्शन करके मोह और विषयको परित्याग करिये। हे नराधिप! जैसे आज तुमने मुझे परितुष्ट करके मेरे निकट यह सनातन ब्रह्मज्ञान लाभ किया है, वैसे ही मैंने अत्यन्त यत्नके सहित उस उग्रचेता हिरण्यगर्भ सनातन ब्रह्माको प्रसन्न करके उनके समीप यह ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। हे राजेन्द्र! जैसे आज आपने मोक्षवित् पुरुषोंके परमपद इस महत् ज्ञानके विषयमें प्रश्न करके मुझसे जाना है, उस ही भांति मैंने उस हिरण्यगर्भ ब्रह्मासे इसे पूंछके उनके समीप इसे पाया है।

भीष्म बोले, हे पाण्डुपुत्र महाराज! पञ्चविंश जीवको जिससे पुनरावृत्ति निवारित होती है, ऋषिश्रेष्ठ वशिष्ठ मुनिके वचन अनुसार मैंने तुम्हारे समीप उस विषयको वर्णन किया। हे राजन्! बुध्यमान जीव अजर अमर अक्षर परब्रह्मके तत्त्वको यथावत् जानकर परमज्ञान प्राप्त कर सकनेसे फिर जन्म ग्रहण नहीं करता। हे तात! देवऋषि नारदके समीप मैंने इस निःश्रेयस परम ज्ञानको जिस प्रकार सुना था, उसे ज्योंका त्यों तुम्हारे निकट कहा। महात्मा वशिष्ठने पहले यह सनातन ब्रह्मज्ञान हिरण्यगर्भ ब्रह्मासे पाया, उसके अनन्तर ऋषिश्रेष्ठ वशिष्ठसे देवर्षि नारद और नारदसे मैंने पाके तुमसे कहा। हे कौरवेन्द्र! तुम इसे सुनकर अब शोक मत करो। हे राजन्! जो लोग क्षर और अक्षरको यथार्थ रूपसे जान सकते हैं, उन्हें कहीं भी भय नहीं रहता और जो लोग इसे प्रकृत रूपसे नहीं जान सकते, उन्हें सर्व्वत्र ही भय उपस्थित हुआ करता है। हे भारत! जीव अज्ञाननिबन्धनसे मूढ़ वा बारम्बार दुःखी होकर जीवन नष्ट होनेपर मरणशील सहस्रों जन्म भोग किया करता है। यद्यपि कालक्रमसे शुद्ध होकर उस अज्ञानसागरसे पार होसके, तो धीरे धीरे तिर्य्यग्से मनुष्य और मनुष्यसे सुरलोकमें सुख भोग करनेमें समर्थ होवे। हे राजन्! भयङ्कर अज्ञानसागरकी अगाधता अर्थात् गहराई अव्यक्त प्रकृति है, प्राणि लोग प्रतिदिन उस अव्यक्त रूप अगाध अज्ञानसागरमें डूबते रहते हैं, तुम अव्यक्तरूपी उस अगाध समुद्रसे पार होनेके लिये रज और तमोगुणसे विरत होगे।

३०८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, वसुमान नाम किसी एक जनक पुत्रने मृगयाके निमित्त निर्जन वनमें घूमते घूमते ब्राह्मणोंमें मुख्य भृगुपुत्र ऋषिको देखा, अनन्तर वसुमानने उस बैठे हुए मुनिको शिर झुकाकर प्रणाम किया और उनकी आज्ञासे वहां बैठके उनसे यह प्रश्न किया। हे भगवन्! अनित्य देहमें वासनाविशिष्ट पुरुषको इस लोक वा परलोकमें कौन कार्य्य कल्याणकारी है, वह मुझसे विस्तारपूर्व्वक कहिये। वह महात्मा महातपस्वी भृगुनन्दन जनकपुत्र वसुमानसे इस प्रकार सत्कृत और जिज्ञासित होकर उनसे कल्याणदायक यह वचन कहने लगे।

ऋषिने कहा, हे जनकपुत्र ! तुम जितेन्द्रिय होके इस लोक वा परलोकमें मनके अनुकूल कार्य्योंको करो और प्राणियोंके विरोधी कार्य्यसे निवृत्त रहो। हे तात ! साधु पुरुषोंका धर्म्म हितकारी है, धर्म्म ही उनका अवलम्ब है, और धर्म्मसे ही चराचर तीनों लोक उत्पन्न हुए हैं। हे मधुर रसके अभिलाषी ! तुम्हें किस कामनामें तृष्णा नहीं होती। हे दुष्ट-बुद्धि ! तू केवल मधु देखता है, मधुके पतनका पीछा करके नहीं देखता है। ज्ञान फलार्थी मनुष्य जैसे ज्ञानका परिचय करते हैं, धर्म्मफलकी इच्छा करनेवाले पुरुष भी उसी भांति धर्म्मकी जांच करें। धर्म्मकाम दुष्ट लोगोंसे पवित्र कर्म्मका होना अत्यन्त कठिन है; परन्तु कर्म्मकाम साधु पुरुषोंके लिये दुष्कर कर्म्म भी सरल हुआ करता है। साधु लोग वनमें रहके भी ग्रामीण लोगोंकी भांति ग्राम सुख भोगकर सकते हैं और गांवमें भी रहके वनवासियोंकी भांति वनसुख भोगनेमें समर्थ होते हैं। हे जनकपुत्र ! तुम प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गके दोष और गुणको विचारके स्थिर होकर शारीरिक, वाचनिक तथा मानसिक धर्म्ममें श्रद्धा करो। हे राजन् ! तुम नित्य बहुतसा दान करना, साधुओंकी निन्दा न करना और देश कालके अनुसार व्रत तथा पवित्रताके सहारे सत्कृत प्रार्थना करना। शुभ विधिसे जो कुछ प्राप्त होता है, वही प्रकृत फल सिद्ध किया करता है। तुम क्रोधरहित होके पात्र विशेषको दान करना, दान करके कदापि पछतावा अथवा उसकी प्रशंसा न करना, जो ब्राह्मण वेदज्ञ, सद्वंश, पवित्र, दान्त, सत्यवादी, सरलता, युक्त शुद्धयोनिमें उत्पन्न हुए और पवित्र कर्म्म करनेवाले हैं, वेही पात्र हैं; सत्कृत अनन्य पूर्ण्णा पत्नी ही पुत्रोत्पत्तिकी स्थान है, इसलिये वही इस स्थलमें योनि कहके अभिहित हुई है और ऋक्, यजु तथा साम, इन तीनों वेदोंके जाननेवाले षटकर्म्मशाली ब्राह्मण ही पात्ररूपसे वर्णित हुए हैं। देशकालके अनुसार पात्र और कर्म्मविशेषमें उन्हीं लोगोंके विषयमें धर्म्म तथा अधर्म्म हुआ करता है। जैसे पुरुष स्नान समाप्त होने पर धीरे धीरे शरीरसे सब धूलि धोता है, वैसे ही शरीरसे सब पापोंको बहुत यत्नके सहित दूर करे। जैसे पुरुषके विचारके अनुसार घृतका पीना औषधकी तरह हितकारी होता है, वैसे ही दान आदिके जरिये निष्पाप पुरुषका धर्म्म परलोकमें सुखकर हुआ करता है। चित्त शुभ और अशुभरूपसे सब प्राणियोंमें ही विद्यमान रहता है, पुरुष सदा पापसे चित्तको आकर्षित करके शुभकार्य्यमें संयोजित करे। सब कोई सर्व्वदा अपने अपने कार्य्योंकी ही प्रशंसा किया करते हैं; इसलिये जिस प्रकार तुम्हारा धर्म्ममें अनुराग रहे, सदा प्राणपणसे उसकी ही चेष्टा करना। हे दुष्टात्मन् ! तुम धीरज धारण करो। हे दुर्बुद्धे ! तुम बुद्धिमान् बनो, तुम बहुत ही अप्रशान्त और अज्ञ हो; इसलिये प्रशान्त होकर ज्ञानीकी भांति आचरण करो। धैर्य्यशाली पुरुष निज तेजबलसे जिस ऐहिक और पारलौकिक मङ्गलका उपाय प्राप्त करते हैं, उस मङ्गलका मूल ही परम धैर्य्य है। राजर्षि महाभिष उस धैर्य्यसे रहित होनेसे स्वर्गसे पतित हुए थे और ययातिन पुण्यक्षीण होके भी धैर्य्यबलसे स्वर्गलोक पाया। हे राजन् ! इसलिये तुम धीरज अवलम्बन करके तपस्वी धर्म्मशील पण्डितोंकी सेवा करनेसे अवश्य ही विपुल बुद्धि और अभिलषित कल्याण लाभ करोगे।

भीष्म बोले, हे राजन् ! नत स्वभावयुक्त जनकपुत्र वसुमानने उस भृगुपुत्र मुनिका ऐसा वचन सुनके अन्तःकरणकी वृत्तियोंको काम आदिसे निवृत्त करते हुए धर्म्ममार्गमें बुद्धि प्रवर्त्तित की थी।

२०९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, जो धर्म्माधर्म्म सब तरहके संशय, जन्म, मृत्यु, पुण्य, पापसे विमुक्त और मङ्गल स्वरूप सर्व्वदा भय-रहित अविनाशी, अक्षर, अव्यय, स्वभावसे ही निर्दोष तथा सदा आयासरहित है, उसे ही आपको वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, हे भारत! देवराजके पुत्र प्रश्नविद्प्रवर महायशस्वी महाराज जनकने ऋषिश्रेष्ठ याज्ञवल्क्यसे जो विषय पूछा था, उस जनकके सम्वादयुक्त याज्ञवल्क्यके प्राचीन इतिहासको तुम्हारे समीप कहता हूं।

जनक बोले, हे विप्रर्षि! मैं आपके अनुग्रहका अत्यन्त अभिलाषी हूं, इसलिये इन्द्रिय संख्या, प्रकृतिका परिमाण और अव्यक्त क्या है; अव्यक्तसे पृथक् निर्गुण परब्रह्म क्या है? इन सबकी उत्पत्ति, नाश और कालकी संख्या कहिये। हे विप्रेन्द्र! मैं अज्ञ हूं, आप ज्ञानमय रत्नस्वरूप हैं, इसलिये मैं आपके निकट इन सब विषयोंको निःसंशय रूपसे सुननेके निमित्त प्रश्न करता हूं।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे पृथ्वीपाल! सांख्य और योगमें जो सब ज्ञान विहित हैं, उनमेंसे कुछ भी आपको अविदित नहीं है, तोभी जब आप मुझसे पूछते हैं, तब इस विषयको तुमसे मैं अवश्य कहूंगा, क्यों कि जब कोई किसीसे कुछ पूछे, तब उससे वह विषय यथार्थ रीतिसे कहना चाहिये, यह ऋषियोंका सनातन धर्म्म है; इसलिये आपने जो पूछा है, उसे विशेष करके कहता हूं सुनो। अध्यात्मविचारवाले सांख्य लोग अव्यक्त, महान्, अहङ्कार, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि, इन आठोंको प्रकृति तथा कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वाक्, हाथ, पांव, गुदा और मेढ़ इन सबको विकार कहते हैं और शब्द आदि सात पदार्थोंको व्यक्त कहा करते हैं। हे राजेन्द्र! पञ्च महाभूतोंके बीच शब्द आदि दश पदार्थ विशेष नामसे विख्यात हैं। कान आदि पांचो बुद्धीन्द्रिय सविशेष कहके वर्णित हुई है। हे मैथिल! तुम और अध्यात्म गतिके विचारनेवाले दूसरे पण्डित लोग मनको षोड़श विकार कहा करते हैं। हे राजन्! भूतचिन्तक सांख्य लोग अव्यक्तसे उत्पन्न हुए महान् आत्माको प्रथम सर्ग और प्रधान कहते हैं, तथा महत्से उत्पन्न हुए अहङ्कारको बुध्यात्मक द्वितीयसर्ग अहङ्कारसे उत्पन्न भूत गुणात्मक मनको अहङ्कारिक तृतीय सर्ग, मनसे उत्पन्न पञ्च महाभूतोंको मानसिक चतुर्थ सर्ग, शब्दादि पञ्चकको भौतिक पञ्चमसर्ग कान आदि पांच इन्द्रियोंको बहुचिन्तात्मक मानसिक षष्ठ सर्ग, श्रोत्र आदिसे उत्पन्न वाक् आदि इन्द्रियोंको सप्तम सर्ग, सरल वृत्ति ऊर्द्ध प्रवाहयुक्त प्राण और तिर्य्यग् प्रवाह सम्पन्न समान, उदान, व्यान ये कई एक अष्टम सर्ग और ऋजुवृत्ति अधोप्रवाहयुक्त अपान तथा तिर्य्यग् प्रवाह सम्पन्न समान उदान, व्यान इन्हें नवम सर्ग कहा करते हैं। हे महाराज! वेदविहित प्रमाणके अनुसार मैंने आपके समीप इन नव प्रकारके सर्गों और चौबीस तत्वोंका यथावत् वर्णन किया; इसके अनन्तर महात्माओंने इन गुण सर्गोंकी जिस प्रकार कालसंख्या निरूपण की है, वह मेरे समीप सुनो।

३१० अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य बोले, हे नरश्रेष्ठ! मैं अव्यक्त प्रकृतिका कालसंख्या कहता हूं, उसे आप मेरे समीप सुनिये। हे नरनाथ! अव्यक्त प्रकृतिके दश हजार कल्पमें दिन और इतनी ही परिमाणसे उसकी रात्रि होती है, यह शास्त्रमें वर्णित है। प्रतिबुद्ध परमात्मा सबसे पहले प्राणियोंके जीवन स्वरूप अन्न अर्थात् अन्नमय ब्रह्मा। अब उत्पन्न

करता है । फिर हिरण्मय अण्डसे उत्पन्न ब्रह्माको उत्पन्न किया करता है । हे राजन् ! वह ब्रह्मा ही सब भूतोंकी मूर्त्ति है, मैंने ऐसा ही सुना है । अनन्तर वह महामुनि प्रजापति ब्रह्मा सम्वत्सर पर्य्यन्त अण्डके बीच वास करके फिर वर्षके अनन्तर उस अण्डेसे बाहर होकर पृथ्वी, स्वर्ग और ऊर्द्ध इन सबकी सृष्टि विषयक चिन्ता करने लगे । फिर उस ब्रह्माने पृथ्वी और स्वर्गके बीचमें आकाशकी सृष्टि की । हे राजन् ! वेदमें पृथ्वी और स्वर्गका विषय इस ही प्रकार कहा गया है । अध्यात्म चिन्तक वेद वेदाङ्ग जाननेवाले ब्राह्मण लोगोंने साढ़े सात हजार कल्पतक ब्रह्माका दिन और इस ही परिमाणसे रात्रि संख्या निरूपण की हैं । हे राजसत्तम ! महान् ऋषि ब्रह्माने महद्भूतोंके उपादान कारण दैवतात्मक अहंकारकी सृष्टि करके, भौतिक देहके सहित उत्पत्ति समयमें बुद्धि, चित्त, मन और अहंकार नाम, इन चार पुत्रोंको उत्पन्न किया ; ये पितृ लोग महाभूतोंके पिता हैं, ऐसा ही मैंने सुना है । इसके अतिरिक्त हमने इस भांति सुना है, कि अन्तःकरण चतुष्टयके सहित इन्द्रिया पितृलोक महाभूतोंके पुत्र रूपसे कल्पित हुए और चराचर सब लोक उन्हीं महाभूतोंके सहारे परिपूरित होरहे हैं । हे राजन् ! परमेष्ठी ब्रह्माने अहंकार पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि और मन आदि सब इन्द्रियोंको उत्पन्न किया है । अहंकार करनेवाले तृतीय स्वर्गकारी इस अहंकारकी भी पांच हजार कल्प पर्य्यन्त दिनकी संख्या है और इस ही परिमाणसे रात्रिकी संख्या वर्णित हुई है । हे राजेन्द्र! पञ्च महाभूतोंके बीच शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन पांचोंके नाम विशेष करके वर्णित हुए हैं । ये शब्द आदि सब विषय सदा प्राणियोंको आविष्ट करते हैं । परस्पर आपसमें हिलेमिले होकर परस्परकी स्पर्द्धा करते हैं, आपसमें स्पर्द्धावान होकर एक दूसरेको अतिक्रम करते हैं और रूप आदि गुणोंसे परस्पर बध्यमान होकर तिर्य्यग् योनिमें प्रवेश करके इस लोकमें ही घूमा करते हैं । शास्त्रमें इनकी तीन हजार कल्पतक दिनकी संख्या है और इस ही परिमाणसे रात्रिकी संख्या निरूपित हुई है । हे नरनाथ ! मनका भी तीन हजार कल्प तक दिनका परिमाण है और तीन हजार कल्पतक रात्रिका परिमाण कहा गया है । हे राजन् ! मन ही इन्द्रियोंके जरिये प्रेरित होकर विषयोंको प्रत्यक्ष करता है, मनके बिना इन्द्रियोंको विषयोंके प्रत्यक्ष करनेकी सामर्थ नहीं है । देखो नेत्र मनके सहयोगसे ही रूपको देखता है, मनका सहयोग न रहनेसे कदापि नहीं देखता ; क्यों कि मन व्याकुल होनेसे रूप आदि विषय नेत्रके सम्मुख होनेपर भी वह उसे ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होता ; जो लोग ऐसा कहा करते हैं, कि इन्द्रियें ही निज निज विषयोंका दर्शन करती हैं, वह वचन अमूलक है, क्यों कि इन्द्रियां कभी भी निज निज विषयोंको दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होतीं, केवल मन ही दर्शन किया करता है । हे राजन् ! मनके विरक्त होनेसे इन्द्रियां उपरत होती हैं और मन ही इन्द्रियोंको प्रधानता वा प्रभावको वर्द्धित किया करता है, इसहीसे ऐसा कहा गया है, कि मन ही इन्द्रियोंका ईश्वर है । हे महायशस्वी ! इस लोकमें सब प्राणी बीस प्रकार कहे गये हैं ।

३११ अध्याय समाप्त ।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे राजन् ! मैंने आपसे इन तत्त्वोंकी सर्ग संख्या और काल-संख्या विस्तारपूर्वक कही है, अनन्तर अनादि निधन अक्षर नित्य ब्रह्मा जिस प्रकार सब जीवोंको बार बार उत्पन्न करके संहार करता

है, उसी विस्तारको वर्णित करता हूं। हे महीपाल ! भगवान् अव्यक्त ब्रह्मा रात्रि समयमें स्वप्न देखके प्राणियोंके दिनका क्षय काल उपस्थित जानके उनके संहारके लिये अहंकाराभिमानी महारुद्रको प्रेरण करते हैं। तिसके अनन्तर वह महारुद्र अव्यक्त ब्रह्माके जरिये प्रेरित होकर प्रज्वलित अग्निके समान द्युतिशाली सौहजार किरणवाले सूर्य्यकी मूर्त्ति धारण कर निज शरीरको बारह हिस्सेमें विभक्त करके अपने तेजसे उसही समय जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज, इन चार प्रकारके प्राणियोंको जलाया करते हैं। हे राजन् ! जिस सूर्य्यके प्रकाशमात्रसे ही कछुवेकी पीठ समान भूमि और स्थाणु जङ्गम आदि सब वस्तु विनष्ट हो जाती है, वह अमितबलशाली सूर्य्य सारे जगत्को जलाकर बलवत्तर अधिक जलसे उस भस्मीभूत सारी पृथ्वीको परिपूरित करता है। हे राजेन्द्र ! फिर कालाग्नि उस समस्त जलको सुखाकर स्वयं प्रज्वलित होती रहती है। उसके अनन्तर अत्यन्त बलशाली वायु निज शरीरको आठ भागोंमें विभक्त करके तिर्य्यग्, ऊर्द्ध और अधः-प्रदेशमें विचरते हुए प्राणियोंको उत्तापित करनेवाली जलती हुई सातशिख अग्निको भक्षण करता है। फिर क्रमसे वायुको आकाश, आकाशको मन, मनको भूतात्मा प्रजापति अहङ्कार, वर्त्तमान, भूत तथा भविष्यत् महान् अहङ्कारको और अणिमा आदि शक्तियुक्त ज्योतिर्म्मय अव्यय सर्व्वग्राही सर्व्वग, सर्व्वदर्शी सर्व्वशिरा सर्व्वानन सर्व्वश्रोता सर्व्वव्यापक सब भूतोंकी बुद्धिके प्रवर्त्तक अंगुष्ठ परिमित अनन्त महात्मा ईश्वर उस अनुपम महात्मा महान् और संसारको ग्रास किया करता है। अनन्तर इस ही प्रकार सब वस्तु नष्ट होकर अक्षय, अव्यय, अव्रण अनघ, वर्त्तमान, भूत वा भविष्य कालके सृष्टिकर्त्ता उस ब्रह्मरूपमें विद्यमान रहती हैं। हे राजन् ! मैंने तुम्हारे समीप यह संहारका विषय यथावत वर्णन किया अब अध्यात्म अधिभूत और अधिदैवका विषय कहता हूं सुनो।

३१२ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे राजन् ! तत्वदर्शी ब्राह्मण लोग दो पादको अध्यात्म, गन्तव्यको अभिभूत और उसमें विष्णुको अधिदैव कहा करते हैं। तत्वार्थदर्शी पुरुष गुदाको अध्यात्म, विसर्गको अधिभूत और मित्रको अधिदैव कहते हैं। योगदर्शी लोग उपस्थको अध्यात्म, आनन्दको अधिभूत और प्रजापतिको अधिदैव कहते हैं। सांख्यदर्शी लोग दोनों हाथोंको अध्यात्म, कर्त्तव्यको अधिभुत और उस विषयमें इन्द्रको अधिदैव कहते हैं। योग निदर्शी मनुष्य वाक्यको अध्यात्म, वक्तव्यको अधिभूत और उस विषयमें अग्निको अधिदैव कहते हैं। यथाश्रुति निदर्शी पण्डित लोग नेत्रको अध्यात्म, रूपको अधिभूत और सूर्य्यको अधिदैव कहा करते हैं। वेदविहित अनुभवशाली मनुष्य कानको अध्यात्म, शब्दको अधिभूत और दिशाओंको अधिदैव कहा करते हैं। श्रुतिविहित निदर्शनशाली मनीषि लोग जीभको अध्यात्म, रसको अधिभूत और उसमें जलको अधिदैव कहा करते हैं, श्रुतिविहित निदर्शनशाली पण्डित लोग नासिकाको अध्यात्म गन्धको अधिभूत और पृथ्वीको अधिदैव कहते हैं। तत्त्वबुद्धिवासि ब्राह्मण लोग त्वचाको अध्यात्म स्पर्शको अधिभूत और पवनको अधिदैव कहते हैं। शास्त्र जाननेवाले ब्राह्मण मनको अध्यात्म, मन्तव्यको अधिभूत और चन्द्रमाको अधिदैव कहते हैं। तत्त्व निदर्शनशाली विद्वान् लोग अहङ्कारको अध्यात्म, अभिमानको अधिभूत और इसमें बुद्धिको अधिदैव कहते हैं। यथार्थदर्शी पण्डित लोग बुद्धिको अध्यात्म, बोधव्यको अधिभूत और क्षेत्रज्ञ जीवको अधिदैव कहा करते हैं। हे तत्त्ववित्

महाराज! सृष्टि, स्थिति और प्रलय, इन तीनों कालमें ही भूत प्रपञ्चके अनुसार उस एकमात्र अद्वितीय ईश्वरकी विभूतिको मैंने तुम्हारे निकट यथार्थ रीतिसे कहा। हे राजन्! प्रकृति इच्छानुसार क्रीड़ाके अनुसार निमित्त आत्म-कामनाके सैकड़ों तथा हजारों तरहसे सबको विकृत कर रखती है। जैसे मर्त्य लोकवासी मनुष्य एक दीपकसे सहस्रों दीपक जलाते हैं, वैसे ही प्रकृति पुरुषके सत, रज और तम, इन तीनों गुणोंको अनेक हिस्सोंमें विकृत किया करती है। सत्त्व, धैर्य्य, आनन्द, ऐश्वर्य्य, प्रीति, प्रकाश, सुख, शुद्धता, आरोग्यता, सन्तोष, श्रद्धावानता, कृपणता हीनता, अक्षमा, क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य, आनृण्य, मार्द्दव, लज्जा, चपलता हीनता, पवित्रता, विनीतता, आचार, अचञ्चलता, असम्भ्रचित्तता दूसरेकी की हुई भलाई, बुराई और वियोगकी अविकल्पना, दानके सहारे आत्म ग्रहण, अस्पृहता, परोपकारिता और सब प्राणियोंमें दया, ये सत्त्वके गुण कहके वर्णित हुए हैं। सङ्घात, रूप, सुन्दरताई, विग्रह, अत्याग, करुणाहीनता, सुखदुःखका सेवन; परापवादमें रति, विवाद सेवन, अहंकार, असत्कारकी चिन्ता, वैरोपसेवा, परिताप, पराया धन हरना, लज्जानाश, अनार्ज्जव, भेद, परुषता, काम, क्रोध, मद, दर्प, द्वेष और अतिवाद, ये सब रजोगुण कहके वर्णित हुए हैं और मोह अप्रकाश, तामिस्र, अन्धतामिस्र, मरण, क्रोध भक्षण आदिमें अभिरुचि, भोजनमें अपर्य्याप्ति, पीनेमें अतृप्ति, विहार शयन और आसनमें गन्धवास आदिका स्वप्न अतिवाद तथा प्रमोदमें रति अज्ञान नृत्यगीत और बाजोंमें श्रद्धावानता अथवा धर्मविशेषमें द्वेष प्रकाश, ये सब तामसगुण कहके निर्द्दिष्ट हुए हैं।

३१२ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे पुरुषोत्तम! सत, रज और तम ये तीनों प्रधान गुण हैं; ये गुण सदा समस्त जगत्के निमित्त कारण रूपसे निवास करते हैं। षड़ैश्वर्य्य शक्ति युक्त अव्यक्त रूप प्रधान, इन तीन प्रकारके गुणोंसे प्रत्यगात्म परमात्माको सैकड़ों, लाखों और करोड़ों प्रकारसे विभक्त कर रखता है। अध्यात्म विचार करनेवाले पण्डित लोग कहते हैं, कि इस लोकमें सतोगुण अवलम्बन करनेवाले मनुष्य लोग ही उत्तम स्थान, रजोगुणावलम्बी मनुष्य मध्यम स्थान और तमोगुणावलम्बी पुरुष अधम स्थान प्राप्त करते हैं। इस लोकमे जो लोग केवल अधर्म्म रूप पापकार्य्य करते हैं वे लोग अधोगति लाभ किया करते हैं। हे नराधिप! सत्त्व रज और तम, इन तीनों गुणोंके परस्पर मिलन तथा द्वन्द्वको मेरे समीप सुनिये सतोगुणमें रज, रजोगुणमें तम, तमोगुणमें सत और सतोगुणमें समता दीख पड़ती है। अव्यक्त ब्रह्म सत्त्वसे संयुक्त होकर देवलोक, रज और सतसे संयुक्त होकर मनुष्य लोक, रज और तमसे युक्त होके तिर्य्यग्योनि तथा सत्त्व, रज, तम गुण युक्त होके मनुष्यलोक लाभ करता है, और तत्त्वज्ञ पुण्य तथा पापरहित महात्मा लोग शाश्वत अव्यय अक्षय अमृत परमधाम पाते हैं। ज्ञानियोंका जन्म श्रेष्ठ और उनका स्थान अक्षय है, अच्युत, अतिन्द्रिय, निरवयव और जन्म मृत्यु तथा अन्धकारसे रहित है। हे नरनाथ! आपने मुझसे जो परम धामका विषय पूछा था, वह स्थान अव्यक्त ब्रह्ममें विद्यमान रहता है, मनुष्य लोग उस अव्यक्त ब्रह्मको जाननेसे ही उस स्थानको सहजमें प्राप्त कर सकते हैं; परन्तु उस ब्रह्मका प्रकृति संसर्ग होनेसे ही लोग उसे प्रकृतिस्थ पुरुष कहा करते हैं। हे राजन्! प्रकृति अचेतन है, परन्तु उस ब्रह्मके अधिष्ठानसे ही वह सृष्टि और संहार किया करती है।

जनक बोले, हे महाबुद्धिमान ऋषिवर ! प्रकृति और पुरुष दोनोंही अनादि निधन हैं, अमूर्त्त, अचल, अविचलित दोष-गुणसे युक्त और अप्रत्यक्ष हैं, परन्तु इनमेंसे किस लिये प्रकृति अचेतन और पुरुष सचेतन क्षेत्रज्ञ कहके वर्णित हुआ । हे विप्रेन्द्र आपने समस्त मोक्षधर्मकी उपासना की है ; इसलिये आपके समीप सम्पूर्ण मोक्षधर्म यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं । हे ऋषिसत्तम ! हाथमें स्थित आमलककी भांति आपको सब विषय विदित है । इसलिये आप पुरुषके अस्तित्व केवलत्व, भावरहित, देहाश्रित देवता यह सब और व्यग्र विपदग्रस्त जीवोंके स्थान तथा काल क्रमसे वे जिन स्थानोंको लाभ करते है, वह स्थान, सांख्य ज्ञान, पृथक् योग और मृत्युसूचक तत्त्व यह सब विस्तारपूर्व्वक मुझसे कहिये ।

३१४ अध्याय समाप्त ।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे तात ! निर्गुणको सगुण और सगुणको निर्गुण करना जो महाकठिन दुःसाध्य है, उसे तुम यथार्थ रूपसे मेरे समीप सुनो । तत्वदर्शी महात्मा मुनि लोग ऐसा कहते हैं, कि जिसमें गुणका संसर्ग है वह वस्तु ही गुणवान है; जिसमें गुणका संसर्ग नहीं वह वस्तु गुणवान नहीं है । अव्यक्त प्रधान गुणवान होनेसे सब गुणोंको त्यागनेमें असमर्थ होता है, और स्वभाविक अज्ञ होनेसे सदा वही उन गुणोंको भोग किया करता है । अव्यक्तमें वस्तु ज्ञान न होनेसे वह अज्ञ रूपसे गिना जाता है, परन्तु पुरुष स्वभाविक ही ज्ञानवान है; क्यों कि "मुझसे और कोई भी श्रेष्ठ नहीं है" वह सदा ऐसा ही ज्ञान किया करता है । हे राजन् ! इसही कारणसे अव्यक्त अचेतन है, परन्तु चरत्व निबन्धनसे उसमें भोक्तृत्व हुआ करता है । वह अज्ञानसे बार बार आत्माको गुणयुक्त किया करता है, इसलिये जबतक उसे आत्मज्ञान नहीं होता तबतक आत्मा मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ नहीं होता, और आत्मा प्रकृत महदादि तत्वोंके कर्त्तृत्व निबन्धनसे मुक्त न हो सकनेसे तत्त्वधर्म्मा कहा जाता है । इस ही प्रकार वह सब स्वर्गोंके कर्त्तृत्व हेतुसे स्वर्ग धर्म्मा, योग कर्त्तृत्व हेतुसे योगधर्म्मा प्रकृति अर्थात् प्रजापुञ्जके कर्त्तृत्व निबन्धनसे प्रकृतिधर्म्मा, बीजके कर्त्तृत्व हेतुसे बीजधर्म्मा और शम दम आदि गुणोंको सृष्टि तथा प्रलय कर्त्तृत्व हेतुसे गुणधर्म्मा कहके वर्णित होता है, आत्मा मिथ्या अभिमान वशसे सुख दुःख भोग किया करता है परन्तु मैंने ऐसा सुना है, कि अध्यात्मज्ञ अजर सिद्ध यति लोग साक्षित्व, अनन्यत्व वा अभिमानितासे आत्माको केवल अनित्य नित्य अव्यक्त तथा व्यक्त जानते हैं । परन्तु सब प्राणियोंपर दया करनेवाले केवल ज्ञानमें रत निरीश्वरवादी सांख्य लोग अव्यक्तको एकत्व और पुरुषको नानात्व कहा करते हैं और वे लोग बहुतसे दृष्टान्त दिखाके पुरुष तथा प्रकृतिमें इस प्रकार भेद कहते हैं; कि जैसे मूंजके भीतरकी सींक मूंजसे पृथक् है, गूलर फलके भीतर रहनेवाले मशक गूलरसे अलग है, जलमें रहनेवाली मछलियें जलसे स्वतन्त्र हैं, पत्थरमें रहनेवाली अग्नि पत्थरसे पृथक् है, और जैसे जलमें रहनेवाले कमल जलसे अलग हैं ; वैसेही प्रकृतिमें निवास करनेवालेही पुरुषको भी प्रकृतिसे पृथक् जानो । हे राजन् ! साधारण पुरुष इस सहवास और नित्य निवासको यथार्थ रीतिसे नहीं जान सकते । जो इसे उलटा समझते हैं, वे सम्यक्दर्शी होनेमें समर्थ नहीं होते वरन वे लोग स्पष्ट ही बार बार घोर नरकमें डूबा करते हैं ।

हे राजन् ! मैंने जो यह परिसंख्या करके अत्युत्तम सांख्य दर्शन तुमसे कहा है, सांख्य लोग इस ही प्रकार परिसंख्या करके कैवल्यता

लाभ किया करते हैं। परन्तु जो लोग सांख्यके अतिरिक्त अन्य तत्त्वकी आलोचना करते हैं, उनके लिये यह निदर्शन कहा है, इसके अनन्तर योगानुदर्शन ज्योंका त्यों कहता हूं।

३१५ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे नृपसत्तम! मैंने आपसे यथाश्रुत और यथादृष्ट सांख्यज्ञानको ज्योंका त्यों कहा, अनन्तर योगज्ञानको यथार्थ रूपसे कहता हूं, सुनो। सांख्य ज्ञानके समान ज्ञान और योगबलके समान दूसरा बल नहीं है, तथा सांख्य वा योग दोनोंका ही अनुष्ठान एक वा दोनों ही अविनाशी कहके वर्णित हुए हैं। हे राजन्! जो मनुष्य मूढ़ हैं, वेही सांख्य और योगको पृथक् पृथक् समझते हैं, परन्तु निश्चय-हेतुसे मैं दोनोंको एक जानता हूं। योगी लोग योगके सहारे जिसका दर्शन करते हैं, सांख्य लोग भी ज्ञानके जरिये उसका दर्शन किया करते हैं; इसलिये जो लोग सांख्य और योग दोनोंको ही एक रूप जानते हैं, वेही तत्त्ववित् हैं। हे अरिदमन! तुम निश्चय जानो, कि जितने प्रकारके योग हैं, उन सबमें ही प्राण और इन्द्रियोंको अवलम्बन करना पड़ता है, योगी लोग इस ही प्रकार योगका अनुष्ठान करके, उसी योगयुक्त देहसे सर्व्वत्र विचरण किया करते हैं। हे तात! योगियोंका स्थूल शरीर नष्ट होनेपर भी वे शारीरिक सुखको पुर्य्यष्टक सूक्ष्म शरीरमें स्थापित करके योगबलसे सब लोकोंमें विचरते रहते हैं। हे नृपसत्तम! मनीषी लोगोंने वेदमें अष्टांग योग ही कहे हैं, इसके अतिरिक्त इतर योगके विषय नहीं कहे हैं। परन्तु योगियों सब प्रकारसे योगके बीच शास्त्र सम्मत सगुण और निर्गुण, इन दोनों प्रकारके योगोंको ही उत्तम कहके वर्णन किया है। हे राजन्! प्राण वायुको निग्रह, मनको धारण और चित्तको एकाग्र करनेसे जो प्राणायामरूप दो योग वर्णित हुए हैं, उसमेंसे प्राणायामको सगुण और धारणाको निर्गुण जानो। हे मैथिल! वायुके मोचनस्थान अदृश्य होने पर यदि उस समय प्राणवायु मुक्त हो, तो वायुकी प्रबलता होजाती है; इसलिये उस समय वायु रेचन न करे। रातके प्रथम, मध्य वा शेष भागमें बारह प्रकारसे आत्माका प्रेरण करना होता है; इसलिये जो लोग शान्त, दान्त, सन्न्यासी, आत्माराम और शास्त्रज्ञ हैं, वे अवश्य इसही भांति आत्माको बारह प्रकारसे नियोग करेंगे, और पांचो ज्ञानेन्द्रियोंके शब्दादि दोषोंको निरास करते हुए विक्षेप तथा लयको संहार कर इन्द्रियोंको मनमें निवेश करें। अनन्तर मनको अहंकारमें अहंकारको महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्वको प्रकृतिमें स्थापित करें। हे राजन्! योगी लोग इस ही प्रकार क्रमसे अन्तःकरण आदिको परस्परमें लीन करके अन्तमें केवल शुद्ध चैतन्य स्वरूप, नित्य, अनन्त, कूटस्थ, अभेद्य, अजर, अमर, शाश्वत, अव्यय और ईशान ब्रह्मका सदा ध्यान किया करते हैं। हे महाराज! जैसे मन्दिरके चिन्हसे प्रसन्न पुरुष तृप्त होकर सुखसे शयन किया करते हैं, वैसे ही समाधिस्थ पुरुषका लक्षण कहता हूं, सुनो। मनीषियोंने समाधिस्थ पुरुषोंका इस प्रकार लक्षण वर्णन किया है, कि जैसे निर्व्वातस्थलमें तेलसे भरा हुआ दीपक निश्चल और ऊर्द्ध्वशिख होकर जलता रहता है, वैसे ही समाधिस्थ पुरुष समाधि समयमें निश्चल भावसे निवास करते हैं। जैसे बक समूह जलकी बूंदसे पत्थरको आहत करके तनिक भी उसे विचलित नहीं कर सकते, वैसे ही समाधियुक्त पुरुषको भी वृष्टि आदिके जरिये कोई समाधिसे अणुमात्र भी सञ्चालित करनेमें समर्थ नहीं होता। ऐसा ही क्यों, पुरुषके समाधि युक्त होने पर शंख,

नगाड़े आदि विविध बाजे और संगीत प्रभृति से उसकी समाधि भंग नहीं होती ; समाधियुक्त पुरुषका ऐसा ही निदर्शन निर्दिष्ट है। और जैसे कोई पुरुष तेलसे भरे पात्रको दोनों हाथसे ग्रहण करके सोपान पर चढ़ते हुए तलवार धारण करनेवाले पुरुषके जरिये तर्ज्जित तथा उसके भयसे भीत होने पर भी संयतचित्त होकर पात्रसे बूंदभर भी नहीं त्यागता, वैसे ही समाधिस्थ पुरुष भी उत्तम मार्गमें गमन करते हुए किसीके जरिये तर्ज्जित वा भय प्रदर्शित होनेपर भी एकाग्र चित्त होकर समाधि परित्याग नहीं करते। जो मुनि इन्द्रियोंके बहिर्मुखाकार वृत्तिको रोकके अन्तःकरणको अचल करके समाधि अवलम्बन करता है, उसहीमें इस प्रकार सब योग लक्षण दीखते हैं। हे राजन्! और ऐसी नित्य श्रुति निरूपित है, कि ऐसे लक्षणोंसे युक्त मनुष्य ही समाधियुक्त होके महतत्त्व और उसमें स्थित अग्नि सदृश अव्यय परब्रह्मका दर्शन करके, उस दर्शनबलसे अचेतन देहको त्याग कर बहुत समयके लिये कैवल्य लाभ किया करता है। हे राजन्! और दूसरा योगका क्या लक्षण कहूंगा, मैंने जो कहा सब प्रकार योगके बीच यह अत्यन्त उत्तम योग है, मनीषिलोग इस योगको विशेषरूपसे जानकर अपनेको कृतकृत्य विवेचना किया करते हैं।

३१६ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे राजन्! हठयोगधारी योगी लोग अन्तकालमें जिन जिन स्थानोंसे प्राणवायु बाहर करके जैसा फल पाते हैं, वह सब आपके समीप वर्णन करता हूं, आप सावधान होकर सुनिये। मैंने ऐसा सुना है, कि योगी लोग पांवके जरिये प्राणवायु परित्याग करनेसे वसुलोक, जानुके जरिये प्राणत्याग करनेसे साध्य लोक, गुदाके जरिये त्यागनेसे मैत्रलोक, जघनके सहारे प्राण छोड़नेसे पृथ्वी लोक, ऊरुके जरिये त्याग करनेसे प्रजालोक, पार्श्वसे छोड़नेपर वायुलोक, नासिकासे त्याग करनेसे चन्द्रलोक, बाहुसे त्यागनेपर इन्द्र लोक, वक्षस्थलसे त्यागनेपर रुद्रलोक, ग्रीवाके जरिये परित्याग करनेसे उत्कृष्ट मनुष्य लोक, मुखसे त्यागने पर विश्वदेव लोक, कानसे त्यागनेपर दशदिक् लोक, घ्राणके सहारे त्यागनेसे गन्धवह वायु लोक, नेत्रसे त्यागनेपर अग्नि लोक, भौंसे त्यागनेपर अश्विदेवलोक, ललाटसे त्यागने पर पितृलोक और सिरके सहारे त्यागनेसे ब्रह्मलोक पाते हैं।

हे मिथिलेश्वर! मैंने क्रमसे इन सब उत्क्रमण स्थानोंको तुम्हारे समीप वर्णन किया अनन्तर सम्वत्सरके बीच मरणशील देहधारियोंके जो मनीषियोंके जरिये विहित अरिष्ट हैं, उसे कहता हूं सुनो। हे पार्थिव! जो पुरुष दृष्टपूर्व्वा अरुन्धती और ध्रुवनक्षत्रको न देखे तथा पूर्णचन्द्र और दीपकको दहिने भागमें खण्डाभासरूपसे दर्शन करे, वह सम्वत्सर भर जीवित रहता है। हे राजन्! जो पुरुष दूसरेके नेत्र पुतरीके बीच अपना प्रतिबिम्ब नहीं देखता वह भी सम्वत्सरभर जीवन धारण करता है। अत्यन्त तेजस्वी पुरुषोंकी निस्तेजस्कता, बुद्धिमानोंकी बुद्धिहीनता और स्वभावका उलटफेर अर्थात् कृपण पुरुषमें दातृत्व-शक्ति, ये सब छः महीनेके भीतर मृत्युके लक्षण हैं। जो लोग देवताओंकी अवज्ञा करें, ब्राह्मणोंसे विरोध करते रहें, जिनकी कान्ति काली तथा कपिश वर्णकी होजाती है, छःमहीनेभरमें उनकी मृत्यु हुआ करती है। जो लोग सूर्य्य और चन्द्रमण्डलको उर्णनाभ-चक्रकी भांति छिद्रयुक्त अवलोकन करें, सात रात्रिके बीच उनकी मृत्यु होती है। जो मनुष्य देवमन्दिरमें रहके गन्धको गन्धको मुर्देकी गन्धकी भांति आघ्राण करे,

सात रात्रिके बीच वह मृत्युभागी होता है। कान और नासिकाकी नम्रता, दांत और दृष्टिकी विरागिता, संज्ञा लोप और विरूपत्व ये सद्य मृत्युके निदर्शन हैं। हे नरनाथ! जिसके बायें नेत्रसे अकस्मात् आंसू बहे अथवा सिरसे धूआं बाहर हो, उसको सद्य मृत्यु हुआ करती है। बुद्धिमान मनुष्य इन अरिष्टोंको मालूम करके दिन रात आत्माको परमात्मामें संयुक्त करें। जिस समयमें प्रेतत्व होगा, उस समयकी परीक्षा करते हुए यदि योगियोंका मरना इष्ट न हो, तो इस ही क्रियाके अनुष्ठान करनेकी इच्छा करनी उचित है। हे नरनाथ! मनुष्य समस्त गन्ध और सब रसोंको धारण करे, अन्तरात्माके आत्मानिष्ठ होनेपर मनुष्य मृत्युको जय करनेमें समर्थ होता है। हे नरवर! अन्तःकरण आत्मनिष्ठ होनेपर योगी लोग उसहीके जरिये योगसे मृत्युको जय करनेमें समर्थ हुआ करते हैं। जो लोग इस ही प्रकार अनुष्ठान करते हैं, वे अकृतबुद्धि पुरुषोंसे दुष्प्राप्य, अक्षय, पुनरावृत्तिसे रहित, कल्याणकर नित्य अचल लोक पाके वहां ही जाते हैं।

३१७ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे नरनाथ! तुमने जो अव्यक्तघटित परम पदार्थका विषय मुझसे पूछा है, अब उस परम गुह्य प्रश्नका उत्तर कहता हूं, सावधान होकर सुनो। हे मिथिलापति! मैं आर्यविधिके अनुसार अवनत होकर विचरते हुए जिस प्रकार आदित्यसे समस्त शुक्ल यजुर्व्वेद पाया है उसे सुनो। हे अनघ! मैंने उत्तम महत् तपस्याके जरिये सूर्य्यदेवकी सेवा की, अनन्तर वह मेरी तपस्यासे प्रसन्न होकर बोले, हे विप्रर्षि! तुम्हें जिस अभिलषित दुर्लभ वरकी इच्छा हो, वह मांगो, मैं प्रसन्नचित्त होकर तुम्हें वही दान करूंगा, मेरी प्रसन्नता दूसरेके पक्षमें अत्यन्त दुर्लभ है। अनन्तर मैंने सिर नीचाकर प्रणाम करके सूर्य्यदेवसे कहा। हे भगवन्! मैं अक्षादादिके उपयुक्त समस्त यजुर्वेद जाननेकी इच्छा करता हूं। अनन्तर भगवान् भास्कर मुझसे बोले, हे द्विज! मैं तुम्हें अभिलषित वर प्रदान करूंगा, तब वाग्देवी सरस्वती तुम्हारे शरीरमें प्रवेश करेंगी। अनन्तर भगवान् सूर्य्यदेव मुझसे बोले, तुम अपना मुंह पसारो, मैंने जब उनकी आज्ञानुसार मुख फैलाया, तब सरस्वती उसमें प्रविष्ट हुई। अनन्तर मैं विशेष रूपसे दह्यमान होकर महात्मा भास्करके अज्ञातसारमें अमर्षवशसे जलके बीच प्रविष्ट हुआ। भगवान् सूर्य्य मुझे दह्यमान देखके बोले, "तुम मुहूर्त्तभर दाह सहो, फिर शीतल होगे।" अनन्तर भगवान सूर्य्य मुझे शीतल होते देखके बोले, हे द्विज! अखिल आद्यन्त वेद तुममें प्रतिष्ठित होगा। हे द्विजवर! तुम समस्त शतपथ ब्राह्मण प्रणयन करोगे, उनके प्रणयनकी समाप्ति होनेपर तुम्हारी बुद्धिशक्ति मोक्षपथकी अनुवर्त्तिनी होगी। सांख्य योगमें तुम्हारा जो अभीष्ट पद प्रार्थनीय है, उसे पाओगे। भगवान् इतना मन्त्र कहके अस्त हुए। सूर्य्यदेवका वचन सुन उनके अस्त होनेपर मैंने घर आके हर्षपूर्व्वक सरस्वती देवीका ध्यान किया। अनन्तर स्वर व्यञ्जनसे भूषित अत्यन्त शुभङ्करी सरस्वती देवी ओंकारको आगे करके मेरे सम्मुख प्रकट हुई।

अनन्तर मैंने बैठके सूर्य्यनिष्ठ होकर सरस्वतीदेवी तथा तपनदेवको विधिपूर्व्वक अर्घ प्रदान किया। अनन्तर परमहर्षसे रहस्य-संग्रह और परिशिष्टके सहित समस्त शतपथ ब्राह्मण स्वयं प्रकट हुआ। हे महाराज! महानुभाव मातुल सशिष्य वैशम्पायनके प्रियकार्य्य साधनके लिये एक सौ शिष्योंको उक्त शतपथ पढ़ाके शुभकिरणके सहित सूर्य्यकी भांति सब शिष्योंके

कथित तुम्हारे महानुभाव पिताके यज्ञ कार्य्यको निर्व्वाह करनेमें प्रवृत्त हुआ। अनन्तर देवलके सम्मुखमें मेरे मातुलके वेद दक्षिणाके लिये प्रधान् विमर्द्द उपस्थित हुआ। मैंने दोनोंको सम्मत करके दक्षिणाका आधा हिस्सा लेना अङ्गीकार किया। अनन्तर सुमन्त, पैल, जैमिनी, तुम्हारे पिता और अन्यान्य मुनियोंने मेरा सम्मान किया। हे अनघ! मैंने आदित्यसे पन्द्रह यजुर्म्मन्त्र पाये थे और रोमहर्षणके जरिये सारं पुराणका निश्चय किया था। हे नरनाथ! उस ही बीज और सरस्वती देवीको पुरस्कृत करके सूर्य्यदेवके प्रभावसे इस अपूर्व्व शतपथके प्रणयन करनेमें प्रवृत्त हुआ, और उनके प्रभावसे इसे सम्पन्न किया है। जो पथ मुझे अभिलषित था, वह पूर्णरूपसे तय्यार हुआ है, शिष्योंको संग्रहके सहित समस्त शतपथ अध्ययन कराया है, सब शिष्य पवित्र और परम हर्षित हुए हैं। इस पन्द्रह शाखाओंसे युक्त सूर्य्यकी उपदिष्ट विद्याकी प्रतिष्ठा करके मैं स्वेच्छापूर्व्वक उस वेद्य पुरुषका ध्यान किया करता हूं। हे राजन्! वेदान्त ज्ञानकोविद विश्वावसु नाम गन्धर्व्वने उस शास्त्रमें ब्राह्मण जातिका हितकर सत्य क्या है, और इसमें अनुत्तम वेद्यवस्तु ही कौनसी है। ऐसी चिन्ता करके मेरे समीप आकर उस विषयमें प्रश्न किया। हे राजन्! अनन्तर उन्होंने मेरे निकट वेदके चौबीस प्रश्न किये और शेषमें निम्नलिखित आन्विक्षिकी विद्या अर्थात् युक्तिके जरिये आलोचना शास्त्र सम्बन्धीय पचीस प्रश्न किये। हे राजन्! वे प्रश्न ये हैं,—विश्व, अविश्व, अश्व, अश्वमित्र, वरुण, ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञ, अज्ञ, क, तपा, अतपा, सूर्य्यादि, सूर्य्य, विद्या, अविद्या, वेद्य, अवेद्य, अव्यक्त, चल, अचल और अक्षय तथा क्षयशील वस्तु कौनसी है? यही सर्व्वोत्तम प्रश्न है। हे महाराज! अनन्तर मैंने गन्धर्व्व सत्तम राजा विश्वावसुसे कहा, हे गन्धर्व्वराज! तुमने यथाक्रमसे अत्यन्त उत्तम अर्थयुक्त प्रश्न किया है। अब मुहूर्त्त भर निवास करो, मैं इसका अर्थ विचारता हूं। गन्धर्व्व मेरा वचन सुन मौनावलम्बन करके स्थित हुआ। अनन्तर मैंने फिर मन ही मन सरस्वती देवीका ध्यान किया। हे महाराज! ध्यान करते ही दहीसे घृत निकलनेकी भांति उस प्रश्नका उत्तर मेरे अन्तःकरणमें उत्पन्न हुआ। मैंने परमश्रेष्ठ आन्विक्षिकी शास्त्र निरीक्षण करके उपनिषत् और परिशिष्ठ शास्त्रोंको मन ही मन मथा। हे राज शार्द्दूल! वार्त्ता, शास्त्र, दण्डनीति और आन्विक्षिकी इन तीनोंके अतिरिक्त चौथी मोक्षकी निमित्त हितकरी साम्परायकी विद्या जो कि पञ्चविंश अर्थात् शरीरकी आत्माकी अधिकार करके निवास करती है, जिसे तुम्हारे समीप इसके पहले वर्णन किया है, उसे भी विश्वावसुके समीप कहा था। हे राजन्! उस समय मैंने गन्धर्व्वराज विश्वावसुसे कहा तुमने मेरे समीप जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर कहता हूं, सुनो। हे गन्धर्व्वेन्द्र! तुमने जो विश्वाविश्व कहके प्रश्न किया है, उसके बीच भूत भविष्य कालक पराविद्या अव्यक्तको विश्व कहके जानो। और गुण कर्त्तृत्व निबन्धन त्रिगुणात्मक निष्कल पुरुषको अविश्व समझो अर्थात् जो पुत्र और वित्तसे भी प्रिय है, दूसरी सब वस्तुओंसे अन्तरतर है और जो आत्मरूपसे सबके भी है, वही अविश्व शब्द प्रतिपाद्य है और उसके अतिरिक्त वस्तुमात्रको ही विश्व कहा जाता है। अश्वाश्व पदके वाच्य मिथुन अर्थात् प्रकृति पुरुष ही विदित हुआ करते हैं। स्त्रीरूपी प्रकृतिको अव्यक्त और जिसके प्रतिविम्बसे प्रकृति सब कार्य्योंका निर्व्वाह करती है, उस निर्गुणको पुरुष कहते हैं। इस ही प्रकार प्राचीन विपश्चितगण प्रकाशात्मक पुरुषको मित्र, जलको इस समस्त जगत्के उत्पन्न करनेका कारणहेतु प्रकृतिको वारुण

अर्थात् बहुधा दैवतारूपी निर्देश किया है। और प्रकाशमात्रसे ही जगज्जन्म आदिका कारण होना सम्भव नहीं होता, इससे जगज्जन्म आदिके उपयोगी जो ज्ञान है, वह मायाभ्रान्ति है, इसलिये पण्डित लोग प्रकृतिको ही ज्ञान रूपसे वर्णन किया करते हैं, और ज्ञेय स्वरूप जो ज्ञान है, वही निष्कल अर्थात् सत्य ज्ञान है, वही ब्रह्म कहके विदित हैं। ज्ञ और अज्ञ शब्दके प्रतिपाद्य ईश्वर तथा जीव है, क्यों कि कार्य्य उपाधिको जीव और कारण उपाधिको ईश्वर कहा जाता है। कार्य्य कारण उपाधि योगसे ब्रह्मको जीव तथा ईश्वर कहा जाता है, उस उपाधिसे रहित होनेसे ही वह निष्कल शब्दसे पुकारा जाता है। क, तपा और अतपा कौन पुरुष है। यह जो तुमने पूछा है, वह विषय कहता हूं सुनो। क शब्दसे आनन्द, तपासे प्रकृति और अतपासे निष्कल ब्रह्म स्मृत होता है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं। अज्ञान पुरुषार्थका प्रतिबन्ध करता है, वही अवेद्य है और आत्माही वेद्यरूपसे वर्णित हुआ है। तुमने जो चलाचलका उल्लेख करके प्रश्न किया है, वह भी मेरे समीप सुनो। लय और सृष्टिके कारण प्रकृतिको पण्डित लोग चला कहते हैं, क्यों कि प्रकृति विक्रियमाण होकर जगत्का लय और उदय किया करती है, इस ही लिये निश्चल शब्दसे स्मृत होती है, यद्यपि शास्त्रके अनुसार इसके पहले प्रकृतिका अवेद्य और पुरुषको वेद्यरूप कहा गया है, तथापि वस्तु स्वभावकी पर्य्यालोचना करके देखा जाता है, कि प्रकृतिका दृश्यत्व निबन्धन ही वेद्य और अदृश्यत्व निबन्धनसे पुरुष अवेद्य है। प्रकृति जड़ है, इसलिये जैसे वह अपनेको नहीं जान सकती वैसे ही निष्कल आत्मा भी स्वप्रकाशसे वृत्ति विरोधके हेतु निज आत्माको नहीं जान सकता इस ही निमित्त प्रकृति तथा आत्मा दोनों ही अज्ञ हैं। अनादि और अक्षय परिणामी नित्य-ताके व्यवहारके कारण प्रकृति नित्य तथा पुरुष स्वतःसिद्ध नित्य पदार्थ है, पण्डित लोग अध्यात्म शास्त्रके निश्चय निबन्धनसे प्रकृति और पुरुष दोनोंको ही अज और नित्य कहा करते हैं। नित्य सृष्टि विषयमें अक्षतके कारण पण्डित लोग जन्म रहित पुरुषको अव्यय कहते हैं और इस अव्यय पुरुषको वे लोग अक्षय भी कहा करते हैं, क्यों कि उत्पन्न हुए घट पट आदि पदार्थोंकी भांति यह नष्ट नहीं होता। सत्त्व, रज और तमोगुणके क्षयवत्ता हेतु अर्थात् अप्राकृत लोगोंमें सत्त्वादि गुणोंकी सत्त्वासन्दिग्धता निबन्धन और आद्य प्रलयकालमें तीनों गुणोंकी साम्यावस्थामें गुण कार्य्योंका अवश्य नाश होता है, इसलिये पण्डित लोग प्रकृतिको अक्षय कहके पुरुषको भी अक्षय कहा करते हैं। मैंने तुम्हारे समीप यह मोक्षसाधनके उपायभूत आन्वि-क्षिकी विद्याका वर्णन किया; हे विश्वावसु! ऋक्, यजु, सामरूप तीनों वेदोंका युक्तिके सहित सयुक्त करके गुरुके समीप जाकर यत्नपूर्व्वक समस्त वेद तथा नित्यकर्म्म विषयको विशेषरू-पसे जानना चाहिये। हे गन्धर्व्व सत्तम! ये आकाश आदि भूत जिस अधिष्ठानसे उत्पन्न होकर जिसमें लीन होते हैं, उस वेदार्थ प्रति-पाद्य वेद्य आत्माको जो लोग न जानें और यदि कोई साङ्गोपाङ्ग सब वेदोंको पढ़के वेदसे जानने योग्य उस आत्माको न जान सके, तो वे वेदके बोझ मात्रको ढोनेवाले हैं। हे गन्धर्व्वस-त्तम! जो पुरुष घृतकी इच्छा करके खराक्षीर मथता है, वह उस क्षीरमें भी केवल विष्टा देखा करता है, शुद्ध घृत वा पवित्र मक्खन नहीं देखता। वैसे ही जो वेद जाननेवाला पुरुष अवेद प्रकृति और वेद्य पुरुषका दर्शन नहीं करता, वह मूढ़बुद्धि मनुष्य केवल ज्ञानका भार ढोनेवाला कहा जाता है। जिस दर्शनके जरिये जीवका बार बार जन्म और मृत्यु न होसके, प्रकृति और परमात्माको अन्तरात्माके अनुसार

उन्हें ही आपसे सदा दर्शन करना उचित है। इस लोकमें अजस्र जन्म मृत्युके विषयकी चिन्ता करके क्षयशील कर्म्मकाण्डमें कहे हुए धर्मोंको परित्याग करके अक्षय योगधर्म्मको अवलम्बन करना उचित है। हे काश्यप! त्वं पदार्थके प्रतिपाद्य पुरुष प्रतिदिन यदि आत्माको अवलोकन करे, तब वह वाक्य नित्य ज्ञानके जरिये केवलीभूत और अविद्या विमुक्त होकर उस पदार्थके प्रतिपाद्य परमात्माका वश करनेमें समर्थ होगा। शाश्वत ईश्वर स्वतन्त्र है और पचीसवां जीव स्वतन्त्र है, मढ़ लोग ऐसी सम्भावना किया करते हैं, परन्तु वेदान्तनिष्ठ साधु लोग उन दोनोंको अभिन्न रूपसे देखते हैं। यह मत समझो कि सांख्य और पातञ्जल मतावलम्बी मनुष्य जीव और ईश्वरके अभेद दर्शनको अभिनन्दन नहीं करते, जन्म मृत्यु भयके उद्वेगसे युक्त परम तत्त्वको खोजनेवाले सांख्य मतावलम्बी पुरुष स्पष्टरूपसे जीव और ईश्वरका अभेद कहते हैं और योगाचारी पण्डित लोग मोक्ष समयमें जब जीव सब क्लेशोंसे रहित होता है, उस समय निर्व्विशेष चिन्मात्रमें लीन हुआ करता है, इस ही भांति दोनोंका अभेद स्वीकार किया करते हैं।

विश्वावसु बोले, हे ब्राह्मणसत्तम! आपने जो जीव तत्त्वके विषय कहे अर्थात जीव अच्युत और परमात्मासे अभिन्न है, यह सत्य है, परन्तु जीवका ईश्वरत्व अत्यन्त दुर्ब्बच है। यद्यपि इस विषयको मैंने बहुतोंके मुखसे सुना है, तौभी मुझे आपपर अधिक विश्वास रहनेसे आपको विस्तारके सहित इस विषयको वर्णन करनेका अनुरोध करता हूं। आप ही इस विषयको वर्णन करनेके उपयुक्त पात्र हैं। जैगीषव्य, असित, देवल, विप्रर्षि पराशर, बुद्धिमान वार्षगण्य भृगु, पञ्चशिख कपिल, शुकदेव, गौतम, आर्ष्टिषेन, महात्मा गर्ग, नारद, आसुरि धीमान पुलस्त्य, सनत्कुमार, महानुभाव शुक्र, काश्यप और अपने पिताके मुखसे पहले मैंने इस विषयको सुना था। तिसके अनन्तर रुद्र, धीमान् विश्वदेव देवताओं, पितरों और दैत्योंके समीप मैंने इस नित्य वेद्य विषयको जाना है, इसे ही सब कोई नित्य वस्तु कहा करते हैं। हे ब्रह्मन्! इसलिये मैं आपको बुद्धिके जरिये स्थिरीकृत इस तत्त्व विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं, आप शास्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ, प्रगल्भ और अत्यन्त बुद्धिमान हैं, आपसे कुछ भी अविदित नहीं है, आप सब वेदोंके अवलम्ब रूपसे स्मृत हुए हैं। हे ब्राह्मण! देव लोक और पितर लोकमें यही कहा जाता है, कि ब्रह्म लोकमें गये हुए महर्षि लोग ही तत्त्व विषय कहा करते हैं। तापदाता आदित्य सदा आपके उपदेष्टा हैं। हे याज्ञवल्क्य! आपने समस्त सांख्य ज्ञान लाभ किया है, विशेष करके योग शास्त्र भी जाना है, और चराचर ज्ञान गोचर करके निःसन्दिग्ध रूपसे प्रवृत्त हुए हैं। इसलिये मैं आपके निकट मण्डलमय घृतकी भांति अत्यन्त स्वादमय तत्त्व ज्ञानका विषय सुननेकी इच्छा करता हूं।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे गन्धर्व्व सत्तम! मैं विवेचना करता हूं, तुमने सब शास्त्रोंको जाना है, इस समय मुझसे जो कुछ पूछते हो, उस विषयको मैंने जिस प्रकार सुना है, वैसे ही कहता हूं सुनो। हे गन्धर्व्वराज! पुरुष बुध्यमान अर्थात् जड़ प्रकृतिको प्रकाश करता है, परन्तु प्रकृति पुरुषको प्रकाश नहीं कर सकती। सांख्य और योगमतावलम्बी तत्त्वज्ञ लोग श्रुति दर्शनके अनुसार इस पुरुषके प्रतिरोध निबन्धन अर्थात् प्रकृतिमें चित्प्रतिबिम्बके कारण उस प्रकृतिको प्रधान कहा करते हैं। भूतात्मा एक होके भी सब भूतोंमें निवास कर रहा है, वह एक होके भी जलमें चन्द्रमण्डलकी प्रतिबिम्बकी भांति अनेक दीखता है, चित्प्रतिबिम्बता बुद्धि ही 'मैं'—इस प्रत्ययका विषय है।

हे अनघ! चिदाभाससे स्वतन्त्र साक्षी जाग्रत आदि अवस्थान अर्थात् प्रकृति पुरुषके विवेकके समयमें विकारयुक्त अव्यक्त और आत्माको अवलोकन करती है, और सुषुप्ति अवस्थान अथवा निर्व्विकल्प समाधि समयमें परमात्म दर्शन लाभ किया करती है, इसलिये जबतक साक्षी साक्ष्यके सहित सम्बन्ध विशिष्ट रहता है, उस समय जीव और साक्ष्य वियुक्त होनेसे ही आत्म रूपसे प्रकाशित होता है। जो पुरुष आत्माको अवलोकन करते हुए इसके सहित परमात्माका दर्शन करते हैं, वे कुछ भी दर्शन करनेमें समर्थ नहीं हैं। आत्मा यह अभिमान करता है, कि मुझसे श्रेष्ठ और दूसरा कोई भी नहीं है। ज्ञानदर्शी मनुष्य प्रकृतिको आत्म-भावसे ग्रहण नहीं करते। मछली जलको ही अनुगत हुआ करती है, वह वैसी प्रवृत्तिके कारण उसहीमें प्रवृत्त होती है, जैसे मछली जलमें रहके प्रकाशित होती है, आत्मा भी अव्यक्तसे आवृत रहके, उस ही भांति प्रकाशित हुआ करता है। सदा सहवास और साभिमा-नसे जीव स्नेहयुक्त होता है, जबतक जीवका परमात्माके सङ्ग अभेद नहीं होता, तबतक वह संसारमें निमग्न और उन्मग्न हुआ करता है। हे द्विज! मैं चिदात्मा अन्य हूं और ये विष-यादि आत्मासे पृथक् पदार्थ अन्य हैं,—जब जीव ऐसा समझता है, तब वह केवलीभूत होकर परमात्माका दर्शन करता है। हे राजन्! जीव पृथक् है और परमात्मा स्वतन्त्र है। परन्तु परमात्माका जीवमें अधिष्ठान रहनेके कारण साधु लोग दोनोंको एक भावसे अनुभव किया करते हैं।

हे महामुनि काश्यप! जन्म मृत्युके भयसे भीत योग और सांख्य मतावलम्बी मनीषी पुरुष जीवको अविनाशी कहके अभिनन्दन नहीं करते, वे लोग पवित्र तथा आत्मपरायण होके परमात्माका दर्शन करते हैं। आत्मा विशुद्ध होनेसे परमात्माका दर्शन करनेमें समर्थ होता है, उस समय वह सर्व्ववित् और ज्ञानस-म्पन्न होकर फिर जन्म नहीं लेती। हे अनघ! यह मैंने वेद प्रमाणके अनुसार अप्रतिबुद्ध प्रकृति बुध्यमान जीव और बुद्ध ब्रह्मतत्त्वका यथावत् वर्णन किया। हे काश्यप! जो पुरुष द्रष्टा और उससे इतर पदार्थोंको नहीं देखता, मोक्षवि-षयमें हितकर तथा दृक् दृश्यके अन्यत्व निर्व्विक-ल्पभावको नहीं देखता, वह मोक्षनिर्म्मुक्त और साक्षीरूप चिदाभास जगत कारण तथा मह-दादि कार्य्योंको देखनेमें समर्थ होता है।

विश्वावसु बोले, हे विभु! आपने सत्य, शुभ-कर और मोक्षसाधनके उपायभूत पूर्ण ब्रह्मत-त्वको यथावत् वर्णन किया है, इसलिये आपका सदा अक्षय मङ्गल होवे तथा आपका मन सदा बुद्धियुक्त रहे।

याज्ञवल्क्य बोले, उस महात्माके ऐसा कह-नेपर मैंने उसे परम परितोषके सहित देखा, तब वह मेरी प्रदक्षिणा करके सौन्दर्य्ययुक्त शरीर धारण करके स्वर्गलोकमें गये। हे नरेन्द्र! ब्रह्मलोकमें खेचरोंके निकट भूमण्डल और रसातलमें जो लोग मोक्षपथको अवलम्बन करके वास करते हैं, उन्होंने उन लोगोंके निकट इस मोक्ष साधन शास्त्रको प्रदर्शित किया। जैसे सांख्य मतावलम्बी मनुष्य सांख्यधर्म्ममें रत हैं, वैसे ही पातञ्जल मतवाले मनुष्य योगधर्म्ममें अनुरक्त है, इनके अतिरिक्त जो सब मनुष्य मोक्षको कामना किया करते हैं, उनके सम्बन्धमें इस शास्त्रके फल प्रत्यक्ष सिद्ध हैं। हे राजश्रेष्ठ नरेन्द्र! ज्ञान हेतुसे मोक्ष हुआ करती है, अज्ञानसे मोक्ष नहीं होती, पण्डित लोग ऐसा ही कहा करते हैं; इसलिये जिस ज्ञानके सहारे आत्माको जन्म मृत्युसे मुक्त किया जासकता है, यथार्थ रीतिसे उस ज्ञानको खोज करनी उचित है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा नीच जाति शूद्रसे भी ज्ञान लाभ करके श्रद्धावान पुरुषको

उस विषयमें सदा श्रद्धा करनी योग्य है, क्यों कि श्रद्धावान पुरुषके निकट जन्म-मृत्यु प्रवेश नहीं कर सकती। सब वर्ण ही ब्राह्मण हैं, क्यों कि ब्रह्मासे उत्पन्न हुए हैं, सभी सदा "ब्रह्म" ऐसा ही वचन कहा करते हैं, इसलिये मैंने ब्रह्म-बुद्धिसे तत्त्वशास्त्रकी व्याख्या की है, सब संसार ही ब्रह्ममय है, इससे यह दृश्यमान विश्व ही ब्रह्म है। ब्रह्माके मुखसे ब्राह्मण, भुजासे क्षत्रिय, नाभिसे वैश्य और दोनों चरणोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई है; इसलिये सब वर्णोंको ही दूसरी भांति समझना उचित नहीं है। हे राजन्! इन सब वर्णोंका अज्ञानवशसे जिस प्रकार नाश होता है, उसहीके अनुसार कर्म्म-योनिकी भजना करते हैं और ये लोग ज्ञान हीन होकर घोर अज्ञानसे प्राकृत योनिजालमें पतित होते हैं। इसलिये सब वर्णके ज्ञानकी सब भांतिसे खोज करनी योग्य है, यही मैंने तुमसे कहा है। हे नरेन्द्र! जो ज्ञाननिष्ठ हैं, वेही ब्राह्मण हैं, इसलिये जिस ब्राह्मण वा क्षत्रियने ज्ञान अवलम्बन किया है, उसहीके लिये यह मोक्षशास्त्र नित्य सिद्ध है,—ऐसा ही प्राचीन पण्डित लोग कहा करते हैं। हे राजन्! तुमने जो पूछा था, मैंने यथार्थ रूपसे उस ही विषयका उपदेश दिया; इसलिये अब शोकरहित होकर ज्ञान आलोचनाके पारदर्शी बनो, तुमने उत्तम प्रश्न किया था, इससे तुम्हारी सदा स्वस्ति होवे।

भीष्म बोले, राजा मिथिलेश उस धीमान् याज्ञवल्क्यका ऐसा उपदेश सुनके प्रसन्न हुए। प्रदक्षिणाके अनन्तर जब मुनिवर चले गये, तब देवरात पुत्र मोक्षवित् राजा जनकने उस समय ब्राह्मणोंको एक करोड़ गऊ, सुवर्ण और अञ्जलिपूर्ण रत्न दान किया। मिथिलाधिपति उस समय पुत्रको राज्य देकर यति धर्म्म अवलम्बन करके निवास करने लगे। हे राजेन्द्र! वह प्राकृत धर्म्माधर्म्मको सब प्रकारसे निन्दा करके सांख्य ज्ञान और समस्त योग शास्त्रको अध्ययन करनेमें प्रवृत्त हुए। मैं अनन्त अर्थात् तीनों परिच्छेदोंसे रहित हूं, ऐसा मनमें निश्चय करके सदा एकमात्र परमात्म तत्त्वका विचार करने लगे। और ऐसा निश्चय किया, कि धर्म्माधर्म्म, पुण्य पाप, सत्यासत्य जन्म मृत्यु, ये सभी मिथ्या हैं। हे नरनाथ! सांख्य और योग मतावलम्बी मनुष्य निज निज शास्त्रके कहे हुए लक्षणके अनुसार इन धर्म्मादिको व्यक्त और बुद्धि आदिको अव्यक्त भावसे सदा अवलोकन करते हैं। पण्डित लोग कहते हैं इष्टानिष्टसे विमुक्त परात्पर ब्रह्म जो स्थाणुकी भांति सदा अचल भावसे निवास करता है, वही शुद्ध है, इसलिये तुम भी उसे जानके पवित्र होजाओ। हे महाराज! जो दान किया जाता है, जो प्राप्त किया जाता है, जो दान करनेमें अनुमित होता है, जो दान करता और जो परिग्रह करता है, वह दीयमान गऊ आदि सब वस्तु ही आत्मा है; उस एकमात्र आत्मासे भिन्न और कौन होसकता है, तुम सदा ऐसा ही जानो, विपरीत चिन्ता मत करो। जो पुरुष सगुण वा निर्गुण प्रकृतिको जाननेमें समर्थ नहीं है, उस विपश्चित मनुष्यको तीर्थसेवा और यज्ञानुष्ठान करना उचित है। हे कुरुनन्दन! स्व-शाखोक्त वेदाध्ययन तपस्या वा यज्ञ आदिके जरिये ब्रह्मपद नहीं मिलता, मनुष्य परब्रह्मको जाननेसे ही सब लोगोंमें पूजनीय होता है, और क्रमसे महत्तत्त्वके स्थान अहंकार और अहंकारके भी परतर स्थानोंको प्राप्त किया करता है। जो सब शास्त्र परायण मनुष्य अव्यक्तसे परम श्रेष्ठ, जन्म मृत्युसे रहित कार्य्यकारण भावसे सदसत् नित्य शुद्ध परमात्माको जान सकते हैं, वे परम पद पानेमें समर्थ होते हैं। हे राजन्! पहले मैंने राजर्षि जनकके समीप यह ज्ञान लाभ किया था, ज्ञान ही सबसे श्रेष्ठ है, यज्ञ श्रेष्ठ नहीं है। ज्ञानसे

सहारे जीव जन्म मरण स्वरूप दुर्गसे पार होता है, यज्ञके जरिये उससे कदापि पार नहीं हो सकता।

हे राजन! ज्ञानवित् मनुष्य भौतिक जन्म मरणको ही दुर्ग कहते हैं, उसके अतिरिक्त दूसरा और कुछ भी दुर्ग नहीं है। मनुष्य यज्ञ तपस्या, नियम और व्रतके जरिये स्वर्ग लाभ करके फिर पृथ्वीपर पतित होता है, इसलिये पवित्र होके परात्पर विमोह विमल पवित्र परब्रह्मकी उपासना करो। हे पार्थिव! क्षेत्र ज्ञानपूर्व्वक यथार्थ ज्ञान यज्ञकी उपासना करनेसे ज्ञानी होगे। उपनिषत् पाठ करनेसे जो उपकार होता है, पहले समयमें याज्ञवल्क्य मुनिने राजा जनकका वही उपकार किया था। उन्होंने जो शाश्वत अव्यय गुरुपक्ष उपदेश दिया, उसहीसे जनक शुभ, अमृत और शोक रहित परमात्माको प्राप्त हुए।

३१८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! मनुष्य महत् ऐश्वर्य्य, विपुलवित्त अथवा दीर्घ परमायु पाके किस प्रकार मृत्युको अतिक्रम करता है। महत् तपस्या, कर्म्म अथवा शास्त्र ज्ञान वा रसायन प्रयोग इनके बीच क्या करनेसे मनुष्य जरा मृत्युको प्राप्त नहीं होता।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें पञ्चशिख नाम किसी सन्त्यासीके सहित जनकको जो वार्त्ता हुई थी, उस ही प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। विदेहवंशीय राजा जनकने धर्म्मार्थ संशय छेदन करनेवाले देवविसम महर्षि पञ्चशिखसे पूछा,—हे भगवन्! तपस्या, बुद्धि, कर्म्म वा शास्त्रज्ञान, इन सबके बीच किसके जरिये मनुष्य जन्म और मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ होता है। अपरोक्षवित् महर्षिने विदेहराजके ऐसा पूछनेपर यह उत्तर दिया,—जन्म मरणकी निवृत्ति नहीं है और किसी प्रकार उसकी निवृत्ति हो, यह भी नहीं है। दिन रात और महीनोंकी निवृत्ति नहीं होती, जो अनित्य होके भी सदाके लिये नित्यपथ अवलम्बन करते हैं, अर्थात् स्वधर्म्माचरण पूर्व्वक निवृत्ति मार्गमें निष्ठावान होते हैं, वेही जरा मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ हैं। सर्व्वभूतोंका समुच्छेद मानो सदा ही स्रोतमें भासमान होरहा है, नौकारहित काल सागरमें जिसे भासमान देखा जाता है, वही डूबता है, जरा मृत्युरूपी महाग्राहसे पकड़े जानेपर कोई फिर नहीं लौटता। कालसागरमें बहते हुए मनुष्यका कोई भी आत्मीय नहीं है और वह भी किसीका आत्मीय नहीं है, पत्नी और दूसरे बान्धवोंके साथ मिलना पथिकोंके मिलनेकी भांति अचिर कालतक स्थायी मात्र है। जीवने पहले किसीके सङ्ग अत्यन्त सहवास लाभ नहीं किया है, जब जिसके साथ मिलन होता है, तभी उसके निमित्त रोदनके सहित वियोग हुआ करता है। जैसे वायुके वेगसे बादल छितरा जाते हैं, वैसे ही कालवशसे जो लोग गमन करते हैं, वे फिर लौटके नहीं आते। जरा मृत्यु भेड़ियेकी भांति प्राणियोंको भक्षण करती है। क्या बलवान, क्या निर्व्वल, क्या छोटे वा बड़े किसीका भी जरा मृत्युके समीपसे छुटकारा नहीं है। ऐसे अनित्य प्राणियोंके बीच नित्यभूत भूतात्मा स्थित है, इसलिये प्राणियोंके जन्मनेसे लोग किसलिये हर्षित होते और मरनेपर क्यों दुःख किया करते हैं। मैं कहांसे आया हूं, मैं कौन हूं, कहां जाऊंगा, मैं किसका हूं, कहा हूं, किस लिये किस स्थानमें जन्म ग्रहण करूंगा; क्या लोग इसकी आलोचना किया करते हैं; स्वर्ग वा नरकका द्रष्टा दूसरा कौन है? इसलिये सब शास्त्रोंको अतिक्रम न करके दान और यजन करना उचित है।

३१९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुराजसत्तम ! किस पुरुषने गार्हस्थ्यधर्म्म परित्याग न करके बुद्धिके विषयासेद मोक्षतत्वको पाया है, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये। हे पितामह ! यह स्थूल शरीर तथा लिङ्ग शरीर कैसे परित्यक्त होता है और मोक्षका परम तत्व क्या है, आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, हे भारत ! इस विषयमें सुलभा और जनकके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका पुराने लोगोंने इस विषयमें यह दृष्टान्त दिया करते हैं। पहिले समयमें मिथिलादेशमें संन्यास फलदर्शी जनक नाम कोई राजा थे, वह श्रेष्ठ धर्म्मध्वजा कहके विख्यात हैं। उन्होंने मोक्ष शास्त्र वेद और निज दण्डनीति शास्त्रमें विशेष श्रम किया था तथा इन्द्रियोंको समाधान करके इस पृथ्वीको शासन किया। हे नरनाथ ! बुद्धिमान पुरुषोंने उस वेदविद् भूपतिकी उत्तम वक्तृता सुनके सब कोई उसके चरित्रके अनुरक्त हुए थे। उस सत्ययुगमें योगधर्म्मका अनुष्ठान करनेवाली सुलभा नामी भिक्षुकी अकेली ही इस पृथ्वीमण्डलपर विचरती थी। वह इस सारे जगत्में घूमती हुई जिस जिस स्थानमें उपस्थित होती थी, उस हो उस स्थानमें सन्न्यासियोंके मुखसे सुनती, कि पृथ्वीमण्डलके बीच मिथिलेश्वर ही मोक्ष धर्म्ममें अत्यन्त निष्ठावान हैं। उसने अत्यन्त सूक्ष्म वचन सुनके यह सत्य है वा नहीं, ऐसा सन्देह करके राजा जनकका दर्शन करनेके लिये सङ्कल्प किया। उस समय उस अनिन्दिताङ्गीने योगबलसे पूर्व्वरूपको परित्याग कर एक दूसरा उत्तम रूप धारण किया। वह कमलनैनी शुभ्र शीघ्रगामी अस्त्रकी भांति गति अवलम्बन करके पलभरमें विदेहकी राजधानीमें गई। अनेक लोगोंसे परिपूरित मिथिलानगरमें पहुंचके भैक्ष्यचर्य्याके छलसे मिथिलेश्वरको देखा। राजा उसको अत्यन्त सुकुमारतायुक्त शरीर देखकर मनही मन "यह कौन है, किसकी कन्या है, कहांसे आई है ?" ऐसा सोचते हुए विस्मित हुए। अनन्तर राजाने उसके स्वागत प्रश्नकर बैठनेकी आज्ञा दी, फिर उसका चरण धोके पूजा और उत्तम अन्न दानकर उसे तृप्त किया। भिक्षुकी सुलभा भोजन करके प्रसन्न हुई और मिथिलापति मुक्त है, वा नहीं ; इस विषयमें सन्देह कर समस्त भाष्यवित् अर्थात् सूत्रार्थ जाननेवाले ऋषियोंके बीच मन्त्रिमण्डलीमें घिरे हुए राजासे मोक्षधर्म्मका विषय पूछनेमें प्रवृत्त हुई। योग जाननेवाली सुलभाने मोक्षधर्म्मके विषयको पूछनेकी इच्छा करके पहले निज नेत्ररश्मिको संयत करती हुई निज बुद्धिसे राजाकी बुद्धिमें प्रवेश करके योगबलसे उन्हें वशीभूत किया। हे नृपवर ! राजा जनकने भी अपने अजेयत्व अभिमानसे गर्व्व करके सुलभाके आशयको अभिभव करनेकी इच्छासे उसका अभिप्राय निज अभिप्रायके जरिये ग्रहण किया, अर्थात् उसके सहित समभावसे एक ही शरीरमें बास करने लगे। राजा राजचिन्ह छत्र आदि और सुलभा भी यति-चिन्ह त्रिदण्ड प्रभृति परित्याग करके अर्थात् दोनोंके स्थूल देहही सब चिन्ह परित्याग करनेपर उस एक मात्र अधिष्ठानमें जो वार्त्ता हुई थी उसे सुनो।

जनक बोले, हे भगवति ! तुम्हारा यह आचरण कहांसे हुआ, तुम किसकी कन्या हो, किस स्थानसे आई हो, इस समय कहां जाओगी ? पृथ्वीपति जनकने सुलभासे यही प्रश्न किया और कहने लगे, अवस्थाके अनुसार शास्त्रका ज्ञान अथवा जातिसे सद्भाव नहीं होता, इसलिये जब मेरे निकट समागम हुआ है, तब इन विषयोंका यथार्थ उत्तर जानना उचित है। मैंने राजा होके भी छत्रादि राजचिन्होंको परित्याग किया है, इसे यथार्थ रूपसे मालूम करो। मैं तुम्हें विशेष रूपसे जाननेकी

इच्छा करता हूं तुम मेरे निकट मान्य के योग्य हुई हो। पहिले मैंने जिससे यह वैशेषिक ज्ञान लाभ किया है और मुझे छोड़के दूसरा कोई भी जिसका वक्ता नहीं है, वह मोक्षका हेतु मुझसे सुनो। पराशरके सगोत्र महात्मा वृद्ध भिक्षु पञ्चशिखका मैं प्रिय शिष्य हूं, सांख्य ज्ञान, योग और राजविधि, यह तीन प्रकारके मोक्षधर्मके पथमें विचरते हुए मैंने संशयको नष्ट किया है। वह पञ्चशिख शास्त्रदृष्ट मार्गसे विचरते हुए प्रतिवर्ष चार महीनेतक परम सुखसे मेरे निकट वास करते थे। उस सांख्य-ज्ञानी सुदृष्टार्थ गुरुके मुखसे मैंने त्रिविध मोक्षका हेतु सुना है, किन्तु राज्यसे विचलित नहीं हुआ। मैं उस ही गुरुके उपदेशको ग्रहणकर रागरहित होके अकेला ही परम पदमें निवास करते हुए निखिल वृत्तिसे युक्त तीनों प्रकारकी मोक्षसंहिता आचरण किया करता हूं। वैराग्य ही इस मोक्षसाधनका उपाय है, ज्ञान हेतुसे वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्यसे पुरुष मुक्त होता है। ज्ञानके जरिये मनानाशके कारण योगाभ्यास हुआ करता है; योगाभ्यासके जरिये आत्मज्ञान प्राप्त होता है, आत्मज्ञान ही जीवके सुखदुःख आदि मोक्षका हेतु है और जिसके जरिये मृत्युको जय किया जा सकता है, उसे ही सिद्ध करते हैं, मैंने आसक्तिहीन तथा मोह रहित होकर इस लोकमें विचरते हुए सुखदुःखसे वर्ज्जित यह परम बुद्धि पायी है। जैसे जल भरनेसे नरम मिट्टी युक्त खेतमें अङ्कुर जमते हैं, वैसे ही मनुष्योंके कर्म भी बीज स्थानीय होकर पुनर्जन्मके कारण हुआ करते हैं। जैसे पलमें भुने हुए बीज अङ्कुर उत्पत्तिके हेतु होनेपर भी अङ्कुर उत्पत्तिके असामर्थ्य निबन्धनसे उत्पन्न नहीं होते, वैसे ही भगवन् भिक्षु पञ्चशिख आचार्य्यने मेरी बुद्धिको वासना बीजसे रहित किया है, इसीसे वह विषयमें प्रवृत्त नहीं होती। मेरी बुद्धि शत्रु, बध आदि अधर्ममें वा वनिता-शक्ति विषयमें अनुराग प्रकाश नहीं करती, क्यों कि मैं रोष और रागको व्यर्थताके कारण किसी विषयमें भी अनुरक्त नहीं हूं। यदि कोई पुरुष मेरी दहिनी भुजाको चन्दनसे तर करे और कोई पुरुष बसुलेसे मेरी भुजाको काटे, तो वे दोनों पुरुष ही मेरे निकट समान हैं। उस ही समयसे मैं सुखी, सिद्धार्थ लोष्ट पत्थर सुवर्णमें समदर्शी, आसक्ति रहित और दूसरे त्रिदण्डियोंके सहित निर्व्विशेष होके भी राजकार्य्य करता हूं। किन्हीं किन्हीं मोक्षवित मनीषियोंने मोक्ष विषयमें त्रिविध निष्ठा देखी है, कोई कोई लोकोत्तर ज्ञान और कर्म्मोंके एकही समयमें परित्यागको मोक्षका उपाय कहा करते हैं, कोई कोई मोक्ष शास्त्रके जाननेवाले पण्डित ज्ञाननिष्ठाको ही मोक्षका साधन कहते हैं, और कोई कोई सूक्ष्मदर्शी यति लोग कर्म्मनिष्ठाको ही मोक्षको उपाय कहके विख्यात करते हैं, परन्तु महानुभाव पञ्चशिखने ज्ञान और कर्म दोनोंको ही परित्याग करके कर्म-कृत उपकारके निरपेक्ष केवल ज्ञानको ही मोक्षका कारण कहा है, इसलिये यह तीसरी निष्ठा कहके विख्यात हुई है। यम, नियम, काम, द्वेष, परिग्रह, मान, दम्भ और स्नेह, इन सबके बीच यदि गृहस्थ पुरुषोंमें यम नियम आदि रहे तो वह सन्न्यासियोंके समान है और यदि सन्न्यासी काम द्वेषसे दूषी हो, तो वह गृहस्थके सदृश है। यदि ज्ञानसे ही मोक्ष हो, तो त्रिदण्ड आदि धारण करनेकी क्या आवश्यकता है। परिग्रहको यदि तुल्य कारणता हो, तो छत्र आदि धारण मोक्षके प्रतिबन्धक नहीं हैं, अर्थात् ज्ञानसे ही मोक्ष होती है,—जब ऐसा सिद्ध हुआ तो त्रिदण्ड धारण और छत्र धारण दोनों ही समान हैं। इस जगत्‌में जिस जिस कारणसे प्रयोजन सिद्ध होते हैं, स्वार्थ परिग्रह विषयमें सब कोई उस

ही कारणको अवलम्बन किया करते हैं, प्रयोजनकी अल्पता वा अधिकता बन्ध मोक्षका कारण नहीं होती, परन्तु उसमें आसक्ति और अनासक्ति ही बन्ध मोक्षकी कारण हुआ करती है। जो पुरुष गृहस्थाश्रममें दोष देखकर दूसरे आश्रममें गमन करता है, वह एक आश्रमको त्यागके दूसरे आश्रममें जानेसे आसक्तिसे नहीं छूटता। जब कि निग्रह और अनुग्रह स्वरूप आधिपत्य समान होरहा है, तब राजाओंके सहित भिक्षुकको समान जानना होगा, इसलिये भिक्षुक जब राजाओंके तुल्य ही हुए, तब किस कारणसे मुक्त होंगे। और ज्ञानके जरिये यदि सत्यमें ही आधिपत्य हो, तब इस देहमें रहके दोनों ही सब पापोंसे छूट सकते हैं। गेरुआवस्त्र पहरना, सिर मुंड़ाना, त्रिदण्ड और कमण्डलु धारण आदि आश्रमके परिचय देनेवाले जो सब चिन्ह हैं, मेरे बिचारमें वे सब उत्पथ स्वरूपमात्र हैं, मोक्षके कारण नहीं हैं। आश्रम परिचायक चिन्होंके रहनेपर भी यदि ज्ञान ही दुःखको अत्यन्त निवृत्तिमें कारण होता है, तब दण्डकमण्डलुको धारण करना निरर्थक है। अथवा दुःखकी शिथिलता देखके यदि आश्रम-परिचायक चिन्ह धारण करनेमें प्रवृत्त हो, तो समान प्रयोजन निबन्धनसे छत्र आदि धारण करनेमें प्रवृत्ति क्यों न होगी। अकिञ्चनता रहनेसे ही मोक्ष नहीं होतो, और किञ्चनता हेतुसे बन्ध नहीं होता; चाहे जीव अकिञ्चन हो, चाहे किंचन ही होवे, ज्ञानके सहारे ही मुक्त हुआ करता है। इसलिये बन्धनके स्थान धर्म्म, अर्थ काम और राज्य परिग्रहमें लगे रहनेपर भी मुझे मोक्ष पदमें स्थित जानो, मैं इस जगत्में मोक्षरूपी पत्थरसे शोणित त्यागरूपी तलवारके जरिये स्नेहायतन बन्धनस्वरूप राज ऐश्वर्य मय पाशको काटा है, इसलिये आसक्तियुक्त पुरुष बद्ध होता है, और त्यागशील मनुष्य ही मुक्त हुआ करता है।

हे भिक्षुकी मैं प्रागुक्त प्रकारसे मुक्त हुआ हूं। इस समय तुम्हारे ऊपर दया हुई है, तुम्हारा रूप योगानुष्ठानके योग्य नहीं है, उसे कहता हूं, मेरे समीप सुनो। तुम्हारी सुकुमारता, सुन्दरताई उत्तम श्री, शरीर और यौवनका समय, यह सभी है, और योग प्रभाव भी है। सुकुमारता आदि और योगानुष्ठान, ये परस्पर विरुद्ध हैं, परन्तु इन विरुद्ध धर्म्मोंने तुम्हें अवलम्बन किया है; इस ही लिये मुझे संशय होता है, कि तुम योगसिद्धा ब्राह्मणी अथवा यक्ष वा राक्षस योनिमें जन्मी हो। तुम्हारी दण्ड ग्रहणकी चेष्टा अत्यन्त ही असदृश है; क्यों कि उसमें शरीर सुखाना प्रभृति आवश्यकता है, परन्तु तुममें वह नहीं है। "यह पुरुष मुक्त है, वा नहीं" ऐसा संशय करके तुम रूप आदिसे मुझे मोहित करनेका उद्योग कर रही हो, परन्तु कामयुक्त योगियोंको त्रिदण्ड धारण करना विहित नहीं है; तुम भी इस आश्रम परिचायक चिन्हकी रक्षा नहीं करती हो और मुक्त पुरुषको कोई विषय गोपन करना भी उचित नहीं है। मेरे शरीरमें प्रवेश करने अर्थात् स्वभावसे मेरे पूर्व्व शरीरको अवलम्बन करनेके तुममें जो व्यतिक्रम अर्थात् व्यभिचार हुआ है, उसे सुनो। मेरे राज्य वा राजधानीके बीच तुमने किसकी सहायतासे प्रवेश किया और किसके निकटसे आके मेरे हृदयमें प्रविष्ट हुई। तुम वर्णश्रेष्ठा ब्राह्मणी हो, मैं क्षत्रिय हूं; हम लोगोंका एकत्र योग नहीं होसकता, इसलिये वर्णसङ्कर मत करो। दूसरे तुम मोक्ष धर्म्ममें निवास करती हो, मैं गृहस्थाश्रममें बसता हूं। इसलिये आश्रमको सङ्कर करना भी तुम्हारे पक्षमें अत्यन्त कष्टकर होता है। तीसरे तुम मेरी सगोत्रा हो, वा असमान गोत्रा हो, उसे मैं नहीं जानता, परन्तु यदि तुमने सगोत्रके शरीरमें प्रवेश किया है, तो तुममें गोत्रसङ्कर दोष हुआ है। चौथे यदि

तुम्हारा पति जीवित हो, वा जीवित रहके किसी स्थानमें वास करता हो, तो पराई स्त्री अगम्या है, इससे तुममें धर्म्मसङ्कर दोष उपस्थित होता है ; इसलिये यदि तुम सन्न्यासिनीके वेषसे गृहस्थ आश्रममें प्रवेश करनेके लिये आई हो, तो पहले बिना गोत्र, आदिके जाने मेरे शरीरमें प्रवेश करना तुम्हें उचित नहीं था। और यदि तुम कार्य्यापेक्षिणी होकर अविश्वास अथवा मिथ्या ज्ञानसे पहले ही इन सब अकार्य्योंको करती हो, तो यह अत्यन्त अनिश्चित है। यदि तुम निज दोषसे किसी दूसरे पुरुष पर स्वाधीनता प्रकाशित करो, तो स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता शास्त्रमें निषिद्ध है, इसलिये तुम्हें जो कुछ शास्त्रज्ञान है, वह भी निरर्थक होरहा है। तीसरे यदि तुम प्रकाश्यमें बाहर हुई हो, तो इससे भी तुम्हारा महान् प्रीति-विघातक दुष्ट लक्षण मात्र होता है। तुमने जयकी अभिलाषिणी होकर केवल मुझे ही जीतनेकी इच्छा नहीं की है, मेरे इस सभा सम्बन्धीय सब पण्डितोंको भी जीतनेकी तुम्हारी अभिलाषा है। मेरे पक्षके प्रतिघात और निज पक्षको सिद्ध करनेके लिये तुम इन पूज्य पुरुषोंकी ओर देखरही हो। तुम दूसरेके उत्कर्षको असहिष्णुता रूपी आमर्ष जनित योगसमृद्धि मोहसे मोहित होकर विष और अमृतकी एकताकी भांति फिर योग अर्थात् परम बुद्धिके सहित निज बुद्धिका सम्बन्ध-विधान करती हो। यदि स्त्री पुरुष परस्पर अनुरक्त होके दोनों मिलित हों, तब उनका मिलना अमृत समान हुआ करता है और अनुरक्त दम्पतिका जो अमिलन है, वह विषके समान दोषरूपसे परिणत होता है, इसलिये तुम मुझे स्पर्श मतकरो साधु ज्ञानसे संन्यासि शास्त्रको पालन करो। मैं मुक्त हूं, वा नहीं, इसे जाननेके लिये तुमने इच्छा की है, परन्तु गुप्तभावसे मेरे समीप यह सब अभिप्राय छिपाना तुम्हें उचित नहीं है। यदि तुमने निज कार्य्य अथवा दूसरे किसी महाःपतिके कार्य्यके लिये ऐसा किया हो, तो दूसरा वेष धरके मेरे निकट सत्यको छिपाना तुम्हें अत्यन्त अनुचित है। राजाके समीप मिथ्यावेषसे न जावे, ब्राह्मणके निकट कपट वेषसे उपस्थित न होवे और पतिव्रता स्त्रीके समीप कपटाचारसे न जाना चाहिये ; जो लोग इनके निकट मिथ्या व्यवहार करते हैं, उनका नाश होता है। राजाओंका ऐश्वर्य्य बल है, ब्राह्मणोंका वेदबल है और स्त्रियोंको रूप यौवन सौभाग्य ही उत्तम बल स्वरूप है ; इससे ये लोग इन्हीं बलोंके सहारे बलवान हैं ; तब जो पुरुष स्वार्थकी इच्छा करे, उसे सरलभावसे इनके निकट जाना उचित है, इनके समीप कपटता करनेसे कपटीका विनाश हुआ करता है। जब तुम कपट आचारवाली हुई हो, तब तुम्हें जाति, शास्त्रज्ञान, चरित्र, अभिप्राय, अपना स्वभाव और आनेका प्रयोजन यथार्थ रूपसे कहना उचित है।

भीष्म बोले, सुलभा नरेन्द्रके जरिये यह सब रूखे, अयुक्त और असमञ्जस वचनसे पूछी जानेपर तनिक भी विचलित न हुई और राजाका वचन समाप्त होनेपर वह सुन्दरी उत्तम वचन कहने लगी।

सुलभा बोली, हे राजन्! गुरुतर अक्षर संयुक्तत्व आदि वक्ष्यमाण नव प्रकारके वाक्य दोष और वक्ष्यमाण काम आदि नव प्रकारके बुद्धिदोषसे रहित तथा अठारह गुणोंसे युक्त सङ्गतार्थ सूक्ष्म वाक्य. पूर्वपक्ष तथा सिद्धान्त पक्षके गुण दोषोंकी संख्या तथा गुणदोषोंके बलाबलका विचार, विनिर्णय अर्थात् सिद्धान्त और अनुष्ठान, इन पांचो विषयोंसे संयुक्त होनेसे वाक्य अर्थात् शब्दाख्यप्रमाण रूपसे अभिहित होता है। पद, वाक्य, पदार्थ और वाक्यार्थ इस चार प्रकारके भेदके अनुसार पहले कहे हुए सूक्ष्मादिके पृथक् पृथक् लक्षण सुनो। जब ज्ञेय पदार्थोंके भिन्न भिन्न होनेसे ज्ञान विभिन्न होता है,

और जिसमें बुद्धि अनेक तरहसे संशय करती है उसीको सूक्ष्म अर्थात् दुर्ज्ञेय वाक्य कहते हैं। किसी विषयका अभिप्राय करके दोष और गुणोंको विचारके अनुसार बलाबल विचार करनेको संख्या कहके निश्चय करो और संख्यात गुण दोषोंके बीच यह प्रथम वक्तव्य है, उसे पश्चात कहना चाहिये। ऐसे बलाबल विचारको वाक्य-विद् पुरुष क्रमयोग कहा करते हैं। धर्म्म, काम, अर्थ, मोक्षविषयमें विशेष रूपसे प्रतिज्ञा करके वाक्यार्थ विचारकी समाप्ति होनेपर "यही वह सत्य वाक्य है" इस प्रकारके निश्चयको निर्णय करते हैं। हे राजन्! इच्छा द्वेष उत्पन्न हुए दुःखके जरिये जो उद्वेग उत्पन्न होता है अर्थात् इसे अवश्य करना चाहिये और यह अवश्य त्याज्य है, इस कर्त्तव्यता और अकर्त्तव्यता विषयमें जो प्रवृत्ति वा निवृत्ति होती है, उसका ही नाम प्रयोजन है। हे प्रजानाथ! यथाक्रमसे कहे हुए ये सूक्ष्मादि एक अर्थसे पर्य्यवसित होकर पञ्च अङ्गयुक्त वाक्य होता है, इसलिये मेरे वचनके अनुसार उसका निश्चय करो। मैं प्राञ्जल और प्रसिद्ध अर्थसम्पन्न श्लाघ्यविशेषण-युक्त तथा संक्षिप्त श्लेष आदि आठ गुणोंसे पूरित असन्दिग्ध परम उत्तम वचन कहूंगी, जो सब वाक्य कहूंगी, उनमें बहुत अक्षर नहीं हैं, अश्लील अमङ्गल और घृणाकर शब्द नहीं है, वह अनृत, असंस्कृत अथवा धर्म्मकाम और अर्थ, इन त्रिवर्गोंसे विरुद्ध नहीं है। उसमें अमङ्गल पद नहीं हैं, छन्द वा व्याकरण दोष युक्त शब्द नहीं हैं, क्लिष्ट शब्द अर्थात् बहुत कष्टसे जिसका अर्थ-बोध होता है, वैसा पद नहीं है, और वह निष्प्रयोजन वा युक्तिहीन भी नहीं है। मैं काम, क्रोध, भय, लोभ, दीनता, दर्प, दया, लज्जा और अभिमानके वशमें होकर कुछ वचन न कहूंगी। हे राजन्! वक्ता, श्रोता और वाक्य जब विवक्षा समयमें अव्यग्रभावसे समान होते हैं, तब विवक्षित अर्थ प्रकाशित हुआ करता है, कहनेके समय यदि वक्ता श्रोताको अवज्ञा करे और निज प्रयोजनीय विषयको पराये प्रयोजन रूपसे प्रकाश करे तो वह वचन अंकुरित नहीं होता; जो मनुष्य स्वार्थ त्यागके दूसरेके निमित्त प्रकट करता है, उससे शङ्का उत्पन्न होती है, तथा वैसा वचन भी दोषयुक्त होता है। हे राजन्! जो वक्ता अपने और श्रोताके अविरुद्ध वचन प्रकाश करता है, वह साधारण नहीं है; इसलिये अविक्षिप्त चित्त वा एकाग्र होकर वाक्य सम्पत्तिसे युक्त अर्थ सम्पन्न यह वचन तुम्हें सुनना उचित है। हे महाराज! तुमने जो मुझसे "तुम किसकी कन्या हो, कहांसे आई हो" ऐसा पूछा है उसका उत्तर एकाग्रचित्त होकर सुनो। हे राजन्! जैसे जतु और काष्ठ पांशु तथा जलकी बूंद परस्पर संश्लिष्ट होती हैं, इस लोकमें प्राणियोंका सम्भव भी वैसा ही है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और पञ्चेन्द्रिय अनेक रूप होकर जतुकाष्ठकी भांति आत्मामें संश्लिष्ट होती हैं। शब्द आदि विषय और कान आदि इन्द्रियां चाहे भिन्न हों, वा संहत हो जावें, उन्हें "तुम कौन हो?" ऐसी बात नहीं पूछी जाती, यह निश्चय है और वे परस्पर अपने तथा परायेको नहीं जानतीं। नेत्र निज रूपको देखनेमें समर्थ नहीं है, कान आप ही अपनेको नहीं जान सकता, ये परस्पर व्यभिचारके जरिये वर्त्तमान नहीं रहते और परस्पर संश्लिष्ट होके भी जल-मिश्रित धूलिकी भांति एक दूसरेको नहीं जान सकते, अर्थात् जैसे सूर्य्य घट पट आदि बाह्य-वस्तुओंको प्रकाश करता है, वैसे ही आंख, कान आदि इन्द्रियां देहाश्रित होके भी अपने वा दूसरेको प्रकाश नहीं कर सकतीं। ये दूसरे बाह्य गुण अर्थात प्रकाश आदिकी अपेक्षा किया करती हैं, यह भी मुझसे सुनो।

रूप नेत्र और प्रकाश, ये तीनों दर्शन ज्ञानके सहकारी कारण हुआ करते हैं; जैसा दर्शन ज्ञानका कारण है, अवण आदि ज्ञान

और ज्ञेय विषयमें वैसी सहकारिताके बिना ज्ञान नहीं होता। ज्ञान और ज्ञेय पदार्थके बीच मन एक विशेष गुण है, जिसके सहारे जीव सदसत्का विचार करता हैं, उसे ही मन कहते हैं। पञ्चभूत, पञ्चइन्द्रिय और मन, इन ग्यारहोंके अतिरिक्त बुद्धिको बारहवां गुण कहा जाता है, संशयात्मक बोधव्य विषयमें जीव जिसके सहारे निश्चय करता है, उसे ही बुद्धि कहते हैं। उस बुद्धिके बीच सत्त्वनाम और एक गुण हैं, उसे बुद्धिका उपादान कहा जाता है। रज और तमोगुणके अत्यन्त अभिभव होनेपर सतोगुणको मध्य वा और किञ्चित अभिभव होनेसे महत्त्व होता है। जन्तु महासत्त्व अथवा अल्प सत्त्व हैं,—जिसके जरिये यह अनुमान किया जाता है, उसे ही सत्त्व कहते हैं। "यह पुरुष मेरा है और यह मेरा नहीं है" जिस सत्त्वके जरिये जीव ऐसा ज्ञान करता है, वह अहङ्कार नाम चौदहवां गुण कहा जाता है। हे राजन्! अहङ्कारका और एक पन्द्रहवां गुण स्मृत हुआ करता है, अर्थात् पञ्चप्राण, आकाश आदि पञ्चभूत, पञ्चेन्द्रिय और मन, इन सोलहों कलाओंकी समग्रता जोकि वासनात्मक जगत् रूप अहङ्कारमें निवास करती है, उसे ही पञ्चदश गुण कहा जाता है। उस वासनामें उसके उपादान स्वरूप त्रिगुणात्मक संघातकी भांति जगत्की अंकुर बीजभूत अविद्या संज्ञक सोलह गुण वर्त्तमान हैं, माया और उसका प्रकाश, ये दोनों गुण उसके आश्रित होरहे हैं, इसलिये माया सत्तरहवीं और उसके प्रकाशको अट्ठारहवें गुण रूपसे गिनना होगा। और सुख, दुःख, जरा, मृत्यु, लाभ, हानि यथाप्रिय, अप्रिय, ये द्वन्द्व योग इक्कीस गुण रूपसे कहे गये हैं, ये सब सुख दुःख आदि प्रकृतिके कार्य्य हैं और इक्कीसके ऊपर दूसरा एक कालनामक गुण है, इसहीमें सब भूतोंको उत्पत्ति और लय हुआ करती है, इसे बाईसवें गुणके जरिये संख्यात जानो। इस बाईसवें संघात और ईशारम्भक अंशके अतिरिक्त पञ्चमहाभूत इसके अतिरिक्त सत् और असत् भावके सम्बन्धयुक्त प्रकाश दोनों गुणोंमें सप्रविंश गुण और विधि अर्थात् वासना बीजभूत धर्म्माधर्म्म, शुक्र अर्थात् वासनाका उद्बोधक संस्कारबल अर्थात् वासना विषय प्राप्तिका यत्न इन तीनोंके सङ्ग मिलके और ऊपर कहे हुए सत्ताइसों गुण गिनतीमें तीस होते हैं। ये सब गुण जिसमें वर्त्तमान रहते हैं, उसे शरीर कहा जाता है। निरीश्वरवादी सांख्य मतवाले पण्डित लोग अव्यक्त अर्थात् प्रकृतिको इन तीसों गुणोंके उपादान रूपसे देखते हैं और स्थूलदर्शी कणाद आदि व्यक्त अर्थात् परमाणु आदिको उक्त गुणोंमें उपादान रूपसे देखते हैं। अव्यक्त ही हो, अथवा व्यक्त परमाणु प्रभृति ही होवे, किम्वा चार्व्वाक मतके अनुसार चार प्रकारके परमाणु ही हों, अध्यात्मवित् पुरुषोंके वे सभी अविरुद्ध हैं, क्योंकि मेरे समान अध्यात्मचिन्तक पुरुष प्रकृतिको ही सब भूतोंके उपादान रूपसे देखते हैं; इस अपरिस्फुटा प्रकृतिने प्रागुक्त तीसों कला रूपसे दृश्यत्व लाभ किया है। हे राजेन्द्र! मैं तुम और दूसरे जो सब जीव हैं, सभी उस ही तीस कलात्मिका प्रकृतिसे पृथक् स्वयं ज्योतिस्वरूप अर्थात् प्रतिस्वरूपमें निवास करनेवाली आत्मा है, इसलिये हम लोगोंका तन्मात्रत्व सिद्ध है। बिन्दुन्यास आदि अवस्था अर्थात् रेतःसेक आदि शुक्रशोणितके संयोगसे हुआ करती है; जिसके मिलनेसे कलल अर्थात् शुक्रशोणितका परस्पर संघटन उत्पन्न होता है। उस कललसे बुद्बुदकी उत्पत्ति होती है, बुद्बुदसे गुठली उत्पन्न होती है, गुठलीसे अङ्ग उत्पन्न होते हैं और अङ्गसे नख तथा रोम निकला करते हैं।

हे मिथिलाराज! नवम महीना पूरा होने पर जठरस्थ जीवका स्त्री वा पुरुषके चिन्ह अनुसार नामरूप होता है। उत्पन्न होतेही बाल-

बर्षे नख और श्मश्रुओंयुक्त जो कौमार रूप दीखता है, रूपान्तर होनेपर उसकी प्राप्ति नहीं होती। कौमार रूपसे जवानी और जवानीके अनन्तर बुढ़ापा प्रकाशित हुआ करता है ; इत्यादि क्रमसे जो सब रूप उत्पन्न होते हैं, उसके जरिये पहलेके रूपको प्राप्ति नहीं होती, सब भूतोंके बीच रूप आदिकी प्रकाश करनेवाली परिणामवती कलासे प्रतिक्षणमें ही रूपका विपर्य्यय होरहा है, परन्तु सूक्ष्मताके सबबसे वह मालूम नहीं होता। हे राजन्! दीपशिखाकी गतिके अनुसार प्रत्येक अवस्थामें रूपका उदय और लय होरहा है ; परन्तु वह मालूम नहीं होता। जैसे उत्तम घोड़े सदा दौड़ते हैं, उस ही भांति जब कि ऐसे प्रभावयुक्त सब लोक धावित होरहे हैं, तब कौन कहांसे आया है, वा आता नहीं है, यह किसका है वा किसका नहीं है, कहांसे उत्पन्न होता है अथवा जन्म नहीं लेता,—इसका क्या निश्चय है, इस लोकमे जीवका निज अवयवोंके सङ्ग क्या सम्बन्ध है? जब कि अपने अवयवोंके सङ्ग ही अपना सम्बन्ध नहीं है. तब तुमने जो मुझसे "तुम कौन हो, कहांसे आई हो?" इत्यादि प्रश्न किये हैं, वह अत्यन्त ही अयुक्त है। लोहेके सम्बन्धसे सूर्य्यकान्तमणि और घिसनेसे काठसे अग्नि उत्पन्न होती है, वैसे ही कलाओंसे जीव जन्म लिया करते हैं. जैसे तुम अपने शरीरमें आप ही निष्कल आत्माको देखते हो, वैसे ही क्या दूसरे शरीरमें उस ही आत्माको नहीं देखते। यदि अपने और मूर्खोंके अतिरिक्त समता निश्चय करते हो, तो मुझसे "तुम कौन और किसकी हो" इत्यादि प्रश्न किस लिये किया?

हे मिथिलानाथ! "यह हमारा और यह मेरा नहीं है" जो पुरुष इन द्वन्द्वोंसे मुक्त है, वैसे पुरुषको 'तुम कौन, किसकी हो' इत्यादि पूछनेका क्या प्रयोजन है? जो राजा शत्रु, मित्र उदासीन विजय और सन्धिविग्रहमें विहित कार्य्योंको किया करता है, उसमें मुक्त लक्षण कौनसा है। धर्म्म, काम तथा अर्थ, ये त्रिवर्ग असंकीर्ण भावसे तीन और धर्म्मार्थ धर्म्म, काम वा कामार्थ धर्म्म, काम संकीर्णभावसे दोनों परस्पर मिलित होके तीन धर्म्मार्थ काम ये तीनों परस्पर संकीर्णभावसे एक; इस ही भांति सब कर्म्मोंमें सात प्रकारसे व्यक्त त्रिवर्गको नहीं जानता और जो त्रिवर्गोंमें आसक्त हो रहा है, उसमें मुक्त लक्षण क्या है? प्रिय, अप्रिय, निर्ब्बल और बलवान पुरुषमें जिसकी समदृष्टि नहीं है, उसमें कौनसा मुक्तलक्षण है? हे राजन्! अपथ्यसेवी रोगीके औषध सेवनकी भांति तुम योगयुक्त न होके भी जो मोक्ष विषयका अभिमान करते हो, तुम्हारे मित्रोंको उचित है कि उस अभिमानको छुड़ावें।

हे अरिन्दम! सङ्ग स्थान पत्नी आदिका विचार करके आप ही अपनेमें देखे, इससे भिन्न दूसरा मुक्तका लक्षण और क्या होसक्ता है; मोक्षकी अवलम्बन करके जो मनुष्य निवास करता है, उसके विषयमें ये सब तथा दूसरे जो सूक्ष्म सङ्ग स्थान हैं, तथा शयन, उपभोग, भोजन और वस्त्र, इन चारों अङ्गोंसे युक्त जो सब सङ्ग स्थान विद्यमान हैं, वह मुझसे सुनो। जो इस अखण्ड पृथ्वीमण्डलको एक छत्र करके शासन करता है, वही एकमात्र राजा है और एकमात्र वही पुरके बीच वास किया करता है। उस नगर जिसमें कि वह निवास करता है, वैसा उसमें उसका एक गृह रहता है, रात्रिके समय राजा जिसमें शयन करता है, गृहमें वैसी एक शय्या रहती है। उस शय्याका आधा हिस्सा उसके पत्नीके अधिकारमें रहता है, इस ही प्रकार प्रसङ्गके कर्म्मसे राजा फलभागी होता है। ऐसे ही वह भोज्यविषयोंकी भोजन आच्छादन परिमेय गुणों और निग्रह विषयोंमें सदा परतन्त्र है, उसे स्वल्पविषयमें भी पूर्ण रीतिसे आसक्त होना पड़ता है, सन्धिवि-

इनके सम्बन्धमें राजाकी स्वतन्त्रता कहां है? स्त्रियोंके निकट क्रीड़ा और विहारकालमें राजाको सदा ही अधीनता है, विचारकार्य्य और मन्त्रिसमाजमें उसकी स्वतन्त्रता कहां है। जिस समय वह सबके ऊपर आज्ञा प्रचार करता है, तब उसकी स्वाधीनता होती है, परन्तु उस समयमें भी सब कोई उसे अवश कर देते हैं। राजाके शयन करनेकी इच्छा करने पर कार्य्यार्थी लोग उसे सोने नहीं देते, सोनेमें अनुज्ञात अथवा सोते हुए भी कार्य्यवश उसे उठना पड़ता है, इसलिये वह उस विषयमें भी स्वाधीन नहीं है। स्नान करिये, लीजिये, पीजिये खाइये, अग्निमें होम करिये, पूजा करिये, आज्ञा दीजिये, सुनिये, इत्यादि वचनसे दूसरे लोग राजाको विवश करते हैं। याचक मनुष्य सदा राजाके निकट जाके धन मांगते हैं, राजा वित्तरक्षक होके महाजनोंको दान करनेमें उत्साहवान नहीं होता, दान करनेसे उसका खजाना खाली होता है, न करनेसे लोग उसके शत्रु होजाते हैं। क्षण भरमें उसके निकट वैराग्यकारक दोष उपस्थित होते हैं, बुद्धिमान शूर और वित्तसम्पन्न लोगोंके एक स्थानमें रहनेसे राजा लोगोंकी शङ्का करता है। जो लोग सदा राजाकी उपासना किया करते हैं, उनसे भयकी सम्भावना न रहने पर भी राजाको भीत होना पड़ता है। हे राजन्! मैंने जिनका विषय कहा है, वे लोग राजाको दोष दिया करते हैं, इसलिये आश्रित लोगोंसे जैसा भय उपस्थित होता है, उसे देखो।

हे जनकराज! अपने अपने घरोंमें सभी राजा हैं, सभी अपने घरके मालिक हैं, सभी अपने घरोंमें निग्रहानुग्रह करतेहुए राजाओंके समान हुआ करते हैं। राजाकी स्त्री, पुत्र, शरीर, खजाना, मित्र और धन सञ्चय, आदिमें दूसरोंकी स्त्री पुत्र आदिमें जैसी ममता है, उसे भी उनके सम्बन्धमें वैसी ही प्रीति हुआ करती है। देश नष्ट होने, नगरके जलने, प्रधान हाथियोंके मरने, इत्यादि लोकके साधारण विषयोंमें राजा मिथ्या ज्ञानसे तापित होता है। इच्छा, द्वेष और भयसे उत्पन्न हुए मानसिक दुःख तथा सिरके रोग आदि पीड़ाओंसे साधारण पुरुषोंकी भांति राजा भी कदाचित मुक्त नहीं होता। सुख दुःख आदिसे उपहत और सब तरहसे शङ्कित होकर रात्रि बिताते हुए अनेक विघ्नोंसे युक्त राज्यभोग किया करता है, इसलिये कौन पुरुष अल्प सुखकर अत्यन्त दुःखजनक, सारहीन, फूसकी अग्निकी ज्वालाके समान तथा फेनके बुद्बुदेके तुल्य राज्य पाके शान्ति लाभ करनेमें समर्थ होता है। हे राजन्! "यह मेरा नगर है, मेरा राज्य है, मेरी सेना है, मेरा खजाना है, और हमारा ही सब है" तुम ऐसा ही ज्ञान किया करते हो, परन्तु ये सब विषय किसीके भी नहीं हैं। मित्र, सेवक, पुर, राज्य, कोष, दण्ड और राजा यह सप्ताङ्गयुक्त राज्य मेरे हाथमें स्थित त्रिदण्डके समान है। अन्यान्य गुणोंसे युक्त पुरुषोंके बीच कौन किससे अधिक गुणवान हो सकता है। उसके उस समय उस ही उस अङ्गको उत्कृष्ट होते देखा जाता है, जिसके सहारे जो कार्य्य सिद्ध होते हैं, उसहीमें उसकी प्रधानता हुआ करती है। हे नृपोत्तम! सप्ताङ्गयुक्त राज्य स्वतन्त्र है और वृद्धि-क्षय स्थानाख्य नीति शास्त्रोक्त तीनों उदय स्वतन्त्र हैं, ये इसमें मिलके राजाकी भांति राज्य भोग करते हैं। जो राजा महाउत्साह युक्त है, और क्षात्रधर्ममें अनुरक्त रहता है, वह दशभाग लाभ होनेसे प्रसन्न होता है, दूसरे राजा दसवें भागकी न्यूनतासे सन्तुष्ट हुआ करते हैं। असाधारण राजा कोई भी नहीं है, और अराजक राज्य भी नहीं है, राज्य न रहनेसे धर्म्म नहीं होता, और बिना धर्म्मके मोक्षसुख नहीं मिलता, जो

कुल पवित्र और परम धर्म्म है। वह राजा तथा राज्यका भी धर्म्म है, जो दक्षिणामें पृथ्वी दान करते हैं, वे राजा अश्वमेध यज्ञके फल-भागी होते हैं।

हे मिथिलाराज! मैं राजाओंके इन सब दुःखकर कर्म्मोंको सौ-हजार बार कह सकती हूं। जबकि मेरी निज देहमें आसक्ति नहीं है, तब पराया परिग्रह किस प्रकारसे सम्भव होगा। जबकि मैं इस प्रकार योगिनी हुई हूं, तब मुझे तुम्हारे शरीर सङ्गके कारण ऐसा वचन कहना उचित नहीं हुआ है। हे राजन्! तुमने पञ्चशिखके मुखसे समस्त मोक्षधर्म्म सुना है—श्रवण, मनन, निदिध्यासन, शम, नियम और परब्रह्ममें एकाग्र भावको जाना है, इससे जब तुम काम क्रोध आदिको पराजय करके मुक्तसङ्ग होरहे हो, तब तुम्हें, छत्र चंवर आदि राजचिन्ह धारण करनेका क्या प्रयोजन है। मुझे बोध होता है, तुमने जो शास्त्र सुना है, उससे तुम्हें ज्ञान नहीं हुआ अथवा दम्भ-वशसे शास्त्रज्ञान किया है, किम्वा शास्त्र सदृश शास्त्राभास सुना होगा। यदि तुम नाममात्र इस लौकिक सम्पत्ति लाभसे प्रतिष्ठित हुआ करते हो, तो प्राकृत पुरुषोंकी भांति तुम भी सर्व्वसङ्ग अवरोधके जरिये बद्ध हुए हो। मैंने जो बुद्धिबलके जरिये तुममें प्रवेश किया, यदि तुम सब भांतिसे मुक्त हुए हो, तो मैंने उस प्रकारसे प्रवेश करके तुम्हारी क्या बुराई की है। यतियोंको सूने स्थानमें ही निवास करनेका नियम है। इसलिये मैं तुम्हारे बोधशून्य बुद्धिस्थलमें प्रवेश करनेसे किसके समीप दोषी हुई हूं। हे पापरहित नरनाथ! मैंने तुम्हें दोनों हाथ, चरण, उरु अथवा दूसरे किसी अवयवके जरिये स्पर्श नहीं किया है। तुम महाकुलमें उत्पन्न हुए लज्जाशील और दीर्घदर्शी हो, इसलिये हम लोगोंने परस्पर जो कुछ सद्दस्त व्यवहार किया है, उसे इस सभाके बीच तुम्हें कहना उचित नहीं है। ये सब ब्राह्मण लोग गुरु और माननीय हैं, तुम भी सबके माननीय हो, इसलिये परस्परके विषयमें परस्परका इस प्रकार गौरव है, इसलिये वक्तव्य वा अवक्तव्य विषयका विशेष रीतिसे विचार न करके स्त्रीपुरुषके सहवास विषयको सभामें प्रकाशित करना तुम्हें अनुचित है। हे मिथिलाराज! जैसे कमलके पत्रमें स्थित जल उसे स्पर्श नहीं करता, वैसे ही मैं भी तुम्हें स्पर्श न करके तुममें निवास करती हूं। मेरे स्पर्श न करनेपर भी यदि तुम स्पर्श ज्ञान किया करते हो, तो इन भिक्षुओंके जरिये तुम्हारा बीजहीन ज्ञान किस प्रकार उत्पन्न हुआ। तुम गार्हस्थ्य धर्म्मसे च्युत होके और दुर्ज्ञेय मोक्षधर्म्मको न जानकर दोनोंके बीचमें पड़के वार्त्तामात्रके अभिज्ञ होरहे हो, वास्तवमें मुक्त नहीं हो। मुक्त पुरुषको मुक्तके सहित और चिदात्मा प्रकृतिके साथ संयोग होनेपर अर्थात् आत्मा और प्रकृतिके संयोगसे वर्ण-सङ्कर नहीं होता। वर्ण और आश्रमोंसे पृथक् रूपसे निर्द्दिष्ट होनेपर जो पुरुष उसको अपृथक् भावसे देखता है, उसके पक्षमें शरीर भिन्न है, और आत्मा पृथक् है, जब मैं इसे प्रत्यक्ष देखती हूं, तब मेरे बुद्धिसत्वके अन्यत्र वर्त्तमान रहनेकी क्या सम्भावना है। करतलके एक स्थलमें यदि कोई पात्र हो, उस पात्रमें दूध और दूधमें मक्खी रहे, तो आश्रित तथा आश्रयके संयोगके पृथकत्वके अनुसार सबमें आश्रित रहती है, परन्तु पात्रमें दुग्ध भाव नहीं रहता, दूध भी मक्खी नहीं है, इसलिये पराश्रय भाव स्वयं प्राप्त होते हैं, आश्रमोंकी विभिन्नता और वर्णोंकी स्वतन्त्रताके हेतु तथा परस्पर पृथक्त्वके सबबसे तुम्हारा कहा हुआ वर्णसङ्कर किस प्रकार होसकता। मैं जातिके अनुसार तुमसे उत्तम वर्णवाली नहीं हूं, और वैश्य अथवा शूद्रा भी नहीं हूं। हे राजन्! मैं

तुम्हारी सवर्णा हूं, शुद्ध योनिमें जन्म ग्रहण किया है, और अपने चरित्रको अपवित्र नहीं किया ; बोध होता है, प्रधान नामक राजर्षिका नाम तुमने सुना होगा मैं उन्हींके वंशमें उत्पन्न हुई हूं, मेरा नाम सुलभा है, मेरे पूर्व्व पुरुषोंके यज्ञके समयमे द्रोण, शतशृङ्ग और चक्रद्वार नामक तीनों पर्व्वत देवराजके जरिये इष्टिके स्थानमें निवेशित हुए थे, मैंने वैसे महावंशमें जन्म लेकर अपने समान पति न पाया, तब मोक्ष धर्म्मको शिक्षा लेके नैष्ठिक ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करती हुई सन्न्यासधर्म्म अवलम्बन किया है। मैं कपट सन्न्यासिनी, परस्वहरनेवाली अथवा धर्म्मको सङ्कर करनेवाली नहीं हूं, केवल निज धर्म्ममें रहके व्रत धारण किया है। हे प्रजानाथ ! मैं अपनी प्रतिज्ञा विषयमें अस्थिर नहीं हूं, बिना विचारे कोई बात नहीं कहती और विवेचना करके भी तुम्हारे निकट नहीं आई। मैंने कुशलको अभिलाषिणी होकर और यह सुनके कि मोक्ष धर्म्ममें तुम्हारी बुद्धि विशिविष्ट हुई है,—मोक्षधर्म्म जाननेके लिये इस स्थानमें आई हूं। मैं स्वपक्ष वा परपक्षके बीच निज पक्ष अवलम्बन करके यह वचन नहीं कहती हूं, वरन तुम्हारे ही हितके निमित्त कहती हूं। जो पुरुष मल्लको भांति अपनी जयके लिये वादश्रम नहीं करता अथवा जो शान्तिस्वरूप परब्रह्ममें उपशान्त होता है, वही युक्त पुरुष है सन्न्यासी लोग जैसे नगरसे सूने स्थानमें एक रात्रि निवास करते हैं, वैसे ही मैं तुम्हारे इस शरीरमें एक रात्रि वास करूंगी, हे मिथिलाराज। तुमने मानदायक वचन और आतिथ्यके जरिये मेरी पूजा की है, इसलिये मैं स्वन्दशरीरमें शयन कर प्रसन्न होके कल्ह चली जाऊंगी।

भीष्म बोले, राजा जनक यह सब युक्तियुक्त और प्रयोजन सम्पन्न वचन सुनके उत्तर देनेमें असमर्थ हुए अर्थात् गृहस्थाश्रमको अवलम्बन करनेकी युक्ति अत्यन्त दुर्लभ होती है, सन्न्यास धर्म्म ही कल्याणकारी है, इसलिये सुलभाके मतको ही सिद्धान्त वाक्य जाना।

३२० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुकुल-धुरन्धर पितामह ! पहले समयमें वैयासिकी शुकदेवने किस प्रकार वैराग्य लाभ किया था, इसे सुननेकी इच्छा करता हूं, इस विषयको सुननेके लिये मुझे अत्यन्त ही कौतूहल होरहा है। कार्य्य और कारणमें अनारोपित स्वरूप प्रब्रह्मतत्त्व तथा जन्मरहित नारायणसे जिन सब कार्य्योंको आपने बुद्धिसे निश्चय किया है, उसे मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, पिता वेदव्यासने निजपुत्र शुकदेवको प्राकृत चरित्रसे निर्भयचित्त होकर बिचरते हुए देखकर उसे समस्त स्वाध्याय अर्थात् पितृ पितामह परम्परासे परिगृहीत वेदमार्ग अध्ययन कराके उपदेश दिया था।

व्यासदेव मुनि बोले, हे पुत्र ! तुम धर्म्मको सेवा करो और जितेन्द्रिय होकर प्रचण्ड सर्दी गर्म्मी, भूख-प्यास और वायुको सदा जय करो। सत्य, सरलता, क्रोधहीनता, अनसूया, दम, तपस्या, अहिंसा और अनृशंसताको विधिपूर्व्वक परिपालन करो। अनार्ज्जव विषयोंको त्यागके सत्यधर्म्ममें रत रहो और देवताओं तथा अतिथियोंके भुक्तावशिष्ट अन्नके सहारे जीवनयात्रा निबाहो, भोजनके समयमें स्वादिष्ट वा अस्वादु वस्तुको विवेचना मत करो। हे तात ! जब कि शरीर फेनके समान और जीवन पक्षीके समान निवास किया करता है, जब कि प्रिय सहवास अनित्य होते हैं, तब तुम पुरुषार्थको साधनेमें प्रवृत्त क्यों नहीं होते। काम आदि शत्रु, अप्रमत्त जाग्रत और नित्य उद्योगयुक्त होके छिद्र खोज रहे हैं, तुम बालक

हो, इसलिये उसे नहीं समझ सकते, सब दिन अखिल परमायु क्षीण और जीवनकालको बीतते देखकर तुम क्यों नहीं देवता और गुरुके शरणागत होते हो। अत्यन्त नास्तिक लोग इस लोकमें मांस और रुधिरकी वृद्धिकी कामना करते हैं, परन्तु वे पारलौकिक कार्य्योंमें प्रसुप्त हुआ करते हैं। जो सब मूढ़बुद्धि मनुष्य धर्मकी असूया करते हैं, उन कुपथगामी लोगोंका जो लोग अनुसरण किया करते हैं, वे भी पीड़ित होते हैं और जिन सब महाभाग महाप्राण सदा सन्तुष्ट श्रुतिपरायण मनुष्योंने धर्मपथमें आरोहण किया है, उन्हींको उपासना करो और उन्हींसे धर्म जिज्ञासा करो। उन धर्मदर्शी मनीषियोंके मतको निश्चय करके उत्पथगामी चित्तको परम बुद्धिके जरिये नियमित करो। चैतन्यतारहित सर्व्वभक्षी लोग इस समय दूसरा दिन दूर है, ऐसा समझके निर्भय होकर कर्मभूमिको अवलोकन करते हैं। धर्मस्वरूप सोपान अवलम्बन करके धीरे धीरे उसपर आरूढ़ होते हैं, कोषकारकी भांति आत्माको बांधके कुछ भी नहीं जान सकते हैं। नदीके तटको तोड़नेवाले प्रवाहकी भांति मर्य्यादा तोड़नेवाले नास्तिकोंको दण्ड उद्यत करनेवाले पुरुषके समान विश्वासी होकर बांई ओर कर रखो। धैर्य्यमयी नौकाको अवलम्बन करके काम, क्रोध, मृत्यु और पञ्च इन्द्रिय जलसे युक्त नदीरूपी जन्म दुर्गको तरो। जब कि लोग जराके जरिये आहत और मृत्युसे परिपीड़ित होरहे हैं, जब परमायुको हरती हुई रात्रि सफल होके बिती जाती है, तब धर्मस्वरूप स्रोतको अवलम्बन करके संसारसे तरो। जब मृत्यु सुखसे सोये हुए मनुष्यको खोज रही है, तब अकस्मात मृत्युग्रस्त होकर मनुष्य किस प्रकार निवृत्ति लाभ कर सकता है। मनुष्यको अर्थसञ्चय करके काम भोगसे परितृप्त न होते होते, मृत्यु इस प्रकार उठा ले जाती है, जैसे बाघिन भेड़को ग्रहण करके चल देती है। अन्धकारमें प्रवेश करना होगा, इसलिये धर्मबुद्धिमय महान् दीपशिखाको क्रमसे उज्वल करके यत्नपूर्व्वक उसे धारण करो। हे पुत्र! अनेक शरीर धारण करके तब इस मनुष्य शरीरमें जीव कदाचित ब्राह्मणत्व लाभका तन पाता है; तुमने वह ब्राह्मणत्व लाभ किया है, इसलिये उसे परिपालन करो, यह प्रत्यक्ष परिदृश्यमान ब्राह्मण शरीर काम भोगके निमित्त नहीं उत्पन्न होता, यह इस लोकमें तपस्याका क्लेश सहनेके लिये और परलोकमें परम श्रेष्ठ सुखसम्भोग करनेके निमित्त उत्पन्न होता है। बहुत तपस्यासे ब्राह्मणजन्म मिलता है, इसलिये उसे प्राप्तकर रति-परायण होके अवहेला करना उचित नहीं है। पितर पितामह परम्परासे प्रचलित वेदपाठ, तपस्या और सदा इन्द्रियनिग्रहमें नियुक्त रहके मोक्षार्थी और कुशलपरायण होके उक्त विषयोंमें सर्व्वदा यत्नवान होना चाहिये। मनुष्योंके यह अवस्थारूपी घोड़े, अव्यक्त प्रकृति, पूर्व्वोक्त कला समूहरूप शरीर युक्त स्वभावसम्पन्न क्षणक्रांट और निमेषरूपी रोमश छेदनयोग्य कृष्ण तथा शुक्लपक्षरूपी दो नेत्र संयुक्त और मासरूपी अङ्गविशिष्ट होकर निरन्तर दौड़ रहे हैं। इन अवस्थारूपी घोड़ोंको सदा प्रचण्ड वेगसे अदृश्यभावसे दौड़ते हुए देखकर यदि तुम्हारे नेत्र अन्धेके समान न हो तो परलोकके विषयको सुनके तुम्हारा मन धर्मविषयमें रत होवे।

इस लोकमें जो लोग प्रचलित धर्मके विषयमें स्वेच्छाचार करते हैं और सदा डाह प्रकाश करते हुए अनिष्ट-प्रयोग किया करते हैं, वे लोग यमलोकमें यातना शरीर धारण करके बहुतसी अधर्मक्रियाके जरिये क्लेश भोग करते हैं। राजा सदा धर्मपरायण और उत्तम अधम वर्णोंका पालक होके सुकृति लोगोंके

पाने योग्य लोकोंको पाता है, वह अनेक प्रकारके शुभ कर्म करके अनेक योनियोंमें अनुगत निरवैद्य मोक्षसुख लाभ किया करता है। जो पुरुष इस लोकमें माता पिता और गुरुजनोंके वचनको टालता है, उसका शरीर कूटनेपर नरकमें भयङ्कर शरीरवाले कुत्ते मुख बाये हुए कौवे महाबली गिद्ध तथा दूसरे बहुतेरे पक्षी और कदर्य्य कीटसमूह उसे भक्षण करते हैं। स्वयम्भूके जरिये शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रताचरण और अपरिग्रह, यह दस प्रकारकी मर्य्यादा निर्दिष्ट हुई है, जो पापात्मा पुरुष स्वेच्छापूर्वक उस मर्य्यादाको अतिक्रम करते हैं, वे यम भवनरूपी बनमें अवगाहन करते हुए अत्यन्त दुःखसे निवास किया करते हैं। जो मनुष्य लाभसे लोकप्रिय मिथ्या वचन कहता है, और छलसे ठगहारी चोरी आदि नीच कार्य्योंमें रत होता है, वह नीच कर्म करनेवाला पापात्मा परम नरकमें गमन करके बहुत दुःख अनुभव करता है, वह दुष्टात्मा गर्मजलवाली वैतरनी नामी महानदीमें स्नान करते हुए तलवारके पत्तोंसे युक्त बनमें बिदीर्ण शरीर होकर परशु बनमें सुलाया जाता है, फिर अत्यन्त आर्त्त होकर महा नरकमें पड़के उसमें वास करता है। "तुम ब्रह्मा आदिके स्थानोंको देखकर मैं धन्य हुआ" इत्यादि बड़ाई किया करते हो, परन्तु परम पदको नहीं देखते; शीघ्र ही जरा आवेगी, उसे नहीं समझ सकते हो, इसलिये निश्चिन्त चित्तसे क्यों बैठे हो? मोक्षमार्गमें प्रस्थान करो, सुखको दूर करनेवाला अत्यन्त दारुण महत् भय उत्पन्न होता है, इसलिये मोक्षसाधन विषयमें यत्न करो। मरने पर यमराजके शासन वशसे उनके समीप उपस्थित होगे; इससे अगाड़ीके दुःखके लिये दारुण कृच्छ्र ब्रतके जरिये सरलता साधनमें प्रयत्न करो। दुःखोंके लानेवाले निग्रहा-निग्रहमें समर्थ यमराज मूल बान्धवोंके सहित तुम्हारा जीवन हरेगा; कोई उसे निवारण करनेमें समर्थ न होगा। यमके अगाड़ी वायु प्रबल वेगसे बहेगा और वह वायु अकेले ही तुम्हें उसके निकट पहुंचावेगा, इसलिये जिससे पारलौकिक हित हो, उसहीका अनुष्ठान करो तुम्हारे प्राणको नष्ट करनेवाली वायु जो बहेगी इस समय वह कहां है। और तुम्हें महाभय उपस्थित होनेपर जो सब दिशा विभ्रान्त होंगी वे भी इस समय कहां हैं?

हे पुत्र! जब तुम समाकुल होके गमन करोगे, उस समय तुम्हारी श्रवणेन्द्रिय निरुद्ध होगी, इसलिये तुम परम उत्कृष्ट समाधि अवलम्बन करो। प्रमाद कर्म्मोंसे लिप्त पहिलेके किये हुए शुभाशुभोंको स्मरण करके तुम दुःखित न होगे, केवल आश्रयणीय समाधि अवलम्बन करो। रोगोंकी सहाय कहके मृत्यु बलपूर्वक जीवन क्षय होनेके समय तुम्हारे शरीरको भेद करेगी, इसलिये महत् तपस्याका अनुष्ठान करो। मनुष्य देह-गोचर भयङ्कर कामादिरूपी भेड़िये सब भांतिसे दौड़ेंगे, इसलिये पुण्यशीलताके लिये यत्न करो। अकेले अन्धकार अवलोकन करोगे और पहाड़के शिखरपर मरन-चिन्ह स्वरूप हिरण्यमय वृक्षोंको देखोगे, इसलिये पुण्य करनेमें शीघ्रता करो। हे पुत्र! कुसङ्ग तथा सुहृत् समान मालूम होनेवाले शत्रुओंके देखनेसे तुम्हारी बुद्धि विचलित न हो, इसलिये जो परम वस्तु है उसहीकी खोजमें नियुक्त रहो। जिस धनकी रक्षा करनेमें राजभय नहीं है और चोरोंसे जिसमें भय उपस्थित नहीं होता जो धन मरे हुए मनुष्योंको भी परित्याग नहीं करता, उस ही धनको उपार्ज्जन करो। निज कर्मके जरिये प्राप्त हुआ जो धन परलोकमें परस्परके निकट विभक्त नहीं होता, जिसका जो यौतुक धन है, परलोकमें उसहीको वह भोग करता है। हे पुत्र!

परलोकमें जो धन उपजीव्य होता है, वही धन लाभ करो। जिस धनका नाश नहीं है, और जो सदा रहता है, तुम स्वयं उस ही धनका उपार्जन करो। महाजनभुक्त यव पिष्ट विकार जबतक परिपाक नहीं होता उतनेही समयके बीच तुम शीघ्र ही लयको प्राप्त होगे अर्थात् भोग विषयोंको भोग करके मोक्ष विषयमें यत्न करोगे, इस प्रकार मनन करना उचित नहीं है भोग्य विषय भोग न होतेही मृत्यु भय आके उपस्थित होता है।

जब मनुष्य सङ्कटमें पड़के अकेले ही परलोकमें जाता है, उस समय माता, पुत्र, बान्धव और परिचित प्रिय लोग कोई भी उसका अनुगमन नहीं करते। हे पुत्र! जो कुछ पहलेका शुभाशुभ कर्म्म रहता है, परलोकमें जानेवाले मनुष्यके साथ केवल वही गमन करता है। शुभाशुभ कर्म्मोंके जरिये मनुष्योंके जो कुछ सञ्चित सुवर्ण और रत्न हैं, देह नष्ट होनेके समय वे किसी कार्य्यके साधक नहीं होते। मनुष्योंके परलोक गमन करनेके समय कृत अकृत कर्म्मके साक्षी आत्माके समान और कोई भी नहीं है साक्षी चैतन्यके परलोकमें जानेपर मनुष्य देह-शून्य होता है, ज्ञाननेत्रसे हृदयाकाशमें प्रवेश कर सकनेसे ही समस्त स्पष्टरूपसे दीख पड़ता है, अग्नि, सूर्य्य और वायु इस लोकमें इस शरीरको अवलम्बन किये हुए हैं, परलोकमें येही धर्म्मदर्शी साक्षी होते हैं। काम, क्रोध आदि शत्रु प्रकाश्य और गूढ़भावसे जब रातदिन स्पर्श कर रहे हैं, तब तुम केवल स्वधर्म्म पालन करो, परलोकके पथमें बहुतेरे परिपन्थी अर्थात् लौहतुण्ड तथा भेड़िये आदि विपक्षमें विद्यमान हैं और वे सब विरूप वा भयङ्कर दंशमक्खियोंके जरिये परिपूरित हैं, इसलिये निज कर्म्मकी रक्षामें यत्न करो; सुकृत कर्म्म परलोकमें गमन किया करता है वह वहांपर विभक्त नहीं होता, इस लोकमें जो सब कर्म्म किये जाते हैं; परलोकमें वेही कर्म्मजनित फल भोग हुआ करते हैं। अप्सरावृन्द और महर्षि लोग जो सुख भोग करते हैं, वैसे ही सुकृतशाली मनुष्य कामगामी होकर स्वकर्म्मजनित फल भोग किया करते हैं पापरहित कृतबुद्धि और शुभयोनिमें उत्पन्न हुए मनुष्य इस लोकमें जिन शुभकर्मोंको करते हैं, परलोकमें उसहीका फल प्राप्त होता है। उनमेंसे गृहस्थ धर्म्म-सेतुके जरिये कोई कोई ब्रह्मलोक कोई बृहस्पति लोक और कोई इन्द्रलोकमें गमन करके परम गति पाते हैं। मैं तुम्हें इसी भांति सहस्रसे भी अधिक उपदेश प्रदान कर सकता हूं, किन्तु निग्रहानुग्रहमें समर्थ धर्म्म मनुष्योंको मोहित कर रखता है, तुम्हारी चौबीस वर्ष अवस्था बीती है, अब पच्चीसवां वर्ष प्रवृत्त हुआ है; अवस्था बीती जारही है, इसलिये धर्म्म सञ्चय करो? प्रमाद गृहवासी अन्तक जब तक इन्द्रिय सेनाकी अन्धत्व आदि दोष निबन्धन स्व-स्वविषयमें भोग हीन नहीं करता है, उतने ही समयके भीतर देह मात्रके जरिये उद्योगी होकर धर्म्मपालनमें शीघ्रता करो। तुम ही पश्चात् गमन करोगे, तुम्हीं आगे आओगे, जब तुम आत्मज्ञान प्राप्त करोगे, तब तुम्हें शरीरसे क्या प्रयोजन है और पुत्रादिकी ही क्या आवश्यकता है। जब कि भय उपस्थित होनेसे अकेलेही परलोकमें जाना होता है, तब परलोकके हितकर केवल धर्म्म ज्ञानको ही निधिकी भांति गोपन करके अवलम्बन करो। जब कि वह असङ्गवान मृत्यु, बालक, युवा और बूढ़ोंके सहित मनुष्योंको अवश्य ही हरण करती है, तब धर्म्मका सहारा अवलम्बन करो।

हे पुत्र! मैंने निज दर्शन और अनुमानके अनुसार तुम्हारे योग्य यह निदर्शन कहा है, इसलिये मैंने जो कुछ वर्णन किया, तुम वैसाही आचरण करो। जो लोग निज कर्म्मोंके जरिये देहकी पुष्टि साधन करते हैं और जो किसी

फलकी इच्छासे दान किया करते हैं, वेही एक-मात्र अज्ञान और विपरीत ज्ञान मोहादि जनित दुःख प्रभृतिके सहित संयुक्त हुआ करते हैं। जो लोग शुभ कार्य्योंको सिद्ध करते हैं, उनका तत्त्वमसि वाक्य जनित ज्ञान अखण्ड ब्रह्माण्ड-मय व्याप्त होता है, अर्थात् वे सर्व्वज्ञ होते हैं, सर्व्वज्ञता ही मोक्षके निमित्त परम पुरुषार्थ प्रदर्शित करती है, इसलिये कृतघ्न पुरुषको जो उपदेश किया जाता है, वही सार्थक होता है, कृतघ्न मनुष्यको यह सब उपदेश प्रदान करनेसे विफल होता है। ग्रामके बीच स्त्री पुत्र आदि परिवारसे घिरकर निवास करनेकी जो अभि-लाषा है, वही बन्धनरूपी रस्सी है, सुकृतशाली मनुष्य इस बन्धन रज्जुको काटके गमन करते हैं और पापकर्म्म करनेवाले मनुष्य उसे काटनेमें समर्थ नहीं होते।

हे पुत्र! जब तुम परलोकमें गमन करोगे, तब धन, सम्पत्ति, बन्धु बान्धव और पुत्र-पौत्रा-दिसे क्या प्रयोजन है? हृदयाकाशके बीच आत्माको अन्वेषण करो, तुम्हारे पितामह प्रपितामह कहां गये हैं। जो कल्ह करना होगा, उसे आज पूरा करो और अपराह्नमें जो करना हो, उसे पूर्व्वाह्नमें सिद्ध करो; मनुष्यके कर्त्तव्य कार्य्य सिद्ध हों, वा न हों मृत्यु इसके लिये प्रतीक्षा नहीं करती। मनुष्य शरीर नष्ट होनेपर स्वजन सुहृत् और बान्धव लोग उस मृत शरीरका अनुगमन करके उसे अग्निमें डाल-कर निवृत्त होते हैं, इसलिये तुम आलसहीन और विश्वस्त रूपसे परमपद पानेके अभिलाषी होकर पापबुद्धि निर्दयी नास्तिकोंका पीछे करो, जब कि लोग कालके जरिये इस प्रकारसे पीड़ित और सब भांतिसे नष्ट हो रहे हैं, तब तुम महत् धैर्य्य अवलम्बन करके सब प्रयत्नसे धर्म्माचरण करो। जो मनुष्य इस ही भांति मोक्षपथ देखनेके उपायको पूर्णरीतिसे जानता है, वह इस लोकमें सब भांतिसे स्वधर्म्माचरण करके परलोकमें सुखभोग करता है। देह नाश होनेसे मरण नहीं होता, इसे जानके जो लोग शिष्टजनोंके समादृत पथमें वर्त्तमान रहते हैं, उनका विनाश नहीं है। जो धर्म्मकी वृद्धि करते हैं, वेही पण्डित हैं और जो पुरुष धर्म्मसे च्युत होता है वह मोहग्रस्त हुआ करता है। प्रयोक्ता जैसा कर्म्म करता है, कर्म्मपथमें प्रयुक्त निज शुभाशुभ कर्म्मोंका फल उस ही भांतिसे पाता है। हीनकर्म्म करनेवाला मनुष्य निरय-गामी होता है और धर्म्म करनेवाले मनुष्य सुरपुरमें जाते हैं। और स्वर्गके सोपान स्वरूप दुर्लभ मनुष्य जन्म पाके आत्माको उस ही भांतिसे समाहित करे; जिससे कि फिर भ्रष्ट होना न पड़े। जिसकी बुद्धि स्वर्गमार्गकी अनु-सारिणी होकर धर्म्मको अतिक्रम नहीं करती, उस पुत्र-पौत्र प्रभृतिके अशोचनीय मनुष्यको लोग पुण्यकर्म्मा कहा करते हैं। जिसकी बुद्धि अबाधित होकर निश्चय अवलम्बन करती है, स्वर्गमें उसे स्थानाभाव नहीं होता और उसे महत् भय भी नहीं होता। जिसने तपोवनमें जन्म लेकर उसही स्थानमें प्राणत्याग किया है, उन काम भोगसे अनभिज्ञ तपस्वियोंके धर्म्म अत्यन्त अल्प हैं और जो लोग भोग विषयोंका त्यागके शारीरिक क्लेश आदिके जरिये तपस्या-चरण करते है, उन्हें कुछ भी अप्राप्य नहीं है, वही फल मुझे सम्मत है।

सहस्रों माता, पिता, सैकड़ों स्त्री-पुत्र, अनागत और अतीत होते हैं, वे किसके हैं, और हम लोग ही किसके हैं। मैं अकेला हूं, मेरा कोई नहीं है, मैं भी दूसरे किसीका नहीं हूं, मैं जिसका हूं, ऐसा किसीको भी नहीं देखता और जो मेरा है, उसे भी नहीं देखता। तुम्हारे जरिये उनका कोई कार्य्य नहीं है और न उनके जरिये तुम्हारा ही कुछ कार्य्य है; उन्होंने अपने किये हुए कर्म्मोंके जरिये जन्म ग्रहण किया है, तुम भी निज कर्म्मोंके सहारे

गमन करेगी। इस लोकमें धनवान पुरुषोंके स्वजनसमूह स्वजनोंकी भांति व्यवहार करते हैं और दरिद्रोंके जीवित रहते ही उनके सब स्वजन विनष्ट होते हैं। मनुष्य प्यारी स्त्रीके अनुरोधसे अशुभ कर्म्म सञ्चय करता है, उसहीसे इस लोक और परलोकमें क्लेश मिलता है। हे पुत्र! जब जीवोंको अपने कर्म्मोंके जरिये विच्छिन्न देखते हो, तब मैंने जो सब कथा कही है, तुम उसहीके अनुसार आचरण करो। यह सब आलोचना करके जो लोग कर्म्मभूमिको अवलोकन करते हैं और जिन्हें परलोकमें सद्गति मिलनेकी बहुत अभिलाषा रहती है, उन्हें शुभ आचरण करना चाहिये। मास और ऋतुओंकी संज्ञा परिवर्त्तन करनेवाला सबकी निष्पत्ति फलके साक्षी सूर्य्यस्वरूप अग्नि और दिनरातरूपी काठके जरिये काल सब भूतोंको बलपूर्व्वक पका रहा है। जो धन किसीको दान नहीं किया जाता और न भोग ही किया जाता है, उस धनसे क्या प्रयोजन है? जिसके जरिये शत्रुओंको बाधित नहीं किया जाता, वैसे शास्त्रज्ञानका क्या प्रयोजन है; और जिसके जरिये जितेन्द्रिय और वशीभूत न होसके, वैसी आत्मासे ही क्या आवश्यक है?

भीष्म बोले, द्वैपायनके कहे हुए ऐसे हित-वाक्यको सुनके शुकदेव पिताको परित्याग कर मोक्षोपदेशकके निकट गये।

३२१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! दान, यज्ञ, तपस्या और गुरुसेवाके विषय यदि आपको मालूम हो, तो उसे मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, मन अनर्थयुक्त बुद्धिके जरिये पापमें निविष्ट होता है, अन्तमें निज कर्म्मोंको कलुषित करके महाक्लेशमें पतित हुआ करता है। पापशील दरिद्र लोग एक दुर्भिक्ष निवा-रित न होते ही दूसरे दुर्भिक्षसे, एक क्लेशसे, न छूटते ही दूसरे क्लेशसे, एक भयके शान्त न होते ही दूसरे भयसे आविष्ट होते हैं, वे लोग मृतकसे भी अधिक अपदार्थ हैं। और श्रद्धा-शील, दान्त, शुभ कर्म्म करनेवाले धनवान लोग एक उत्सवसे दूसरे उत्सवमें स्वर्गसे स्वर्गान्तरमें और सुखसे सुखान्तरमें गमन करते हैं।

जो स्थान हिंसक जन्तु तथा हाथी आदिके जरिये दुर्गम है और जिस स्थलमें सांप वा चोर आदिका भय विद्यमान है, वहांपर दूसरेकी बात तो दूर रहे, नास्तिक लोग भी दुस्प्राप्य प्रदेशमें अग्रसर नहीं होते, जो लोग देवता, अतिथि और साधुओंको प्रिय समझते हैं और वदान्य होकर दक्षिणा दान करते हैं, वेही बुद्धिमान मनुष्योंके मङ्गलास्पद पथमें निवास किया करते हैं। धान्यके बीच पुलाक अर्थात् तुच्छ धान्य और पक्षियोंमें जैसे पूत्यण्ड अर्थात् अत्यन्त क्षुद्र पतङ्ग विशेष गणनीय नहीं हैं, वैसे ही जिनकी धर्म्मविषयमें श्रद्धा नहीं है, वे मनुष्योंके बीच नहीं गिने जाते, जो पुरुष जैसा कर्म्म करता है, उसके अत्यन्त दौड़नेपर भी वह कर्म्म उसके साथ दौड़ता है और कृतकर्म्मा मनुष्यके सोते रहनेपर भी कर्म्म उसके साथ शयन करता है, स्थित रहनेपर भी पाप उसके निकट निवास करता है, दौड़नेपर भी उसके सङ्ग दौड़ता है। जो पुरुष कर्म्म करता है, उस कृतकर्म्मा पुरुषको छायाकी भांति पाप उसका सङ्ग नहीं छोड़ता। जिसके जरिये जिस भांतिसे जो जो कर्म्म पहले किये जाते हैं, उत्तरकालमें जीव अपने किये हुए उन्हीं कर्म्मोंको भोग किया करता है। समान कर्म्म विक्षेप विधान और परिरक्षायुक्त, इन सबको काल सब प्रकारसे आकर्षण करता है, जैसे फूल फल अपने समयको अतिक्रम नहीं करते, पहलेके किये हुए कर्म्म भी वैसे ही हैं। मान, अपमान, लाभ, हानि, क्षय, अक्षय, ये सब प्रकृत और

निवृत्त होते हैं, सब ही पद पदमें नष्ट हुआ करते हैं।

जीव गर्भशय्या ग्रहण करते ही पूर्व्वदेह सम्बन्धीय अपने किये हुए सुख दुःखको भोग करता है। बालक, युवा अथवा वृद्ध होकर जो शुभाशुभ कर्म्म करता है, जन्म जन्म उस ही अवस्थामें उन पुण्य-पापोंको भोग किया करता है। सहस्र गऊके बीच जैसे बछड़ा अपनी माताका अनुसरण करता है, वैसे ही पहलेके किये हुए कर्म्म कर्त्ताका अनुगमन किया करते हैं। जैसे मैले वस्त्र जलसे साफ होते हैं, वैसे ही जो लोग उपवासके जरिये शरीरको सन्तप्त करते हैं उन्हें बहुत समयके लिये अनन्त सुख प्राप्त होता है। हे महाबुद्धिमान्! जिसके पाप धर्म्माचरणसे धोये गये हैं, उनके बहुत समय-तक सेवित तपस्याके जरिये सब मनोरथ पूर्ण होनेसे सिद्ध हुआ करते हैं। जैसे आकाशमें पक्षियोंके और जलमें मछलियोंके पद नहीं दीखते, पुण्य करनेवाले लोगोंकी गति भी वैसी ही है। दूसरी कथा कहनेकी आवश्यकता नहीं है, क्यों कि बहुत वाक्य व्यय करनेसे व्यतिक्रम होजाता है, सार वचन यही है, कि अपने अनुरूप मनोहर हितका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये।

३२२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! महातपस्वी शुकदेव किस प्रकार वेदव्याससे उत्पन्न हुए थे और किस प्रकार परम सिद्धि लाभ की थी; आप मेरे निकट उसे ही वर्णन करिये। तपस्वी वेदव्यासने कौनसी स्त्रीके जरिये शुकदेवको उत्पन्न किया था, शुकदेवकी माता कौन है और किस प्रकार उस महात्माका उत्तम जन्म हुआ था, मैं उसे नहीं जानता। और बालक होनेपर भी इस लोकमें जो अन्य किसी दूसरे पुरुषसे सम्भव नहीं होता, वैसे सूक्ष्म ज्ञानमें किस प्रकार उनकी बुद्धि तत्पर हुई थी। हे महाबुद्धिमान्! इसे मैं विस्तारपूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता हूं, इस अत्यन्त उत्तम अमृत समान विषयको सुनके मुझे किसी भांति तृप्ति नहीं होती है। हे पितामह! इसलिये महानुभाव शुकदेवका माहात्म्य आत्मयोग और विज्ञानके विषयको आप मेरे समीप विस्तारपूर्व्वक वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे पाण्डु-नन्दन! ऋषि लोग अवस्थासूचक वर्ष, जरा आदिसे क्लेश कदम्बकी परिपक्वता वित्त अथवा बन्धुजनोंके सहारे धर्म्मोपार्ज्जन नहीं करते। उनके बीच जिन लोगोंने गुरुमुखसे छहों अङ्गके सहित समस्त वेद अध्ययन किये हैं, हमारे मतमें वेही महान् हैं, तुम मुझसे जो कुछ पूछते हो, उन सबकाही मूल तपस्या है, इन्द्रियोंको संयम करनेसे ही वह तपस्या होती है, अन्यथा किसी प्रकारसे भी उसकी सम्भावना नहीं होती। मनुष्य इन्द्रियोंमें आसक्त होनेसे दोषभागी होता है, और उन इन्द्रियोंको सयम कर सकनेसे ही सिद्धि लाभ किया करता है। हे तात! सहस्रों अश्वमेध और सेकड़ों बाजपेय यज्ञके फल इन्द्रिय-सयम स्वरूप योगके एक अंशके समान भी नहीं हैं। अब मैं अकृतात्मा पुरुषोंसे दुर्ज्ञेय शुकदेवके जन्म योग फल और श्रेष्ठगतिके विषय तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, सुनो। पहले समयमें कर्णिकाके बनसे परिपूरित सुमेरु पर्व्वतकी शिखरपर भगवान् भूतनाथ महादेव भयङ्कर भूतोंसे घिर कर विहार करते थे, शैलराज-पुत्री भवानी भी वहां पर निवास करती थीं। उस समय कृष्णद्वैपायनने वहां पर दिव्य तपस्या की थी। हे कुरुसत्तम! योग धर्म्म परायण व्यासने योगबलसे आत्मामें आवेश करके पुत्रके ही निमित्त वह तपस्या की थी। हे राजन्! अग्नि, भूमि, जल, वायु और आकाशके समान

मेरा पुत्र धैर्य्यशाली हो, उनका ऐसाही अभिप्राय था। उन्होंने अत्यन्त बृहत् तपस्या अवलम्बन करके इस ही भांति सङ्कल्प और योगके जरिये अकृतात्म-मनुष्योंसे दुष्प्राप्य देवेश्वरके निकट वह मांगाथा। वह अनेक रूपसे युक्त उमापति महादेवकी आराधना करते हुए एक सौ वर्ष तक वायु पीके रहे थे। उस स्थानमें समस्त ब्रह्मर्षि, राजर्षि, लोकपाल, साध्य, बसु, आदित्य, रुद्रगण, सूर्य्य, चन्द्रमा, इन्द्र तथा वायुगण, समुद्र और समस्त नदियें. दोनों अश्विनीकुमार सब देवता, गन्धर्व्व, नारद और पर्व्वत मुनि, गन्धर्व्वराज विश्वावसु, सिद्ध और अप्सरावृन्द उस महादेवकी उपासना करती थीं। जैसे चन्द्रमा चन्द्रिकाके जरिये शोभायमान होता है, उस स्थानमें रुद्रदेव कर्णिकाकी कुसुममयी मनोहारिणी माला पहरके उस ही भांति शोभायुक्त हुए थे।

अमरणधर्म्मा महर्षि कृष्ण द्वैपायनने उस देव और देवर्षियोंसे परिपूरित दिव्य रमणीय वनमें पुत्रके निमित्त परम योग अवलम्बन किया था। उस समय उनकी प्राणवायु निर्व्वल न हुई और किसी प्रकारकी ग्लानि भी उत्पन्न नहीं हुई। उनका वैसा भावस्वर्ग, मर्त्त्य पाताल, इन तीनों लोकोंमें अत्यन्त अद्भुत मालूम हुआ था। उस योगयुक्त अत्यन्त तेजस्वी द्वैपायनका तेजस्वी अग्निशिखा सदृश जटामण्डल प्रज्वलित होते दीख पड़ा था। भगवान मार्कण्डेयने इस विषयको मेरे समीप कहा था। वह सदा मेरे समीप देवताओंके सब चरित्र कहते थे। हे तात! अबतक भी महात्मा कृष्णद्वैपायनकी तपस्याके जरिये प्रदीप्त जटा अग्निवर्ण रूपसे प्रकाशित हैं। हे भारत! उनकी ऐसी भक्ति और तपस्यासे महेश्वर प्रसन्न होके प्रकट हुए। भगवान त्रिलोचन उस समय हंसके बोले, हे द्वैपायन! तुम जैसे पुत्रकी कामना करते हो, तुम्हारे वैसा ही पुत्र होगा। जैसे अग्नि, वायु और आकाश स्वतः शुद्ध हैं, तुम्हारा सुन्दर महान् पुत्र भी उस ही प्रकार शुद्ध होगा। तुम्हारा पुत्र तद्भावभावी अर्थात् मैं जो ब्रह्म हूं, ऐसे ही आशय विशिष्ट होगा और केवल ब्रह्म भावनामात्र ही न करके तद्बुद्धि अर्थात् परब्रह्ममें ही निश्चय बुद्धि निवेश करेगा, तदात्मा अर्थात उसहीमें चित्त समर्पण करेगा, तदपाश्रय अर्थात् उसहीमें स्थिर रहेगा तथा निज तेजके सहारे तीनों लोकोंको परिपूरित करके यश लाभ करेगा।

३२३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, सत्यवती पुत्र महादेवसे वह उत्तम वर पाके अग्नि उत्पन्न करनेकी अभिलाषासे दो अरणी ग्रहण करके मथने लगे। हे राजन्! अनन्तर भगवान ऋषि निज तेजप्रभावसे परम रूपवती घृताची नाम अप्सराको देखा। हे युधिष्ठिर! उस वनके बीच भगवान् व्यासदेव अप्सराको देखके सहसा कामसे मोहित हुए। हे महाराज! वह घृताची भी उस समय व्यासदेवको कामाकुलचित्त देखकर शुकी होके उनके निकट उपस्थित हुई। वह उस अप्सराको रूपान्तरके जरिये छिपी हुई देखके सर्व्वावयवव्यापी शरीरज कामके अनुगत हुए। महामुनि वेदव्यास महत् यत्नके जरिये हृदयस्थित कामवेगको निग्रह करनेके लिये यत्न करके विकृत मनको नियमित करनेमें समर्थ न हुए। उनके अन्तःकरणमें कामभावका उद्रेक होने पर घृताचीकी सुन्दरताईने उसे हरण किया था; अग्नि उत्पन्न करनेमें मन लगाके अत्यन्त प्रयत्नसे कामवेग शान्त करनेमें उद्यत हुए, तौभी सहसा अरणीके बीच उनका वीर्य्य स्खलित हुआ। द्विजसत्तम ब्रह्मर्षि वेदव्यास अविशङ्कित चित्तसे पहलेकी भांति अरणी मथने लगे। हे महाराज! उस अरणीके बीच

शुकदेवने जन्म लिया, इस ही निमित्त वह महायोगी परमर्षि अरणी गर्भसे उत्पन्न होने पर शुक्लके रकारको परित्याग कर शुक नामसे विख्यात हुए। जैसे अध्वरमें समिद्ध अग्नि हव्य ढोती हुई सुशोभित होती है, वैसे ही शुकदेव अपने तेजसे प्रज्वलित होके उत्पन्न हुए। हे कुरुकुल-धुरन्धर! वह पिताके परम उत्कृष्ट रूप और वर्ण धारण करके उस समय धूमरहित अग्निकी भांति प्रकाशित हुए।

हे जननाथ! नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाने मूर्त्तिमती होकर सुमेरु पर्व्वतके ऊपर आगमन कर निज जलसे उन्हें स्नान कराया। हे राजेन्द्र! महानुभव शुकके निमित्त आकाशसे पृथ्वीपर दण्ड और कृष्ण मृगचर्म्म गिरा गन्धर्व्व लोग बार बार गाने और अप्सरा नाचनेमें प्रवृत्त हुईं तथा महाशब्दसे युक्त देवताओंके नगाड़े बजने लगे। गन्धर्व्वराज विश्वावसु, तुम्बुरु, नारद और हाहा हूहू नाम दोनों गन्धर्व्व उस शुकदेवकी स्तुति करने लगे। इन्द्र आदि सब लोकपाल, देवता, वृन्द, देवर्षि और महर्षि लोग वहां उपस्थित हुए वायु स्वर्गीय फलोंकी वर्षा करने लगे। स्थावर जङ्गम समस्त जगत् आनन्दित हुआ। महानुभाव महातेजस्वी महादेवने देवीके सहित स्वयं प्रीतिपूर्व्वक विधिके अनुसार उत्पन्न होते ही मुनिपुत्रका उपनयन संस्कार करके उसे अपना शिष्य किया। हे राजन्! देवराज इन्द्रने प्रीतिपूर्व्वक उन्हें दिव्य और अद्भुत दर्शन कमण्डलु तथा देवासन आदि प्रदान किये। हे भरतकुल तिलक! हंस शतपत्र अर्थात् दार्व्वाघाट नाम पक्षी विशेष, सारस, शुक और स्वर्णचातक आदि सहस्रों पक्षी उनकी प्रदक्षिणा करने लगे। अनन्तर महातेजस्वी अरणीसे उत्पन्न हुए मेधावी शुकदेव दिव्य जन्म पाके उस ही स्थानमें व्रतचारी और सावधान होकर निवास करने लगे। हे महाराज! रहस्य और संग्रहके सहित जैसे समस्त वेद उनके पिताके निकट प्रकाशित हुआ था, वैसे ही उत्पन्न होते ही सब वेद उनके समीप उपस्थित हुए। उन्होंने धर्म्मकी चिन्ता कर वेद और वेदाङ्गोंके भाष्यको जाननेकी इच्छा करके बृहस्पतिको उपाध्याय रूपसे वरण किया। शुकदेवने निखिल रहस्य और संग्रहके सहित सब वेद सारे इतिहास और राज शास्त्रोंको पढ़के गुरुदक्षिणा दान कर समावृत्त अर्थात् गुरुकुलसे प्रतिनिवृत्त हुए। उस महामुनिने ब्रह्मचारी और समाहित होकर उग्र तपस्या आरम्भ की। महा तपस्वी शुकदेव बालक अवस्थामें ही ज्ञान और तपस्याके कारण देवता तथा ऋषियोंके मन्त्रणीय वा माननीय हुए। हे नरनाथ! मोक्ष धर्म्मदर्शी उस शुकदेवकी बुद्धि किसी प्रकारसे भी गार्हस्थ्यमूलक तीनों आश्रमोंमें अनुरक्त नहीं हुई।

३२४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, शुकदेव मोक्ष धर्म्मको उपादेयता जानके पिताके निकट गये, उस कल्याणकी इच्छा करनेवाले मुनिने विनययुक्त हो पिताको प्रणाम करके कहा, हे भगवन्! आप मोक्ष-धर्म्म वर्णन करनेमें अत्यन्त विज्ञ हैं। हे प्रभु! इसलिये जिस प्रकार मेरे मनमें शान्तिका सम्बन्ध हो, आप उसका उपाय वर्णन करिये। महर्षि वेदव्यास पुत्रका वचन सुनके उससे बोले, हे पुत्र! तुम मेरे समीप मोक्षशास्त्र और विविध धर्म्मशास्त्र अध्ययन करो।

हे भारत! धार्म्मिकप्रवर शुकदेवने पिताकी आज्ञानुसार निखिल योग और कपिलप्रोक्त सब शास्त्र सीखे। जब वेदव्यासने ब्रह्म तुल्य, पराक्रमयुक्त विशारद पुत्रको ब्राह्मी श्रीसे संयुक्त जाना, तब उससे बोले, "तुम मिथिलाराज जनकके समीप जाओ; वह तुमसे निखिल मोक्षशास्त्रका अर्थ कहेंगे।" हे राजन्! शुक-

हेतकी पिताकी आज्ञा पाके मोक्षपरायण जनकके निकट धर्म्मनिष्ठा पूछनेके लिये मिथिला नगरमें गये। जानेके समय पिताने पुत्रसे यह वचन कहा, कि तुम अन्तरिक्षचर प्रभावके जरिये मत जाओ, विस्मययुक्त न होकर मानुषगम्य मार्गसे गमन करो। तुम सुखकी खोज न करके सरल भावसे गमन करना, किसी विषयका विशेष अनुसन्धान न करना, क्यों कि जो लोग विशेष खोज करनेवाले हैं, वेही विषयोंमें आसक्त होते हैं। उस यजमान नरनाथके निकट तुम अहंकार न करना, तुम उनके वशीभूत होके रहना; तब वह तुम्हारे सन्देहको दूर करेंगे। वह मोक्षशास्त्र विशारद धर्म्मज्ञ राजा मेरे यजमान हैं, इसलिये वह जैसा कहेंगे, तुम निःशङ्क चित्तसे वैसा ही करना।

धर्म्मात्मा मुनि पिताका ऐसा वचन सुन मिथिला-नगरमें गये। उन्होंने आकाशमार्गसे गमन करनेमें समर्थ होनेपर भी पैदल ही समुद्रके सहित पृथ्वीका अतिक्रम किया। पहाड़, नदी, तीर्थ अनेक सर्पोंसे परिपूरित अटवी तथा तालावोंका अतिक्रम करके धीरे धीरे इलावृतवर्ष, हरिवर्ष और हैमवत-वर्ष परित्याग करके भारत वर्षमें उपस्थित हुए। वह महामुनि चीन, हून आदि विशेष जातिके जरिये सेवित विविध देशोंको देखते हुए इस आर्य्यावर्त्त देशमें आये। जैसे आकाशगामी सूर्य्य अन्तरिक्षमें विचरता है, वैसे ही वह पिताके वचनके अनुसार उस ही विषयकी चिन्ता करते हुए अविश्रान्त चित्तसे गमन करने लगे। उन्होंने विविध समृद्धिशाली गांव, नगर और विचित्र रत्नोंको तुच्छ समझके देख कर भी उस ओर ध्यान न दिया; मार्गमें चलते चलते रमणीय बगीचा, देवालय और पवित्र तीर्थोंका अतिक्रम किया। वह थोड़े ही समयमें महानुभाव धर्म्मराज जनकके रक्षित विदेह राज्यमें उपस्थित हुए। वहां अनेक अन्न, रस आदि भोजनकी सामग्रियोंसे पूरित सब गांव, समृद्ध पल्ली तथा अनेक गावोंसे युक्त पल्लियोंको देखते हुए शालि धान्य और यव तृणसे युक्त हंस सारस सेवित, सैकड़ों शोभाशालिनी कमलिनियोंसे अलंकृत समृद्धिवान् लोगोंसे युक्त विदेहदेशको नांघके रमणीय और समृद्धवान् मिथिलाके उपवनमें उपस्थित हुए। मिथिला नगर हाथी घोड़ों और नर नारियोंसे परिपूरित होने पर भी इन्द्रिय-विजयी शुकदेव उसे अनादरके सहित देखते हुए गमन करने लगे। पिताने उन्हें जो उपदेश दिया था, मन ही मन उस ही प्रश्नभारको ढोते और मोक्ष विषयकी चिन्ता करते हुए वह प्रसन्न चित्त आत्माराम मिथिला राजधानीमें पहुंचे, वह राजधानीके द्वारपर आके द्वारपालोंसे पूछे जानेपर कुछ देरतक ध्यानपरायण और योग अवलम्बन करके खड़े रहे; फिर उन लोगोंको विदित होके राजपुरमें प्रवेश किया समृद्धिवान लोगोंसे युक्त राजपथमें पहुंचके धीरे धीरे राजस्थानके निकटवर्त्ती होकर उसमें प्रवेश किया, राजभवनमें प्रवेश करते ही द्वारपालोंने कठोर-वाक्यसे उन्हें भीतर जानेके लिये निषेध किया। शुकदेव उस समय क्रोध रहित होकर वहां ही खड़े रहे, धूपके क्लेश, मार्गका थकावट और भूख प्यासके श्रमसे वह दुःखी वा ग्लानियुक्त न हुए; और धूपकी गर्म्मीसे भी हटके निवास न किया, द्वारपालोंके बीच एक पुरुष शुकदेवको मध्याह्नकालके सूर्य्यकी भांति स्थित देखकर दुःखी हुआ। अनन्तर उस द्वारपालने हाथ जोड़के विधिपूर्व्वक सम्मान करके उन्हें प्रणाम कर राजभवनकी पहली कक्षामें लेगया। हे तात! छाया और धूपको समान जाननेवाले महातेजस्वी शुकदेव उस प्रथम कक्षामें बैठके मोक्षकी चिन्ता करने लगे। मुहूर्त्तभरके बीच राजमन्त्री आके उन्हें दूसरी कक्षामें लिवा ले गया। वहां अन्तःपुरके समीप रमणीय ताला-

वसे युक्त, फूले हुए वृक्षोंसे शोभित, चैत्ररथके समान सुन्दर विस्तीर्ण प्रमदावनमें शुकदेवको प्रवेशित करके उन्हें आसन देनेके लिये स्त्रियोंको आज्ञा देकर मन्त्री वहांसे निकल गया। अनन्तर उत्तम वेषवाली, ऊंचे नितम्ब देखनेमें प्रिय, सूक्ष्म लाल अम्बर पहरनेवाली, तपाये हुए सुवर्णके आभूषणोंसे युक्त, बोलनेमें प्रवीण, नृत्यगीतिमें निपुण विचारके बोलनेवाली अप्सराओंकी भांति रूपशालिनी कामकलामें निपुण, भावज्ञ और सब विषयोंको पूर्णरीतिसे जाननेवाली पचास तरुणी वारवनिता उनके निकट उपस्थित हुईं। उन स्त्रियोंने उन्हें पाद्य अर्घ देकर परम सम्मानके सहित उनकी पूजा की और यथा समयपर उत्तम स्वादयुक्त अन्नदान करके उन्हें तृप्त किया। हे भारत! उनके भोजन कर चुकनेपर उन वार वार वनिताओंने एक एक करके उन्हें प्रमदावन दिखाया। वे सब हंसती खेलती और गाती हुई उस उदार प्रकृतिवाले शुकदेवकी सेवा करने लगी। शुद्धबुद्धि शङ्कारहित, स्वकर्मकारी क्रोध जीतनेवाले, इन्द्रियोंको वशमें करनेवाले अरणीसे उत्पन्न शुकदेव उससे हर्षित वा कुपित न हुए। उन वारवनिताओंने उन्हें देवयोग्य रत्नभूषित बहुमूल्य वस्त्रोंसे युक्त दिव्य शय्या और आसन प्रदान किया। शुकदेव सुन्दर पैर धोकर सन्ध्योपासना समाप्त करके मोक्षविषयकी चिन्ता करते हुए पवित्र आसनपर बैठे। उन्होंने पूर्व रात्रिमें ध्यानपरायण रहके मध्यरात्रि यथा न्यायसे निद्रामें बितायी, फिर मुहूर्त्तकालके अनन्तर उठके शौचकार्य्य समाप्त कर स्त्रियोंके बीच घिरकर ध्यान करने लगे। हे भारत! कृष्णद्वैपायननन्दन धैर्य्यसे च्युत न हुए, शुकदेव इस ही भांति विधिपूर्व्वक उस राजभवनमें दिन और रात्रि व्यतीत करने लगे।

३२५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भारत! अनन्तर राजा जनक मन्त्रियोंके सहित पुरोहित और सब अन्तःपुरवासी लोगोंको आगे करके विविध रत्न और आसनोंके साथ सिरपर अर्घ ग्रहण करके गुरुपुत्रके निकट उपस्थित हुए। उन्होंने उस पुरोहितोंके जरिये गृहीत परम पूजित अनेक रत्नोंसे भूषित बहुमूल्य वस्त्रसे युक्त सबसे उत्तम आसनको हाथसे ग्रहण करके गुरुपुत्र शुकदेवको दिया। पृथ्वीपति जनकने उस आसनपर बैठे हुए शुकदेवको शास्त्रके अनुसार पूजा की; पहले खड़ाऊं फिर अर्घ देकर गऊ दान किया। शुकदेवने भी यथा विधिसे मन्त्रके अनुसार पूजा प्रतिग्रह की। द्विज सत्तम महातेजस्वी शुकदेवने राजा जनकसे पूजा प्रतिग्रह और गोदान ग्रहण कर राजाका सम्मान करके उनका कुशल पूछा।

हे राजेन्द्र! जब शुकदेवने सेवकोंके सहित राजाका कुशल पूछा तब उदार प्रकृति राजा हाथ जोड़के खड़े रहे और उनकी आज्ञा पाके अनुचरोंके सहित पृथ्वीपर बैठगये, फिर राजाने व्यासपुत्रसे कुशल और अनामय प्रश्न करके आनेका प्रयोजन पूछा।

शुकदेव बोले, हे महाराज! आपका मङ्गल हो, मेरे पिताने कहा है, कि "जनक नाम विख्यात् विदेहराज मेरे यजमान हैं वह मोक्षधर्म्मविषयके विशेषज्ञ हैं। यदि तुम्हारे अन्तःकरणमें मोक्षविषयमें कुछ संशय हो, तो शीघ्र ही उनके निकट जाओ। प्रवृत्ति और निवृत्ति विषयमें तुम्हें जो कुछ सन्देह है, वह "उसे छुड़ा देंगे।" हे धार्म्मिक प्रवर! इसही कारण मैं पिताकी आज्ञानुसार मोक्षकी चर्चा पूछनेके लिये आपके निकट आया हूं; इसलिये मेरे समीप उक्त विषयको आप यथावत् वर्णन करिये, इस लोकमें ब्राह्मणको क्या करना चाहिये, मोक्षके विषय कैसे हैं, और और ज्ञान अथवा तपस्याके जरियेसे किस प्रकार मोक्ष होती है।

जनक बोले, हे तात! इस लोकमें जन्म प्रभृति ब्राह्मणोंके जो कर्त्तव्य हैं, उसे सुनो। ब्राह्मण उपनयनके अनन्तर वेदपरायण होवे, तपस्या गुरुसेवा और ब्रह्मचर्य्यके जरिये असूयारहित होके देवता और पितरोंसे अऋणी होवे। सदा वेद पढ़ते हुए गुरुदक्षिणा देकर उनकी आज्ञासे गृहपर लौट आवे; लौटनेपर गार्हस्थ धर्म्म अवलम्बन करके निज स्त्रीमें रत होकर वास करे, किसीकी असूया न करे और यथा न्यायसे अग्निमें आहुति दे। फिर पुत्र और पौत्र उत्पन्न करनेके अनन्तर पूर्व्वहुत अग्निको पूजा करके अतिथिप्रिय होकर वाणप्रस्थ आश्रममें निवास करे। वह धर्म्म जाननेवाला ब्राह्मण वनके बीच विधिपूर्व्वक आत्माको अग्नि स्वरूप जानके सुख दुःखसे रहित बिरागी होकर सन्न्यास आश्रममें निवास करे।

शुकदेव बोले, हे प्रजानाथ! सुख दुःख रहित अन्तःकरणमें यदि शाश्वत ज्ञान और विज्ञान अर्थात् शास्त्रज बुद्धि तथा अनुभव उत्पन्न हो, तो क्या गार्हस्थ आदि आश्रमोंमें अवश्यही वास करना होगा। इसे ही मैं पूछता हूं आप मेरे निकट इस ही विषयको वेदार्थके अनुसार कहिये।

जनक बोले, ज्ञान तथा विज्ञानके बिना मोक्षलाभ नहीं होता और गुरूपदेशके विना ज्ञान प्राप्त होना सम्भव नहीं है। गुरु ज्ञानरूपी नौकाके जरिये शिष्यको संसारके पार उतारता है, इस ही लिये गुरुको प्लावयिता और ज्ञानको प्लव कहा जाता है। ज्ञानसे कृतकृत्य और उत्तीर्ण होकर उन दोनोंको परित्याग करे, लोक और कर्म्म नष्ट न हों, इस ही लिये पहिलेके आचार्य्योंके आचरित चारों आश्रमोंका अनुसार अनुष्ठान करना होगा। इसी प्रकारसे योगके अनुसार अनेक जन्मोंके किये हुए शुभाशुभ कर्म्मोंको परित्याग करनेसे मोक्ष प्राप्त होती है। यह जीव संसारमें बहुत बार जन्म लेकर शोधित बुद्धिके जरिये चित्तशुद्धि लाभ करनेसे प्रथम आश्रममें ही मोक्षभाजन हो सकता है। ब्रह्मचर्य्य आश्रममें ही जिसकी चित्तशुद्धि होती है, उस कृतकृत्य विपश्चित पुरुषको अन्य तीनों आश्रमोंसे क्या प्रयोजन है। राजस और तामस दोषोंको सदाही परित्याग करे और सात्विक पथका सहारा करके आपही अपनेको अवलोकन करे, सब भूतोंमें अनुगत आत्माको और आत्मामें अनुगत सब भूतोंको देखते हुए जलके बीच हंस आदिकी भांति निर्लिप्त रहे। जैसे भूचर जन्तु नीचे पर्व्वतसे ऊंचे पहाड़पर चढ़नेके समय नीचे मार्गका अनुसरण करके जाते हैं, पक्षी उस प्रकार गमन नहीं करते, वैसेही मुक्त पुरुष देह छोड़नेपर फिर नहीं जन्मते; वे सुख दुःख आदि द्वन्द्वसे रहित और शान्तिलाभ करके परलोकमें परम सुख भोग करते हैं। हे तात! इस विषयमें पहिले समयके ययाति राजाकी कही हुई गाथाको मोक्षशास्त्रके जाननेवाले ब्राह्मण लोग धारण किया करते हैं, उसेही कहता हूं सुनो।

चिन्मात्र ज्योति केवल हृदयाधिष्ठानमें निवास करती है, अन्यत्र उसका सहारा नहीं है और उसका सब जीवोंमें ही समभाव है। जिसका चित्त स्थिर हुआ है, वह स्वयं ही उसे देखता है। जिससे दूसरे लोग भीत नहीं होते और जो दूसरोंसे नहीं डरता तथा जिसे इच्छा वा द्वेष नहीं है, वही ब्रह्मभाव लाभ करता है, जब जीव मन वचन और कर्म्मके जरिये सब प्राणियोंके विषयमें पापकी इच्छा नहीं करता, तब वह ब्रह्मभाव लाभ करनेमें समर्थ होता है; मोहिनी ईर्षाको त्यागके कामना और मोहहीन मनके सहित आत्माको संयुक्त करनेसे ब्रह्मभाव प्राप्त होता है। जब यह जीव सब भूतोंमें सुनने और देखनेसे विषयमें समता ज्ञान करके सुख दुःख आदि द्वन्द्वोंको सहता है, तब वह ब्रह्मभाव लाभ करता है। जब यह स्तुति,

निन्दा, सुवर्ण, लोहा, सुख, दुःख, सर्दी, गर्मी, अर्थ, अनर्थ, प्रिय, अप्रिय, जीने और मरनेको समभावसे देखता है, तब ब्रह्मभाव लाभ करनेमें समर्थ होता है जैसे कछुवा अपने अङ्गोंको पसारके फिर उसे समेट लेता है, वैसेही सन्न्यासियोंको मनके जरिये इन्द्रियोंको संयम करना उचित है, जैसे अन्धकारसे छिपा हुआ गृह दियेके जरिये दीखता है, वैसे ही ज्ञान-दीपके जरिये लोग आत्माको देखनेमें समर्थ होसकते हैं।

हे बुद्धिमत् प्रवर! तुममें इन सब भावोंको देखता हूं, मैंने जो कहा। उसके अतिरिक्त अन्य जो कुछ जानना होता है, उसे तुम यथार्थ रीतिसे जानते हो। हे ब्रह्मर्षि! तुमने पिताकी कृपा तथा पिताके समीप शिक्षा पाके विषयाभिलाष परित्याग की है, यह मुझे मालूम है। हे महामुनि उन्हींकी कृपासे मुझे यह दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसहीसे मैं तुम्हारे तत्त्वको जानता हूं। मुझसे बढ़के तुम्हें अधिक विज्ञान श्रेष्ठ गति और परम ऐश्वर्य हुआ है, परन्तु तुम उसे समझ नहीं सकते हो विज्ञान उत्पन्न होनेपर भी तुम बाल्यभाव, संशय अथवा अविमोक्ष जनित भयसे उसकी गति मालूम करनेमें समर्थ नहीं हुए हो। मेरे समान पुरुषके जरिये सन्देह दूर होनेपर तुम विशुद्ध व्यवहारके सहारे हृदयकी ग्रन्थिको छुड़ाके परमगति पाओगे। हे ब्रह्मन्! तुममें विज्ञान उत्पन्न हुआ है, बुद्धि स्थिर हुई है, तुमने विषय वासनाको परित्याग किया है, किन्तु बिना व्यवसायके उस परम पदको न पाओगे। सुख दुःखमें तुम्हें विशेष नहीं है, तुम्हारी बुद्धि विषयोंमें लोलुप नहीं है, नृत्य गीत आदि देखने सुननेमें उत्सुक नहीं है और उसे देखनेपर भी तुम्हें अनुराग नहीं उत्पन्न होता; बन्धुजनोंके ऊपर तुम्हारा कुछ अनुबन्ध नहीं है, भयजनक विषयोंमें भी तुम्हें भय नहीं है। हे महाभाग! मैं तुम्हें लोष्ट, पत्थर और सुवर्णमें समदर्शी देखता हूं। मैं तथा दूसरे जो सब मनीषी पुरुष हैं, सब कोई तुम्हें उस अक्षय और अनामय परम पथमें आरोहण करके निवास करते हुए देख रहे हैं। हे ब्रह्मन्! इस लोकमें ब्राह्मणको जो प्रयोजन है और मोक्षका जैसा स्वरूप है, उसहीमें तुम विद्यमान हो, दूसरा और क्या पूछना है।

३२६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, शुद्धबुद्धि शुकदेवने राजर्षि जनकसे ऐसे वचन सुनके आत्म निश्चय करके आप ही अपनेको अवलम्बन और स्वयं ही अपना दर्शन करते हुए कृतकृत्य, सुखी, शान्त और मौनावलम्बी होकर हिमालय पहाड़के ऊपर जानेकी इच्छासे उत्तरकी ओर वायुकी भांति गमन किया। इतने ही समयमें देवर्षि नारद सिद्ध चारणोंसे सेवित हिमशैलको देखनेके निमित्त वहांपर उतरे। हिमालय अप्सराओंसे परिपूरित, सहस्रों किन्नरोंके प्रशान्त बाजोंके जरिये निनादित था, भृङ्गराज वृक्षोंपर सुशोभित थे; कारण्डव, खञ्जन, विचित्र चकोर, सकड़ों कुहुक ध्वनिसे युक्त चित्त वर्णके मोर, राजहंस और परम हर्षयुक्त कोकिलोंसे परिपूर्ण था। पक्षिराज गरुड़ जिसपर सदा निवास करते हैं, इन्द्र आदि चारों लोकपाल और ऋषियोंके सहित देवता लोग लोककी हितकामनासे वहां सदा इकट्ठे हुआ करते हैं। महानुभाव विष्णुने जिस स्थानमें पुत्रके निमित्त तपस्याकी थी, उस ही स्थानमें पार्वती पुत्र कुमारने देवताओंको उद्देश्य करके एक शक्ति छोड़ी थी, वह शक्ति तीनों लोकोंकी अवज्ञा करके पृथ्वीपर गिरी थी। उस समय कार्त्तिकेयने उस ही स्थानमें शक्ति छोड़के यह वचन कहा, कि तीनों लोकके बीच जो कोई मुझसे अधिक बलवान हो, मुझसे बढ़के ब्राह्मण लोग जिसे

अधिक प्रिय हों और ब्राह्मणोंकी आज्ञा पालन करनेके विषयमें जो अद्वितीय वीर्य्यवान हो, वह इस शक्तिको उठावे अथवा चलावे। कार्त्तिकेयका ऐसा वचन सुनके "इस शक्तिको कौन उठावेगा" ऐसा सोचकर सब लोग व्यथित हुए, अनन्तर भगवान् विष्णुने असुर और राक्षसोंके सहित देवताओंको चक्षुरिन्द्रिय तथा सम्भ्रान्त-चित्त देखा; फिर उस विषयमें क्या करना चाहिये, ऐसी चिन्ता करके कुमारने जिस शक्तिको चलाया था, उसको कुछ भी विवेचना न करके उन्होंने उस अग्निपुत्रको ओर देखा। विशुद्धात्मा पुरुषोत्तमने उस समय उस प्रज्व-लित शक्तिको उठाकर बायें हाथसे चलाया। भगवान् विष्णुके जरिये उस शक्तिके कूटनेपर पहाड़, वन और महारण्यके सहित सारी पृथ्वी कांपने लगी। भगवान उस शक्तिको उठानेमें समर्थ होनेपर भी उस समय केवल उसे चलाया और स्कन्दराजको धर्षणा हो, इस ही निमित्त उसकी रक्षा की भगवान उस शक्तिको चलाकर प्रह्लादसे बोले, कि कुमारका बल देखो दूसरा कोई इस शक्तिको उठानेमें समर्थ नहीं है। हिरण्यकशिपुपुत्र प्रह्लादने भगवानका वचन न समझा और शक्ति उठानेका निश्चय करके उस ही समय उसे ग्रहण किया; परन्तु विचलित न कर सका। वह उस समय चिल्लाके पहाड़पर मूर्च्छित और विह्वल होके गिर पड़ा। उस ही स्थानमें शैलराजके पार्श्वभागमें उत्तर ओर जाके वृषभध्वज महादेव अति कठोर तपस्या करते थे, उनका आश्रम प्रकाशमान अग्निसे चारों ओरसे परिपूरित रहता था। उसका नाम आदित्य पर्व्वत है, पुण्यहीन पुरुष कदापि उसे अभिभव नहीं कर सकते यक्ष, राक्षस और दानव लोग वहां जानेमें समर्थ नहीं हैं, उसकी दश योजनकी लम्बाई है और वह अग्नि ज्वालासे परिपूरित था। श्रीमान् महादेवके दिव्य परिमाणसे सहस्र वर्षतक वहांपर खड़े रहनेपर भगवान् अग्नि उनके सब विघ्नोंको नाश करते हुए वहां स्वयं स्थित रहते थे। महादेवने देवताओंको सन्ताप देते हुए वहांपर अत्यन्त महत् तपस्या की थी। परा-शरपुत्र महातपस्वी व्यासदेव उस ही शैलरा-जकी पूर्व्वदिशाको अवलम्बन करके विविक्त पर्व्वतपर शिष्योंको वेद पढ़ाते थे। सुमन्त, महाभाग वैशम्पायन, महाप्राज्ञ जैमिनि और तपस्वीप्रवर पैल नाम शिष्योंसे घिरे हुए महा-तपस्वी वेदव्यास जिस स्थानमें निवास करते थे, आकाशमण्डल स्थित सूर्य्यके समान विशुद्धात्मा अरणीसे उत्पन्न शुकदेवने पिताके उस ही रम-णीय आश्रम स्थानको देखा। अनन्तर व्यास-देवने सूर्य्यके समान तेजस्वी, जलती हुई अग्निके समान वृक्ष, पहाड़ और विषयोंमें अनासक्त योगयुक्त महानुभाव पुत्रको धनुषसे छोड़े हुए बाणकी भांति आते हुए देखा। अरणीसे उत्पन्न शुकदेवने पिताके समीप पहुंचके उनके दोनों चरणोंको ग्रहण किया और वह महा-मुनि पिताके चारों शिष्योंसे यथा उचित मिले। अनन्तर जनक राजके सङ्ग उनकी जो वार्त्ता हुई थी, उसे प्रसन्नचित्तसे पिताके समीप आदिसे अन्ततक वर्णन किया। वीर्य्यवान पराशरपुत्र महामुनि वेदव्यास हिमालयके ऊपर शिष्यगण और पुत्रको पढ़ाते हुए इस ही भांति निवास करते थे।

अनन्तर किसी समय वेदाध्ययन सम्पन्न शान्तचित्त और जितेन्द्रिय शिष्यवृन्द उन्हें घेरके स्थित थे, वे लोग साङ्ग वेदाध्ययन समाप्त करके तपस्या करते थे; उस समय उन शिष्योंने हाथ जोड़के गुरु व्यासदेवके निकट प्रार्थना की।

शिष्यवृन्द बोले, आपने जो हमपर कृपा की है, उसहीसे हम महातेजस्वी और यशस्वी हुए हैं, इस समय हमें एक ही विषयकी अभि-लाष है, आपको उसके निमित्त अनुग्रह करना होगा। ब्रह्मर्षि व्यासदेव उन लोगोंका ऐसा

वचन सुनके बोले, हे तात ! मुझे तुम लोगोंका जो कुछ प्रियकार्य्य करना होगा, उसे कहो। हे राजन् ! शिष्योंने गुरुका ऐसा वचन सुनके प्रसन्नचित्तसे हाथ जोड़ शिर झुकाकर उन्हें प्रणामकर सबने मिलके यह उत्तम वचन कहा। हे मुनिसत्तम ! उपाध्यायके प्रसन्न होनेसे हम लोग धन्य हुए। आप हम लोगोंको यह वर दीजिये, कि इस लोकमें अब आपका छठवां शिष्य कीर्त्ति लाभ न कर सके ; आप इस ही प्रकार हमारे ऊपर प्रसन्न होइये ; हम सब ब्रह्मर्षिसे इस ही वरकी अभिलाषा करते हैं। हम चार आपके शिष्य हैं और गुरुपुत्र पांचवां है, हम पांच पुरुषोंमें ही सब वेद प्रतिष्ठित रहे, यही हमारा अभिलषित वर है।

वेदार्थके तत्वज्ञ परलोकार्थ चिन्तक पराशरपुत्र बुद्धिमान् धर्म्मात्मा व्यासदेव शिष्योंके वचनको सुनके उनसे धर्म्मयुक्त कल्याणदायक वचन बोले। जो ब्रह्मलोकमें वास करनेकी आकांक्षा करें, वे वेदशुश्रूष ब्राह्मणको वेदाध्ययन करावें, तुम लोगोंके जरिये वेदका खूब प्रचार होवे, तुम लोग वेदको विस्तार करो। जो पुरुष शिष्य नहीं हैं, व्रत नहीं करता और जिसकी बुद्धि शुद्धि नहीं हुई है, उसे वेद न पढ़ाना, यह सब शिष्यके गुणको यथार्थ रूपसे जानना चाहिये। जिसके चरित्रकी परीक्षा नहीं हुई है, उस पुरुषको विद्या दान न करे, जिस प्रकार अग्निमें तपाने, काटने घिसनेसे सुवर्णकी परीक्षा होती है, वैसे ही कुल, शील और गुणोंको देखकर शिष्योंकी परीक्षा करे। तुम लोग शिष्योंको नियोगानर्ह महाभय जनक विषयोंमें नियुक्त न करना, सभी लोग दुर्गम शास्त्रसागरसे पार हों, सभी कल्याणका मुख देखें। ब्राह्मणको अगाड़ी करके चारों वर्णोंको ही वेद सुनावे, वेद पढ़ना अत्यन्त महत् कार्य्य कहा गया है, देवताओंकी स्तुतिके निमित्त स्वायम्भू ब्रह्माने वेदोंको बनाया है।

जो पुरुष मोह वशसे वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है, वह उस ही निमित्त निःसन्देह पराभूत होता है। जो पुरुष अधर्म्मके अनुसार पूछता है और जो अधर्म्मपूर्व्वक उत्तर देता है ; उनके बीच एक दूसरेका विद्वेषभाजन होता और परलोकमें गमन करता है। यह सब तुम्हारे समीप वेदपाठकी विधि कही गई, शिष्योंका उपकार करना होगा, तुम्हारे हृदयमें ऐसी धारणा बनी रहे।

३२७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, महातेजस्वी व्यासशिष्योंने गुरुका ऐसा वचन सुनके प्रसन्नचित्तसे परस्पर आलिङ्गन किया और कहने लगे। हे भगवन् ! हमें आपने जो आज्ञा दी है, वह वर्त्तमान और भविष्यकालमें अत्यन्त हितकर है, वह हमारे अन्तःकरणमें दृढ़रूपसे स्थित हुई ; हम इसकी आज्ञाके अनुसार आचरण करेंगे। उन वाक्यविशारद शिष्योंने अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे परस्पर इस ही प्रकार वार्त्तालाप करके फिर गुरुसे निवेदन किया कि, हे महामुनि ! यदि आपकी सम्मति हो, तो वेदोंको विस्तारित करनेके लिये हम लोग यहांसे पृथ्वीतल पर गमन करनेकी इच्छा करते हैं। पराशरपुत्र निग्रहानुग्रहमें समर्थ व्यासदेवने शिष्योंका वचन सुनके धर्म्मार्थसे युक्त हितकर वचनसे उत्तर दिया कि, हे शिष्यवृन्द ! यदि तुम लोगोंको ऐसी अभिलाष हुई हो, तो मनुष्यलोक अथवा देवलोक जहांपर तुम्हारी इच्छा हो, वहां जाओ, तुम लोग सावधान होके रहना, वेदमें बहुत छल है, प्रमत्त होकर उसे भूल मत जाना। अनन्तर उन लोगोंने सत्यवादी गुरुकी आज्ञा पाके उनकी प्रदक्षिणाको और शिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके वहांसे चले। उन ऋषियोंने पृथ्वीमण्डलपर पहुंचके ब्राह्मण, क्षत्रिय और